अनुवादविज्ञान

श ब्द का र

# नुवादविज्ञान

डॉ. भोलानाथ तिवारी

महेन्द्र चतुर्वेदी
को
सस्नेह

# दो शब्द

अनुवाद को उसके पूरे परिप्रेक्ष्य मे लें तो वह मूलतः प्रायोगिक भाषा-
विज्ञान (Applied Linguisitcs) के अन्तर्गत आता है। साथ ही अनुवाद
करने मे तुलनात्मक (Comparative) या व्यतिरेकी (Contrastive) भाषा-
विज्ञान मे भी हमें बड़ी सहायता मिलती है। इस तरह अनुवाद भाषाविज्ञान
से बहुत अधिक सबद्ध है। इस सम्बन्ध के कारण ही भाषाविज्ञान के प्रति
रुचि ने मुझे अनुवाद तथा उससे सम्बद्ध समस्याओं की ओर आकर्षित
किया। विद्यार्थी-जीवन मे पाठ्यक्रमीय अनुवाद की बात छोड़ दें तो सबसे
पहले अज्ञेय जी द्वारा सपादित 'नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ' में मुझे अनुवाद करने
का अवसर मिला। उसी समय कुछ भाषा-सम्बन्धी लेखो के मैंने अंग्रेजी से
हिन्दी मे अनुवाद किए जो पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित हुए। 'गुलनार और
नजल' नाम से एक अंग्रेजी पुस्तक का संक्षिप्तानुवाद १९५२ में पुस्तकाकार
भी छपा था। आगे चलकर डॉ० गुणे की पुस्तक Introduction to Com-
parative Philology का मैंने हिन्दी अनुवाद किया जो १९६४ मे प्रकाशित
हुई। उसी प्रकाशक के लिए मैंने ग्लीसन की प्रसिद्ध पुस्तक Introduction
to Descriptive Linguistics का भी हिन्दी अनुवाद किया था, किन्तु कुछ
कारणवश उसका प्रकाशन स्थगित करना पड़ा। १९६२-६४ मे रूस मे अपने
प्रवास-काल में कुछ उज्बेक, रूसी तथा इस्तोनियन कविताओं का भी मैंने हिन्दी
अनुवाद किया था। ताशकन्द रेडियो मे १९६२ मे मेरे सहयोग से हिन्दी विभाग
खुला था। वहाँ प्रतिदिन आध घंटे के कार्यक्रम के लिए रूसी, उज्बेक, अंग्रेजी
आदि मे हिन्दी मे अनुवाद किया जाता था, जिसका पुनरीक्षण मुझे करना
पड़ता था। एक वर्ष मे कुछ ऊपर तक यह कार्य भी चलता रहा। भारत
लौटने पर 'भाषा' तथा कई अन्य पत्रिकाओं के लिए भाषा तथा लिपि-विष-
यक कई लेखों का मैंने अनुवाद किया। १९६८ में भारतीय अनुवाद परिषद
ने अपनी त्रैमासिक पत्रिका 'अनुवाद' के संपादन का भार मुझे सौंपा और
समयाभाव के कारण, न चाहते हुए भी, कई मित्रों के आग्रह से मुझे यह
दायित्व लेना पड़ा। दिल्ली विश्वविद्यालय में अनुवाद के सर्टिफ़िकेट कोर्स में
इधर कई वर्षों से अनुवाद के कुछ पर्चों पर मेरे विशेष भाषण भी होते रहे

हूँ। इस तरह अनुवाद से, काफी दिनों से कई रूपों में मैं सम्बद्ध रहा हूँ।

यों, अनुवाद-कार्य तो मैंने थोड़ा ही किया है किन्तु अनूदित सामग्री का 'पुनरीक्षण' काफी किया है—लगभग १८००० पृष्ठ। 'पुनरीक्षण' के सिलसिले में मैंने यह अनुभव किया कि अनुवाद करने की तुलना में 'पुनरीक्षण' में अनुवाद की समस्याओं पर हमारा ध्यान कहीं अधिक जाता है। इसका कारण शायद यह है कि अनुवाद तो हम सहज भाव से करते जाते हैं, अतः थोड़े अभ्यास के बाद उसकी समस्याओं की ओर हमारा ध्यान प्रायः कम ही जाता है, किन्तु पुनरीक्षण में पग-पग पर अनुवादक के अनुवाद से पुनरीक्षक के सम्भाव्य अनुवाद का संघर्ष होता है, अतः अपेक्षाकृत अधिक समस्याएँ—और वे भी अधिक गहराई के साथ सामने आती हैं। वस्तुतः अनुवाद करने से अधिक 'पुनरीक्षण', पत्रिका के संपादन, अनुवाद-विषयक भाषणों और भाषणों के बाद के प्रश्नों तथा शंकाओं ने ही मुझे अनुवाद से सम्बद्ध विभिन्न समस्याओं की ओर विशेष रूप से आकृष्ट किया है, और परिणामस्वरूप मैं 'अनुवाद' पत्रिका के संपादकीयों या कई पत्र-पत्रिकाओं में लेखों के रूप में अनुवाद के संबंध में अपने विचार समय-समय पर व्यक्त करता रहा हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक की सामग्री-के लेखन का प्रारम्भ मूलतः 'अनुवाद' पत्रिका का सिद्धांत विशेषांक निकालने के लिए कुछ लेखों के रूप में हुआ था। विशेषांक के लिए कहीं और से अपेक्षित सामग्री न मिलने पर धीरे-धीरे मुझे अपनी सामग्री बढ़ानी पड़ी, किन्तु अन्त में सामग्री इतनी हो गई कि विशेषांक में पूरी न जा सकी। अब वह पूरी सामग्री प्रस्तुत पुस्तक के रूप में प्रकाशित की जा रही है।

अनुवाद-विषयक चिंतन में महेन्द्र चतुर्वेदी, ओमप्रकाश गाबा, विश्वप्रकाश गुप्त, लज्जाराम सिहल, डॉ. जगदीश चंद्र सूना, डॉ. कृष्ण कुमार गुप्ता, तथा डॉ. नगीन चन्द्र सहगल आदि मित्रों से मुझे बहुत सहायता मिलती रही है। मैं इन सभी का हृदय से कृतज्ञ हूँ। बिटिया मुकुल ने अर्थविज्ञान वाले अध्याय के चित्र बनाकर मेरे चिंतन को मूर्त रूप दिया है। उसे ढेर सारा प्यार।

पुस्तक में प्रूफ की कई भद्दी भूलें रह गई हैं, जिनके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

भोलानाथ तिवारी

# विषय-अनुक्रम

# 'अनुवाद' शब्द : व्युत्पत्ति, अर्थ और इतिहास

'अनुवाद' शब्द का सम्बन्ध 'वद्' धातु से है, जिसका अर्थ होता है 'बोलना' या 'कहना'। 'वद्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगने से 'वाद' शब्द बनता है, और फिर उसमें 'पीछे' 'बाद मे' 'अनुवर्तिता' आदि अर्थों में प्रयुक्त 'अनु' उपसर्ग जुड़ने से 'अनुवाद' शब्द निष्पन्न होता है। अनुवाद का मूल अर्थ है 'पुनःकथन' या 'किसी के कहने के बाद कहना'।

'शब्दार्थ चितामणि' कोष मे अनुवाद का अर्थ 'प्राप्तस्य पुनः कथने' या 'ज्ञातार्थस्य प्रतिपादने' अर्थात् 'पहले कहे गए अर्थ को फिर से कहना' आदि दिया गया है।

*प्राचीन भारत में शिक्षा की मौलिक परपरा थी।* गुरु जो कहते थे, शिष्य उसे दुहराते थे। इस दुहराने को भी 'अनुवाद' या 'अनुवचन' कहते थे। 'अनुवाक्' भी मूलत. यही था, यद्यपि बाद में इसका अर्थ वेद का कोई प्रभाग (Section) हो गया—मूलतः कदाचित् उतना भाग जिसे एक बार गुरु से सुनकर दुहराया या पढ़ा-सीखा जा सके।

वैदिक सस्कृत के प्राचीनतम रूप मे उपसर्ग का प्रयोग मूल क्रिया से अलग होता रहा है, बाद मे दोनों को मिलाकर प्रयोग किया जाने लगा। 'अनुवाद' के 'अनु' और 'वद्' का भी अलग प्रयोग मिलता है। ऋग्वेद(२.१३.३.) में आता है— अन्वेको वदति यद्ददाति।

यहा भी 'अनु......वदति' का अर्थ है 'दुहराता है' या 'पीछे से कहता है'। ऋग्वेद मे एक अन्य स्थान पर आया है—

रोचनादधि(८ १.१८)

इस पर सायण कहते हैं—

अधिः पंचम्यर्थानुवादी।

अर्थात् 'अधिः' पंचमी के अर्थ को ही दुहरा रहा है। इस तरह सायण ने भी इसका प्रयोग दुहराने के लिए ही किया है। ब्राह्मण ग्रंथों मे 'दुबारा

कहना' या 'पुनःकथन' अर्थ मे 'अनुवाद' का प्रयोग कई स्थलों पर मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण (२.१५) मे आता है—

यद् वाचि प्रोदितायाम् अनुब्रूयाद् अन्यस्यैवैनम्
उदितानुवादिनम् कुर्यात्

ताड्य ब्राह्मण (१५.५.१७) मे भी 'अनुवाद' आता है।

उपनिषदों मे भी अनु + वद् का प्रयोग कई व्याकरणिक रूपो मे मिलता है। वृहदारण्यक उपनिषद (५.२.३) मे 'अनुवदति' का प्रयोग दुहराने के अर्थ मे हुआ है—

तद् एतद् एवैषा दैवी वाग् अनुवदति
स्तनयित्नु द द द इति

यास्क के निरुक्त में आता है—

कालानुवाद परीत्य(१२.१३)

अर्थात् (सविता के) समय को कहने को जानकर (—दुर्ग)।

यहाँ 'अनुवाद' का अर्थ 'कहना' या 'ज्ञात को कहना' है।

निरुक्त मे ही अन्यत्र(१.१६) इसका प्रयोग 'दुहराने' के अर्थ मे हुआ है—

यथा एतद् ब्राह्मणेन रूपसपन्ना विधीयन्त इत्युदितानुवादः स भवति।

पाणिनि के अष्टाध्यायी मे भी 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग मिलता है—

अनुवादे चरणानाम् (२.४.३)

इस सूत्र के 'अनुवाद' शब्द की भट्टोजि दीक्षित व्याख्या करते है—

सिद्धस्य उपन्यासे

अर्थात् 'ज्ञात बात को कहना'। भट्टोजि पर वासुदेव दीक्षित की व्याख्या बालमनोरमा मे आता है—

अवगतार्थस्य प्रतिपादने इत्यर्थः

यहाँ भी इसका अर्थ 'ज्ञात को कहना' ही है।

पाणिनि के उपर्युक्त सूत्र पर महाभाष्यकार के कथन की टीका मे कय्यट कहते हैं—

यदा प्रतिपत्ता प्रमाणान्तरावगतमप्यर्थं कार्यान्तरार्थं प्रयोक्ता
प्रतिपाद्यते तदानुवादो भवति

अर्थात् किसी और प्रमाण से विदित बात को ही, दूसरे कार्य के लिए किसी के द्वारा श्रोता से जब कहा जाता है तब अनुवाद होता है।

काशिका (२.४.३) मे इसी पर टीका है—

प्रमाणान्तरावगतस्यार्थस्य शब्देन सङ्कीर्तनमात्रमनुवादः

अर्थात् अन्य किसी प्रमाण से जानी हुई बात का शब्द के द्वारा कथन ही अनुवाद है। मीमांसा मे वाक्य के आशय का दूसरे शब्दों मे समर्थन के लिए प्रयुक्त कथन को 'अनुवाद' कहा गया है तथा इसके तीन भेद (भूतार्थानुवाद, स्तुत्यर्थानुवाद, गुणानुवाद) माने गए हैं।

न्यायसूत्र (२. १. ६२) में वाक्य तीन प्रकार के माने गए हैं विधि, अर्थवाद, अनुवाद—

विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात्

न्यायसूत्र में ही अन्यत्र (२.१ ६५) 'अनुवाद' को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'विधि तथा विहित का पुन' कथन अनुवाद है'—

विधिविहितस्यानुवचनमनुवाद:

न्यायदर्शन (२. १. ६६) मे आता है—

नानुवादपुनरुक्तयोर्विशेष: शब्दाभ्यासोपपन्ने

अर्थात् अनुवाद और पुनरुक्त मे भेद नही है, क्योंकि दोनों में शब्दों की आवृत्ति होती है। इसके ठीक उलटे न्यायसूत्र के वात्स्यायनभाष्य (२.१.६७) में कहा गया है कि 'अनुवाद' पुनरुक्ति नहीं है। पुनरुक्ति निरर्थक होती है, किन्तु अनुवाद सार्थक या प्रयोजनयुक्त पुन कथन होता है। बात को स्पष्ट करने के लिए वहाँ 'शीघ्र-शीघ्र जाओ' (शीघ्रतरगमनोपदेशवत् अभ्यासात् नविशेष:) उदाहरण लिया गया है जिसमे 'शीघ्र-शीघ्र' को पुनरुक्ति न मानकर अनुवाद माना गया है, क्योंकि जाने की रीति पर बल देने के लिए यहाँ उसे दुहराया गया है। इस प्रकार यहाँ अनुवाद का अर्थ है शब्द को सार्थक रूप मे दुहराना।

भर्तृहरि (२. १. १५) में अनुवाद का अर्थ दुहराना या पुन कथन है—

आवृत्तिरनुवादो वा

जैमिनीय न्यायमाला (१. ४. ६) मे आता है—

ज्ञातस्य कथनमनुवाद.

अर्थात् ज्ञात का कथन अनुवाद है।

मनुस्मृति के प्रसिद्ध टीकाकार कुल्लूक भट्ट (४-१२४ पर) कहते हैं—

सामगानश्रुतौ ऋग्यजुषोरनध्याय उक्तस्तस्यायमनुवाद:

यहाँ भी 'अनुवाद' का अर्थ 'पुन:कथन' ही है।

संस्कृत साहित्य मे 'गुणानुवाद' शब्द का प्रयोग 'गुण के बार-बार कथन' के लिए हुआ है।

इस प्रकार संस्कृत मे अनुवाद शब्द का प्रयोग 'गुरु की बात का शिष्य

द्वारा दुहराया जाना', 'पश्चात्कथन', 'दुहराना', 'पुनःकथन', 'कहना', 'ज्ञात को कहना', 'समर्थन के लिए प्रयुक्त कथन', 'विधि या विहित का पुनः कथन' 'आवृत्ति', 'सार्थक आवृत्ति' आदि अर्थों में हुआ है। यों तो इसमें कोई भी अर्थ आज के अनुवाद शब्द का ठीक अर्थ नहीं है, किंतु यह स्पष्ट है कि इनमें से अधिकांश अर्थ आज के अर्थ से बहुत दूर नहीं कहे जा सकते। 'अनुवाद' मूलत. 'पुनःकथन' या किसी के कहे जाने के बाद का कथन है, और आज के प्रयोग मे भी वह किसी के कथन का 'पुन कथन' ही है—एक भाषा मे किसी के द्वारा कही गई बात का किसी दूसरी भाषा मे पुन कथन।

लोगों की इस सामान्य धारणा से मैं बहुत सहमत नहीं हूँ कि प्राचीन भारत में—विशेषतः सस्कृत मे—अनुवाद होते ही नहीं थे। ऐसे प्रबुद्ध देश ने दूसरों से जो कुछ भी ग्रहणीय पाया, लिया—ज्योतिष, वास्तुकला तथा चिकित्सा आदि के क्षेत्र मे। अत यह सर्वथा सभव है कि अनुवाद भी हुए होंगे। हाँ अब वे उपलब्ध नहीं हैं। यों प्राकृतों से सस्कृत अनुवाद के उदाहरण आज भी उपलब्ध हैं। संस्कृत नाटकों मे स्त्रियों तथा नौकरों के प्राकृत वाक्यों, छंदों या गीतों आदि को प्राकृत के साथ-साथ सस्कृत मे भी देने की परम्परा रही है, जिसे सस्कृत मे 'छाया' कहते रहे हैं। तत्वतः यह भी एक प्रकार का अनुवाद ही है। इस तरह विशेष प्रकार के अनुवाद के लिए अपने यहाँ 'छाया' शब्द पर्याप्त प्राचीन है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषा काल में १४वीं-१५वीं सदी से ही ज्योतिष, वैद्यक, नीति, कथा-वार्ता तथा अन्य भी अनेक विषयों के सस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी आदि मे भाषांतरण होने लगे थे, जिन्हें 'भाषा टीका' कहते थे। इस प्रयोग में भाषा का अर्थ तो बोलचाल की भाषा अर्थात् हिन्दी (कबीर ने इसी अर्थ में सस्कृत को 'कूपजल' तथा तत्कालीन बोलचाल की भाषा को 'बहता नीर' कहा था) तथा 'टीका' का अर्थ है 'अनुवाद'। इसे कभी-कभी 'हिंदी टीका' तथा कदाचित् 'भाषानुवाद' भी कहते थे। आगे चलकर फारसी (तथा उसके माध्यम से अरबी शब्दों) प्रचार के कारण 'तरजुमा' शब्द भी चल पड़ा है। अपने अनुवाद 'रत्नावली' की भूमिका मे सन् १८६८ में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखते हैं 'नाटकों का तर्जुमा प्रकाशित होता जाएगा (भारतेन्दु नाटकावली, भाग २, सपादक—व्रजरत्नदास, इलाहाबाद, स० १९६३, पृ० ६६)। इन शब्दों के साथ-साथ इसी अर्थ में 'उल्था' शब्द भी चल रहा था। इस तरह परम्परागत रूप से काल-क्रम के साथ छाया, टीका, भाषानुवाद, तर्जुमा तथा उल्था शब्द अपने अपने यहाँ चल रहे थे। १९वीं सदी उत्तरार्ध में हिन्दी में 'अनुवाद' शब्द भी इस अर्थ में आ

गया था। अपने लेख 'नाटक' के उपक्रम में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखते हैं 'मुद्राराक्षस' का जब मैंने अनुवाद किया''''''(भारतेन्दु नाटकावली, भाग २, पृ० ४१७)। संभव है यह शब्द 'भाषानुवाद' से ही संक्षिप्त होकर अनुवाद रूप में चल पड़ा हो या बंगला से आया हो। बंगला में व्यवस्थित अनुवादों की परम्परा हिन्दी से प्राचीन है तथा वहाँ हिंदी की तुलना में और पहले से इसे अनुवाद कहते रहे हैं। यों मराठी, गुजराती, असमी, उड़िया, पंजाबी, तेलगू में भी इसे अनुवाद ही कहते हैं। इतने व्यापक क्षेत्र में प्रचार से एक अनुमान यह भी लगता है कि संभव है १७वीं-१८वीं सदी तक आते-आते संस्कृत में भी इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होने लगा हो, और वहीं से इस शब्द को इस अर्थ में इन आधुनिक भाषाओं में ले लिया गया हो। यदि किसी समय संस्कृत में इस अर्थ में इसका प्रयोग न होता तो आधुनिक काल की इतनी अधिक भाषाओं—और वह भी न केवल आर्य परिवार की बल्कि द्रविड (कन्नड़ और तेलगू) में भी—प्रयोग न मिलता। इस प्रसंग में कहना न होगा कि कन्नड़ और तेलगू ने संस्कृत से बहुत कुछ लिया है। उपर्युक्त तीनों अनुमानों में अंतिम की सम्भावना मुझे सर्वाधिक लगती है।

## २

# प्रतीकांतर और अनुवाद

अनुवाद के बारे में मेरे विचार परम्परागत विचारों से थोड़े-से भिन्न हैं। मैं अनुवाद या भाषांतर को 'प्रतीकांतर' का एक भेद मानता हूँ। 'प्रतीकांतर' का प्रयोग यहाँ मैं विशेष अर्थ मे कर रहा हूँ। हम जानते हैं कि विचार किसी-न-किसी प्रकार के प्रतीक द्वारा ही व्यक्त किए जाते हैं। भाषा मे ये प्रतीक शब्द होते हैं। इसी तरह चित्रकला, संगीतकला, नृत्यकला आदि मे भी भावो या विचारो को अभिव्यक्ति के लिए तरह-तरह के प्रतीको का प्रयोग होता है। इन प्रतीको का परिवर्तन ही 'प्रतीकांतर' है। दूसरे शब्दों में एक प्रतीक (या प्रतीक वर्ग) द्वारा व्यक्त विचार (या विचारों) को दूसरे प्रतीक (या प्रतीक-वर्ग) द्वारा व्यक्त करना 'प्रतीकांतर' है।

'प्रतीकांतर' तीन प्रकार के होते हैं—

**(१) शब्दांतर**—शब्दांतर या शब्द-प्रतीकांतर का अर्थ है किसी भाषा मे व्यक्त विचार को उसी भाषा मे दूसरे शब्दो मे व्यक्त करना। इसमे भाषा वही रहती है, केवल एक शब्द-प्रतीक या प्रतीकों के स्थान पर दूसरे शब्द-प्रतीक या प्रतीको का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए 'श्रीमन् बैठिए' का शब्दांतर है 'जनाब आली तशरीफ रखिए'।

**(२) माध्यमांतर**—एक माध्यम के प्रतीको के स्थान पर दूसरे माध्यम के प्रतीकों का प्रयोग। उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति हाथ के संकेत से किसी को अपने पास बुला रहा है। बुलाए जाने वाले व्यक्ति ने देखा नही अतः बुलाने वाले ने जोर से कहा 'इधर आओ'। यह माध्यमांतर है: संकेत के प्रतीक के स्थान पर भाषा के प्रतीको का प्रयोग। एक कवि जो भाव एक कविता मे व्यक्त कर सकता है, एक चित्रकार उसी भाव को एक चित्र मे व्यक्त कर सकता है, तथा एक संगीतकार उसी को संगीत के द्वारा। ये भी माध्यमांतर हैं।

**(३) भाषांतर**—एक भाषा मे व्यक्त विचार को दूसरी भाषा मे व्यक्त करना भाषांतर है। इसी को अनुवाद या तरजुमा आदि भी कहते हैं।

इस प्रकार अनुवाद प्रतीकांतर का एक भेद है।

# २

# अनुवाद क्या है ?

एक भाषा की किसी सामग्री का दूसरी भाषा में रूपांतर ही अनुवाद है। इस तरह अनुवाद का कार्य है, एक (स्रोत) भाषा में व्यक्त विचारों को दूसरी (लक्ष्य) भाषा में व्यक्त करना, किंतु यह 'व्यक्त करना' बहुत सरल कार्य नहीं है। होता यह है कि हर भाषा विशिष्ट परिवेश में पनपती है, अतः उसकी अपनी अनेक-ध्वन्यात्मक, शाब्दिक, रूपात्मक, वाक्यात्मक, आर्थिक, मुहावरे-विषयक तथा लोकोक्ति-विषयक आदि—निजी विशेषताएँ होती हैं, जो अनेक अन्य भाषाओं से कुछ या काफी भिन्न होती हैं, और इसीलिए यह आवश्यक नहीं है कि स्रोत भाषा की किसी अभिव्यक्ति के पूर्णतः समान अभिव्यक्ति—शब्दतः और अर्थतः—लक्ष्य भाषा में हो ही। 'पूर्णतः समान अभिव्यक्ति' से आशय यह है कि स्रोत भाषा की रचना या सामग्री को सुन या पढ़कर स्रोत भाषा-भाषी जो अर्थ (अभिधार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ) ग्रहण करे, लक्ष्य भाषा में उसके अनुवाद को सुन या पढ़कर लक्ष्य भाषा-भाषी भी ठीक वही अर्थ (अभिधार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ) ग्रहण करे। ऐसा सर्वदा इस लिए नहीं हो पाता कि प्रायः स्रोत भाषा की अभिव्यक्ति से जो अर्थ व्यक्त होता है, वह लक्ष्य भाषा की अभिव्यक्ति से व्यक्त होने वाले अर्थ की तुलना में या तो विस्तृत (expanded) होता है, या सकुचित (contracted) होता है, या कुछ भिन्न (transfered) होता है या फिर इनमें दो या अधिक का मिश्रण। साथ ही दोनों भाषाओं की अभिव्यक्ति इकाइयों (शब्द, शब्द-बंध, पद, पदबंध, वाक्यांश, उपवाक्य, वाक्य, मुहावरे, लोकोक्तियाँ) के प्रसंग-साहचर्य (associations) भी सर्वदा समान नहीं होते—हो भी नहीं सकते, इसी कारण स्रोत भाषा में अभिव्यक्ति-पक्ष तथा अर्थ-पक्ष के तालमेल को ठीक उसी रूप में लक्ष्य भाषा में भी ला पाना सर्वदा संभव नहीं होता। वास्तविकता यह है कि दोनों भाषाओं में इस प्रकार के तालमेल की समानता हमेशा होती ही नहीं, फिर उसे खोज पाने का प्रश्न ही नहीं उठता। अपवादों को छोड़ दें तो प्रायः स्रोत (भाषा की) सामग्री और उनके अनुवाद स्वरूप प्राप्त लक्ष्य (भाषा में) सामग्री, ये दोनों अभिव्यक्ति तथा अर्थ के स्तर पर

प्रायः एक या समान नहीं होतीं। अनुवाद में दोनों की समानता एवं समकोना मात्र है। वे केवल एक दूसरे के मात्र निकट होती हैं। हाँ समानता की यह निकटता जितनी अधिक होती है, अनुवाद उतना ही अच्छा और सफल होता है। उदाहरण के लिए हिंदी के तीन वाक्य लें : लड़का गिरा, लड़का गिर पड़ा, लड़का गिर गया। गहराई से देखें तो इन तीनों वाक्यों के अर्थ में सूक्ष्म अंतर है। मान लें अंग्रेजी में अनुवाद करना हो तो हम the boy fell या the boy fell down कहेंगे। स्पष्ट ही अंग्रेजी के वाक्य केवल पहले हिंदी वाक्य के समतुल्य कहे जा सकते हैं। अन्य हिंदी वाक्यों में 'पड़ना' तथा 'जाना' सहायक क्रियाओं से जो बात व्यक्त की जा रही है, अंग्रेजी में नहीं की जा सकती, क्योंकि उसमें इस प्रकार की सहायक क्रियाएँ हैं ही नहीं। ऐसी स्थिति में हिन्दी 'लड़का गिर पड़ा' या 'लड़का गिर गया' का the boy fell या fell down रूप में अंग्रेजी में अनुवाद अर्थ और अभिव्यक्ति की दृष्टि से केवल निकट का ही माना जाएगा। मूल और अनुवाद को पूर्णतया एक या समान नहीं माना जा सकता। इसी तरह मान लें किसी उर्दू नाटक में एक स्थान पर आता है 'आइए' दूसरे स्थान पर आता है 'आ जाइए', तीसरे स्थान पर आता है 'तशरीफ लाइए' और चौथे स्थान पर आता है 'तशरीफ ले आइए'। मोटे रूप से इन चारों के अर्थ में भले समानता हो, किंतु गहराई से विचार करें तो इन चारों में अर्थ का सूक्ष्म अन्तर है। यदि कोई व्यक्ति अंग्रेजी, रूसी या इस्तोनियन भाषा में इन चारों का अनुवाद करना चाहे तो पहले का ही पूर्णतः सटीक अनुवाद कर सकता है। शेष का उसे 'निकटतम अनुवाद' या 'यथासंभव समान अभिव्यक्ति में अनुवाद' ही करना पड़ेगा, क्योंकि इन भाषाओं में ऐसी अभिव्यक्तियाँ नहीं हैं, जो शब्दतः तथा अर्थतः उर्दू की दूसरी, तीसरी तथा चौथी अभिव्यक्तियों के पूर्णतः समान हों।

एक बात और। उपर्युक्त कठिनाई अनुवाद में एक और परेशानी को जन्म दे देती है। चूँकि स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा में पूर्णतः समतुल्य या समान अभिव्यक्तियाँ नहीं मिलतीं, अतः अनुवादक कभी-कभी स्रोताभिव्यक्ति और लक्ष्याभिव्यक्ति में समानता लाने के मोह में स्रोत भाषा के ऐसे प्रयोग भी लक्ष्य भाषा में यथावत् ला देने की गलती कर बैठता है, जो लक्ष्य भाषा की अपनी प्रकृति में सहज नहीं होते। ऐसे अनुवादों में लक्ष्य भाषा की अपेक्षित सहजता नष्ट हो जाती है। मान लीजिए अंग्रेजी का एक वाक्य है the man who fell from the tree died in the hospital. बहुत से हिंदी अनुवादक हिंदी में इसे 'वह आदमी जो पेड़ से गिरा था, अस्पताल में मर गया' रूप में

रख देंगे। किंतु हिंदी भाषा की प्रकृति से परिचित व्यक्ति इस वाक्य को देखते ही समझ जाएंगे कि यह अंग्रेज़ी की छाया है, क्योंकि हिंदी का अपना प्रयोग है 'जो आदमी पेड़ से गिरा था अस्पताल मे मर गया'। पहले हिंदी वाक्य में 'वह' the का शब्दानुवाद मात्र है। यो भारतीय भाषाएँ अंग्रेज़ी से इतनी अधिक प्रभावित हो चुकी हैं, कि ऐसे बहुत से प्रयोग अब अपने सहज प्रयोग लगने लगे हैं। इसी प्रकार हिंदी 'इस विषय मे आपका दृष्टिकोण गलत है' का संस्कृत में अनुवाद करते समय यदि कोई 'दृष्टिकोण' शब्द का प्रयोग करे तो गलत होगा, क्योंकि संस्कृत मे 'दृष्टिकोण' शब्द का प्रयोग नही होता, इस अर्थ मे वहाँ 'दृष्टि' शब्द आता है: अस्मिन् विषये भवदीया दृष्टिः अशुद्धा। यहाँ कहने का आशय यह है अनुवादक को अनुवाद करते समय इस बात में बहुत सतर्क रहना चाहिए कि लक्ष्य भाषा मे अनुवाद उसकी सहज प्रकृति के सर्वथा अनुरूप हो, स्रोत भाषा की किसी भी रूप में छाया न हो।

उपर्युक्त बातो के प्रकाश मे अनुवाद को निम्नांकित रूप में परिभाषित किया जा सकता है कि—

**एक भाषा में व्यक्त विचारों को, यथासंभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है।**

इस परिभाषा में तीन बातें ध्यान देने की हैं:—

(क) अनुवाद का मूल उद्देश्य है स्रोत भाषा की रचना के भाव या विचार लक्ष्य भाषा मे यथासंभव अपने मूल रूप में लाना।

(ख) अनुवाद के लिए स्रोत भाषा में भावों या विचारों को व्यक्त करने के लिए जिस अभिव्यक्ति का प्रयोग है, उसके 'यथासंभव समान' या 'अधिक-से-अधिक समान' अभिव्यक्ति की खोज लक्ष्य भाषा मे होनी चाहिए।

(ग) लक्ष्य भाषा मे, स्रोत भाषा के यथासंभव समान जिस अभिव्यक्ति की खोज हो, वह लक्ष्य भाषा मे सहज हो, अर्थात् उसके सहज प्रवाह या प्रयोग के अनुकूल हो, स्रोत भाषा की छाया से युक्त न हो। यह ठीक ही कहा गया है कि अनुवाद एक कस्टमहाउस है, जिससे होकर स्रोत भाषा के प्रयोग का विदेशी माल लक्ष्य भाषा मे अन्य स्रोतो की तुलना मे अधिक आ जाता है, यदि अनुवादक अपेक्षित सतर्कता न बरते।[१]

---

१. Translation is a customhouse through which passes, if the custom officers are not alert, more smuggled goods of foreign idioms, than through any other linguistic frontier.

अनुवाद को तरह तरह से परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। तीन प्रसिद्ध परिभाषाएँ हैं :—

(1) Translating conists in producing in the receptor language the closest natural equivalent to the message of the source language, first in meaning and secondly in style. —Nida

(2) The replacement of textual material in one lanuage by equivalent textual material in another language. –Catford.

(3) Translation is the transference of the the content of a text from one language into another, bearing in mind that we cannot always dissociate the content from the form. —Foresten

ऊपर इन पंक्तियों के लेखक ने भी एक परिभाषा दी है। किंतु अनुवाद की वास्तविक प्रक्रिया की दृष्टि से विस्तृत रूप में उसकी परिभाषा कुछ इस प्रकार दी जा सकती है :—

'भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था है, और अनुवाद है इन्हीं प्रतीकों का प्रतिस्थापन, अर्थात् एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर दूसरी भाषा के निकटतम (कथनत और कथ्यत) समतुल्य और सहज प्रतीकों का प्रयोग। इस प्रकार अनुवाद 'निकटतम समतुल्य और सहज प्रतिप्रतीकन' या 'यथासाध्य समानक प्रतिप्रतीकन-प्रक्रिया' है। अर्थात् प्रतिप्रतीकन यथासाध्य ऐसा होना चाहिए कि स्रोत भाषा के कथ्य में, लक्ष्य भाषा में आने पर न तो विस्तार हो, न संकोच या अन्य किसी प्रकार का परिवर्तन। साथ ही स्रोत भाषा में कथ्य और अभिव्यक्ति का जैसा सामंजस्य हो, लक्ष्य भाषा में अनूदित होने पर भी यथासाध्य दोनों का सामंजस्य वैसा ही हो। समवेततः मूल सामग्री पढ़ या सुन कर स्रोत भाषा-भाषी जो अर्थ ग्रहण करता हो, अनूदित सामग्री पढ़ या सुन कर लक्ष्य भाषा-भाषी भी ठीक वही ग्रहण करे।'

संक्षेप में—

अनुवाद कथनतः और कथ्यत. निकटतम सहज प्रतिप्रतीकन-प्रक्रिया है।

✪

# १

# अनुवाद क्या है ? शिल्प, कला, विज्ञान

कुछ लोग अनुवाद को केवल शिल्प मानते हैं तो कुछ लोग केवल कला। अनुवाद को विज्ञान प्रायः लोग बिल्कुल नहीं मानते। मेरे विचार मे अनुवाद शिल्प भी है, कला भी है और विज्ञान भी है। दूसरे शब्दो मे अशतः वह शिल्प है, अशतः कला तथा अशतः विज्ञान।

विज्ञान किसी भी विषय का व्यवस्थित तथा विशिष्ट ज्ञान होता है। इसी अर्थ मे राजनीतिविज्ञान, मानवविज्ञान, भाषाविज्ञान जैसे विषयों को विज्ञान माना जाता है। रूस में इतिहासवेत्ता को भी 'साइंटिस्ट' (वैज्ञानिक) कहते हैं। वस्तुतः किसी भी विषय से संबद्ध व तों के जितने अश का व्यवस्थित वैज्ञानिक विवेचन किया जा सकता है, उतने अश का वह अध्ययन विज्ञान की सीमा में आता है। उसमे वि.ल्प की गुंजाइश प्रायः नहीं होती या प्रायः कम ही होती है। जैसा कि हम आगे देखेंगे अनुवाद प्रायोगिक भाषाविज्ञान (applied linguistics) के अतर्गत आता है तथा वास्तविक अनुवाद करने के पूर्व की चिंतन-प्रक्रिया तुलनात्मक या व्यतिरेकी भाषाविज्ञान पर ही पूर्णतः आधृत है। तुलना आधार पर ही स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ सबंधी समानताएँ-असमानताएं ज्ञात करते हैं और फिर असमानताओं की समस्या सुलझाने के लिए कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः निश्चित नियमों का अनुसरण करते हैं। इस तरह वास्तविक अनुवाद करने की पूर्व-पीठिका जो अनुवादक के मस्तिष्क मे चिंतन के रूप मे होती है पूर्णतः वैज्ञानिक और व्यवस्थित प्रक्रिया है। यदि ऐसा न होता तो मशीनी अनुवाद सभव ही नही होता। दोनों भाषाओं के वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर निश्चित किए गए वैज्ञानिक नियम ही उसे सभव बनाते हैं। अनुवाद की पृष्ठभूमि में स्थित यह सारा अध्ययन-विश्लेषण विज्ञान के ही अतर्गत आता है। अनुवाद के इस विज्ञानपक्ष से सुपरिचित अनुवादक उस अनुवादक की तुलना मे जो इससे परिचित नहीं है कहीं अच्छा अनुवाद कर सकता है। यो एक बार फिर इस बात पर बल दे देने की आवश्यकता है कि अनुवाद का यह विज्ञान-पक्ष वास्तविक अनुवाद-क्रिया की पृष्ठभूमि मे होता है, अनुवाद करने मे नहीं।

कला तथा शिल्प मे अतर तो है किंतु वास्तविकता यह है कि शायद ही

ऐसी कोई कला हो, जिसमें शिल्प की बिल्कुल अपेक्षा न हो और शायद ही ऐसा कोई शिल्प हो, जिसमें कला पूर्णतः अनपेक्षित हो। कला एक प्रकार की सर्जना (creation) है। व्यक्ति में यह प्रायः सहज अधिक होती है। केवल अभ्यास या शिक्षण से कोई कलाकार नहीं बन सकता जब तक उसमें सहज प्रतिभा न हो। काव्य, मूर्ति, चित्र, आदि इसी लिए कला हैं। इसके विपरीत जिन्हें प्रायः उपयोगी कला (जैसे फर्नीचर बनाना, बर्तन बनाना, सन्दूक बनाना, जिल्द बनाना, मशीनें बनाना आदि) कहा गया है, शिल्प हैं। उन्हें अभ्यास और शिक्षण के द्वारा अर्जित किया जा सकता है। प्रायः लुहार का बेटा लुहार, सुनार का सुनार, जूते बनाने वाले का जूते बनाने वाला या बढ़ई का बढ़ई हो जाता है, क्योंकि वातावरण तथा अभ्यास आदि से वह सीख जाता है, किन्तु कवि का बेटा कवि हो या चित्रकार का चित्रकार हो यह कम ही देखा जाता है, क्योंकि ये चीजें केवल वातावरण या अभ्यास से नहीं आती, इनमें सहज प्रतिभा भी अपेक्षित होती है। कला और शिल्प का सबसे बड़ा अंतर यह है कि कला में व्यक्ति आत्माभिव्यक्ति करता है, उसका व्यक्तित्व उसमें आ जाता है जबकि शिल्प में वह न तो आत्माभिव्यक्ति करता है और न तो कुछ अपवादों को छोड़कर (और वे अपवाद शिल्प न होकर कला होते हैं) उसका व्यक्तित्व ही उसमें आता है।

जहाँ तक अनुवाद की बात है, अनुवादक में अनुवाद आत्माभिव्यक्ति नहीं करता, जो कवि मूर्तिकार आदि कलाकार अपनी कृति में करते हैं। इस प्रकार अनुवाद उस रूप में तो कला निश्चित ही नहीं है, जिस रूप में काव्य, चित्र, मूर्ति आदि हैं, किंतु अनुवादक का व्यक्तित्व अनुवाद में अवश्य ही बड़ा प्रभावी होता है। इसीलिए एक ही मूल सामग्री के दो व्यक्तियों द्वारा किए गए अनुवाद, प्रायः भिन्न होते हैं। इस तरह अनुवादक भी एक सीमा तक सर्जक है और काव्य आदि यदि सर्जना (creation) हैं तो अनुवाद पुन सर्जना (re-creation) है। केवल प्रक्रिया का अंतर है। मूल कलाकार अपने भावों को अपनी कला में उतारता है, जबकि अनुवादक किसी और मूल के आधार पर सृजन करता है। मूल को हृदयंगम करके वह अपने अनुसार लक्ष्य भाषा में ढालता है। इस कलात्मकता के कारण ही हर व्यक्ति केवल योग्यता और अभ्यास से अच्छा अनुवादक नहीं बन सकता। अन्य अनेक गुणों की भाँति ही यह अनुवाद कला भी कुछ ही अनुवादकों में होती है और एक सीमा तक सहजात होती है।

किंतु यदि बहुत अच्छे अनुवादकों की बात छोड़ दें तो काफी अनुवादक

ऐसे ही होते हैं जो अनुवाद कर तो लेते है किंतु उनके अनुवादन की उपलब्धि शिल्प से आगे नही बढ़ पाती। योग्यता, अभ्यास तथा वातावरण आदि से व्यक्ति इस प्रकार का अनुवादक बन सकता है। इसके लिए किसी सहज प्रतिभा की कोई खास आवश्यकता नही। किंतु इस श्रेणी के अनुवादक ठीक वैसे ही करते है जैसे अन्य शिल्पों के शिल्पी करते हैं। वे पुनः सर्जना नहीं कर पाते।

यह तो संकेत किया जा चुका है कि हर कला के लिए प्रायः कुछ शिल्प की तथा हर शिल्प के लिए कुछ कला की अपेक्षा होती है। यही बात अनुवाद मे भी है। अपवादो की बात छोड दें तो हर अनुवाद मे एक सीमा तक शिल्प तथा कला दोनों की अपेक्षा होनी है और हर कलाकार अनुवादक, शिल्पी भी होता है और हर शिल्पी अनुवादक, एक सीमा तक कलाकार भी होता है। किसी भी अनुवाद को देखकर इसका अनुमान लगाया जा सकता है कि उसमे कला का अपेक्षित अंश है या केवल एक शिल्पी की ही कृति है। यों इसका संबंध विषय से भी होता है। यदि मूल सामग्री केवल सूचनाओं या तथ्यों से युक्त है या विज्ञान आदि की है, जिसमे सूत्रों की प्रधानता है और अभिव्यक्ति का कोई खास महत्त्व नहीं है तो उसके अनुवाद के साथ शिल्पी न्याय कर लेगा किंतु मान लीजिए कविता का अनुवाद करना है जिसमे भाव हैं तथा जिसका बहुत कुछ सौन्दर्य उसकी अभिव्यक्ति पर आधृत है तो उसके लिए अनुवाद-कला अनिवार्यतः आवश्यक होगी, केवल अनुवाद-शिल्प से अनुवाद में अपेक्षित बात नही आ सकती।

इस प्रकार अनुवाद विज्ञान भी है, शिल्प भी है और कला भी है।

कुछ और उदाहरण हो सकते हैं : मेरा सर चक्कर खा रहा है—My head is eating circles; वह पानी-पानी हो गया—He became water and water. भिन्न होते हुए भी, ये प्रायः उसी श्रेणी में हैं।

(आ) ऐसा अनुवाद जिसमें क्रम आदि तो मूल का नहीं रखते किंतु मूल के हर शब्द का अनुवाद में पूरा ध्यान रखते हैं और इसीलिए मूल की शैली अनुवाद में स्पष्ट झलकती है। हिंदी अखबारों में अंग्रेजी से लिए गए अनुवादों में ऐसे उदाहरण प्रायः मिलते हैं। कुछ उदाहरण हैं :

It is an interesting point.
यह एक रोचक बिन्दु है।
It sounds paradoxical.
यह विरोधाभास-सा सुनाई पड़ता है।
It was hopelessly obscure.
यह निराशाजनक ढंग से अस्पष्ट था।
The insects called silver fish…
कीड़े जो रजत मछली कहलाते हैं…
silver fish वस्तुतः कोई मछली नहीं होती। यह एक चमकीले कीड़े का नाम है।

There is very small distance between these two cities.
इन दो नगरों के बीच बहुत छोटी दूरी (बहुत कम फासला) है।
There is a custom among'st the red Indians…
लाल भारतीयों में एक रिवाज है…।
इसके उलटे हिंदी-अंग्रेज़ी के उदाहरण भी लिए जा सकते हैं :
बत्ती जलाओ।
Burn the lamp.
उसने मैच में दो गोल लिए।
He made two goals in the match.
वैद्य ने उसकी नब्ज़ देखी।
The Vaibya saw her pulse.
फूल मत तोड़ो।
Dont break flowers. आदि।

इस प्रकार के शब्दानुवाद, पहले प्रकार के शब्दानुवाद जितने घटिया न होने पर भी घटिया ही कहे जाएंगे। इनका अर्थ पहले की तरह अस्पष्ट तो

नहीं रहता, किंतु लक्ष्य भाषा की सहज प्रकृति इनमें नहीं आ पाती, बल्कि स्रोत भाषा की शैलीय छाया लक्ष्य भाषा पर बुरी तरह छाई रहती है, अतः सहज प्रयोग की दृष्टि से ऐसे अनुवाद गलत तथा हास्यास्पद होते हैं।

(इ) शब्दानुवाद का तीसरा रूप वह है जिसे उत्तम कोटि का या आदर्श शब्दानुवाद कहा जा सकता है। इसमें मूल के प्रत्येक शब्द, बल्कि प्रत्येक अभिव्यक्ति-इकाई (जैसे पद, पदबंध, मुहावरा, लोकोक्ति, उपवाक्य, वाक्य) के लक्ष्य भाषा में प्राप्त पर्याय के आधार पर अनुवाद करते हुए मूल के भाव को लक्ष्य भाषा में संप्रेषित किया जाता है। इसमें किसी भी शब्द या अभिव्यक्ति इकाई की उपेक्षा नहीं की जाती। दूसरे शब्दों में अनुवादक न तो मूल की कोई अभिव्यक्ति-इकाई को छोड सकता है न अपनी ओर से कोई अभिव्यक्ति इकाई को जोड सकता है। संक्षेप मे शब्दानुवादक के लिए मैं एक आदर्श सूत्र देना चाहूँगा : 'मत छोड़ो, मत जोड़ो'। उदाहरणार्थ The boy who fell from the tree died in the hospital का शब्दानुवाद होगा 'वह लडका जो पेड से गिरा था अस्पताल मे मर गया। हिंदी की प्रकृति के अनुकूल और अच्छा शब्दानुवाद होगा—लड़का जो पेड से गिरा था, अस्पताल में मर गया। इसके विपरीत इसका भावानुवाद होगा—पेड से गिरने वाला लड़का, अस्पताल में मर गया।

शब्दानुवाद ऐसी सामग्री के अनुवाद में बहुत सफल नहीं हो सकता, जिसमें सूक्ष्म भावों का शैलीप्रधान चित्रण हो, किन्तु तथ्यात्मक वाङ्मय—जैसे गणित, ज्योतिष, संगीत, विज्ञान, विधि आदि—के लिए तो शब्दानुवाद ही अपेक्षित है। मुख्यतः विधि-साहित्य का प्रामाणिक अनुवाद तो शब्दानुवाद ही माना जाएगा, भावानुवाद नहीं, क्योंकि उसमें हर शब्द का अपना महत्व होता है और कानूनी गहराई में जाने पर उसकी अपनी सार्थकता होती है।

शब्दानुवाद की मुख्य कमियाँ ये हैं :

(i) स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा यदि शब्दार्थ, विशिष्ट प्रयोग, मुहावरे तथा वाक्यरचना आदि की दृष्टि से बहुत समान हों, तब तो शब्दानुवाद बहुत घटिया नहीं होता, किंतु दोनों मे यदि इन दृष्टियों से असमानता हो तो, असमानता जितनी ही अधिक होगी, शब्दानुवाद उतना ही घटिया होगा।

(ii) शब्दानुवाद में अनुवादक के बहुत सतर्क रहने पर भी प्रायः स्रोत भाषा का प्रभाव स्पष्ट रहता है। मूल की उस गंध के कारण अनुवाद की भाषा प्रायः कृत्रिम तथा निष्प्राण हो जाती है तथा उसमें मूल रचना का प्रवाह नहीं रह जाता, जो बढ़िया अनुवाद के लिए अनिवार्यतः आवश्यक है।

(iii) यथावत शब्दानुवाद कभी-कभी पूर्णतः अबोधगम्य तथा हास्यास्पद भी हो जाता है।

किंतु यदि अनुवादक अत्यन्त सतर्कता बरत कर उपर्युक्त त्रुटियों से बच सके तो बढ़िया शब्दानुवाद—यदि वह मूल के भाव को सफलतापूर्वक व्यक्त करने में समर्थ है—ही वास्तविक अनुवाद है।

पंक्ति-प्रति-पंक्ति (Interliner translation) नाम का प्रयोग भी शब्दानुवाद के लिए कभी-कभी किया जाता है।

स्रोत भाषा से लक्ष्य-भाषा मे सहज रूप मे 'वाक्य-के लिए-वाक्य' अनुवाद नहीं किये जा सकते, किंतु कोई अनुवादक यदि वाक्य के लिए वाक्य अनुवाद करे, तो उस शब्दानुवाद को वाक्य-प्रति-वाक्य अनुवाद भी कहा जा सकता है।

(२) भावानुवाद—जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इस प्रकार के अनुवाद मे मूल के शब्द, वाक्यांश, वाक्य आदि पर ध्यान न देकर भाव, अर्थ या विचार पर ध्यान दिया जाता है और उसी को लक्ष्य भाषा मे सप्रेषित करते हैं। शब्दानुवाद मे अनुवादक का ध्यान मूल सामग्री के शरीर पर विशेष होता है तो इसमे उसकी आत्मा पर। अंग्रेज़ी मे 'सेंस फॉर-सेंस' (sense for sense) ऐसे ही अनुवाद के लिए कहा जाता है। भावानुवाद एकाधिक प्रकार का हो सकता है। कभी तो मूल के वाक्यों के हर पद या शब्द पर ध्यान न देकर पदबंध का भावानुवाद (जैसे 'भारत मे पैदा होने वाला गेहूँ' के लिए Indian wheat), कभी उपवाक्य का भावानुवाद (जैसे गेहूँ 'जो भारत में पैदा होता है' का Indian wheat), वाक्य का भावानुवाद, कभी एकाधिक वाक्यों को एक मे मिलाकर उनका भावानुवाद, कभी पूरे पैराग्राफ का भावानुवाद और कभी एकाधिक पैराग्राफों को मिलाकर उनका भावानुवाद करते हैं। सामान्यतः मूल सामग्री यदि सूक्ष्म भावों वाली है तो उसका भावानुवाद करते हैं, और यदि वह तथ्यात्मक, वैज्ञानिक या विचारप्रधान है तो उसका शब्दानुवाद करते हैं। किंतु ऐसी भी स्थितियाँ कभी-कभी आती हैं कि अनुवादक जब किसी अंश का बढ़िया शब्दानुवाद नहीं कर पाता तो उसे भावानुवाद ही करना पड़ता है। इस प्रकार अनुवाद की व्यावहारिक कठिनाई दूर करने मे भावानुवाद एक अच्छा रास्ता है। भावानुवाद का सबसे बड़ा लाभ यह है कि लक्ष्य भाषा मे स्रोत भाषा की अभिव्यक्तियों की गंध नहीं आ पाती, अनुवाद मूल का यथवत अनुसरण नहीं रह जाता और उसमे मौलिक रचना जैसा सहज प्रवाह आ जाता है। शब्दानुवादक प्रायः शुद्ध भाषान्तरकार के रूप में ही हमारे सामने आता है, किंतु भावानुवादक कारयित्री प्रतिभा

वाले लेखक (creative writer) के रूप में हमारे सामने आता है। किंतु साथ ही भावानुवाद की यह भी सीमा है कि उसमें मूल की शैली आदि न आने से वह प्रायः अनुवाद न रहकर मूल पर आधारित मौलिक रचना-सा हो जाता है, अतः पाठक उसे मौलिक रचना का सा आनन्द लेते हुए पढ़ तो सकता है, किंतु उसे पढ़कर मूल रचना की शैली या उसके अभिव्यक्ति-सौंदर्य या अभिव्यक्ति-पक्ष का उसे पूरी तरह पता नहीं चल पाता। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पाठक किसी रचना को भाव या विचार से अधिक मूल लेखक की अभिव्यक्ति-पक्ष को जानने के लिए ही पढ़ना चाहता है। भावानुवाद ऐसे पाठकों के लिए भ्रामक होता है, क्योंकि भावानुवाद में प्रायः अनुवादक की अपनी शैली आ जाती है, उसका अपना व्यक्तित्व मूल लेखक के व्यक्तित्व पर एक सीमा तक छा जाता है।

इसीलिए आदर्श अनुवाद वह है जो शब्दानुवाद तथा भावानुवाद दोनों पद्धतियों को यथावसर अपनाते हुए मूल भाव के साथ-साथ यथाशक्ति मूल शैली को भी अपने में उतार लेता है और साथ ही लक्ष्य भाषा की सहज प्रकृति को भी अक्षुण्ण बनाए रखता है।

(३) छायानुवाद—हिंदी में छाया तथा छायानुवाद दो शब्दों का प्रयोग काफी मिलते-जुलते अर्थों में होता है। 'छाया' शब्द का एक प्रकार का पुराना प्रयोग संस्कृत नाटकों में मिलता है। उनमें स्त्री पात्र तथा सेवक आदि प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं, किंतु पुस्तकों में प्राकृत कथन या छंद के साथ उसकी संस्कृत छाया भी रहती है। उदाहरण के लिए कालिदास के प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम् में पहले अंक में नटी कहती है:—

ईसीसिचुम्बिआइ भमरेहिं उह सुउमारकेसरसिहाइं।
ओदंसअन्ति दअमाणा पमदाओ सिरीस कुसुमाइं।

इसकी संस्कृत छाया है—

ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः पश्य सुकुमारकेसरशिखानि।
अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि।

हिंदी अनुवाद होगा—

यह देखो, भ्रमर-समूह ने धीरे-धीरे चुंबन करते हुए जिनके रसों को चूस लिया है, ऐसे कोमल केसरयुक्त गुच्छों वाले शिरीष के फूलों को मदमाती युवतियां सदय भाव से अपने-अपने कर्णफूल बना रही हैं।

स्पष्ट ही इस अर्थ में 'छायानुवाद' शब्द का भी प्रयोग हो सकता है।

'छाया' शब्द का एक दूसरा प्रयोग तब होता है, जब किसी पुस्तक की

(iii) यंत्रवत शब्दानुवाद कभी-कभी पूर्णतः अबोधगम्य तथा हास्यास्पद भी हो जाता है।

किंतु यदि अनुवादक अत्यन्त सतर्कता बरत कर उपर्युक्त त्रुटियों से बच सके तो बढ़िया शब्दानुवाद—यदि वह मूल के भाव को सफलतापूर्वक व्यक्त करने मे समर्थ है—ही वास्तविक अनुवाद है।

पंक्ति-प्रति-पंक्ति (Interliner translation) नाम का प्रयोग भी शब्दानुवाद के लिए कभी-कभी किया जाता है।

स्रोत भाषा से लक्ष्य-भाषा मे सहज रूप मे 'वाक्य-के लिए-वाक्य' अनुवाद नहीं किये जा सकते, किंतु कोई अनुवादक यदि वाक्य के लिए वाक्य अनुवाद करे, तो उस शब्दानुवाद को वाक्य-प्रति-वाक्य अनुवाद भी कहा जा सकता है।

(२) भावानुवाद—जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इस प्रकार के अनुवाद मे मूल के शब्द, वाक्यांश, वाक्य आदि पर ध्यान न देकर भाव, अर्थ या विचार पर ध्यान दिया जाता है और उसी को लक्ष्य भाषा मे संप्रेषित करते हैं। शब्दानुवाद मे अनुवादक का ध्यान मूल सामग्री के शरीर पर विशेष होता है तो इसमे उसकी आत्मा पर। अंग्रेजी मे 'सेंस फॉर-सेंस' (sense for sense) ऐसे ही अनुवाद के लिए कहा जाता है। भावानुवाद एकाधिक प्रकार का हो सकता है। कभी तो मूल के वाक्यो के हर पद या शब्द पर ध्यान न देकर पदबंध का भावानुवाद (जैसे 'भारत मे पैदा होने वाला गेहूँ' के लिए Indian wheat), कभी उपवाक्य का भावानुवाद (जैसे गेहूँ 'जो भारत मे पैदा होता है' का Indian wheat), वाक्य का भावानुवाद, कभी एकाधिक वाक्यों को एक मे मिलाकर उनका भावानुवाद, कभी पूरे पैराग्राफ का भावानुवाद और कभी एकाधिक पैराग्राफों को मिलाकर उनका भावानुवाद करते हैं। सामान्यतः मूल सामग्री यदि सूक्ष्म भावों वाली है तो उसका भावानुवाद करते हैं, और यदि वह तथ्यात्मक, वैज्ञानिक या विचारप्रधान है तो उसका शब्दानुवाद करते हैं। किंतु ऐसी भी स्थितियाँ कभी-कभी आती हैं कि अनुवादक जब किसी अंश का बढ़िया शब्दानुवाद नही कर पाता तो उसे भावानुवाद ही करना पडता है। इस प्रकार अनुवाद की व्यावहारिक कठिनाई दूर करने का भावानुवाद एक अच्छा रास्ता है। भावानुवाद का सबसे बडा लाभ यह है कि लक्ष्य भाषा मे स्रोत भाषा की अभिव्यक्तियो की गंध नही आ पाती, अनुवाद मूल का यंत्रवत अनुसरण नही रह जाता और उसमे मौलिक रचना जैसा सहज प्रवाह आ जाता है। शब्दानुवादक प्राय. शुद्ध भाषांतरकार के रूप मे ही हमारे सामने आता है, किंतु भावानुवादक कारयित्री प्रतिभा

वाले लेखक (creative writer) के रूप में हमारे सामने आता है। किंतु साथ ही भावानुवाद की यह भी सीमा है कि उसमें मूल की शैली आदि न आने से वह प्रायः अनुवाद न रहकर मूल पर आधारित मौलिक रचना-सा हो जाता है, अतः पाठक उसे मौलिक रचना का सा आनन्द लेते हुए पढ तो सकता है, किंतु उसे पढकर मूल रचना की शैली या उसके अभिव्यक्ति-सौंदर्य या अभिव्यक्ति-पक्ष का उसे पूरी तरह पता नहीं चल पाता। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पाठक किसी रचना को भाव या विचार से अधिक मूल लेखक की अभिव्यक्ति-पक्ष को जानने के लिए ही पढ़ना चाहता है। भावानुवाद ऐसे पाठकों के लिए भ्रामक होता है, क्योंकि भावानुवाद में प्रायः अनुवादक की अपनी शैली आ जाती है, उसका अपना व्यक्तित्व मूल लेखक के व्यक्तित्व पर एक सीमा तक छा जाता है।

इसीलिए आदर्श अनुवाद वह है जो शब्दानुवाद तथा भावानुवाद दोनों पद्धतियों को यथावसर अपनाते हुए मूल भाव के साथ-साथ यथाशक्ति मूल शैली को भी अपने में उतार लेता है और साथ ही लक्ष्य भाषा की सहज प्रकृति को भी अक्षुण्ण बनाए रखता है।

(३) छायानुवाद—हिंदी मे छाया तथा छायानुवाद दो शब्दों का प्रयोग काफी मिलते-जुलते अर्थों मे होता है। 'छाया' शब्द का एक प्रकार का पुराना प्रयोग संस्कृत नाटकों मे मिलता है। उनमें स्त्री पात्र तथा सेवक आदि प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं, किंतु पुस्तकों मे प्राकृत कथन या छंद के साथ उसकी संस्कृत छाया भी रहती है। उदाहरण के लिए कालिदास के प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम् मे पहले अंक में नटी कहती है:—

ईसदीसच्चुम्बिआइ भमरेहिं उह सुउमारकेसरसिहाइं।
ओदंसअंति दअमाणा पमदाओ सिरीस कुसुमाइं।

इसकी संस्कृत छाया है—

ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः पश्य सुकुमारकेसरशिखानि।
अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि।'

हिंदी अनुवाद होगा—

यह देखो, भ्रमर-समूह ने धीरे-धीरे चुंबन करते हुए जिनके रसों को चूस लिया है, ऐसे कोमल केसरयुक्त गुच्छों वाले शिरीष के फूलों को मदमाती युवतियां सदय भाव से अपने-अपने कर्णफूल बना रही हैं।

स्पष्ट ही इस अर्थ मे 'छायानुवाद' शब्द का भी प्रयोग हो सकता है।

'छाया' शब्द का एक दूसरा प्रयोग तब होता है, जब किसी पुस्तक की

कुछ छाया या उसका छायावत् धुंधला प्रभाव लेते हुए स्वतन्त्र रूप से कोई रचना की जाय। इसमे प्राय. नाम, स्थान, वातावरण आदि का देशीकरण कर लिया जाता है। भगवती चरण वर्मा के उपन्यास चित्रलेखा के कथानक पर अनातोले फ्रांस के उपन्यास 'थाया' की छाया है। इस अर्थ में 'छायानुवाद' का प्रयोग मेरे विचार में नही किया जाना चाहिए। चित्रलेखा पर थाया की छाया ही है, वह छायानुवाद नही है। छायानुवाद ऐसे अनुवाद को कहा जाना चाहिए जो शब्दानुवाद की तरह मूल के शब्दों का अनुसरण न करे, न भावानुवाद की तरह मूल के भावो का अनुसरण करे, अपितु दोनो ही दृष्टियो से मूल से (शब्दतः, भावत) मुक्त होकर अर्थात् बिना मूल से विशेष बँधे उसकी छाया लेकर चले।

(४) सारानुवाद—इसमे मूल की मुख्य बातों का मूलमुक्त अनुवाद होता है। यह सक्षिप्त, अति सक्षिप्त, अत्यन्त सक्षिप्त आदि कई प्रकार का हो सकता है। भारतीय लोकसभा के वाद-विवाद का जो अनुवाद किया जाता है, वह प्राय. ऐसा ही होता है। अपनी सक्षिप्तता, सरलता, स्पष्टता तथा लक्ष्यभाषा के स्वाभाविक-सहज प्रवाह के कारण व्यावहारिक कार्यों मे सामान्य अनुवाद की तुलना मे सारानुवाद ही अधिक उपयोगी पाया गया है। लबे भाषणों का सद्य. अनुवाद करने वाले दुभाषिये भी प्राय. इसी का प्रयोग करते हैं।

(५) व्याख्यानुवाद—इसमे मूल का व्याख्या के साथ अनुवाद होता है। स्पष्ट ही व्याख्या व्याख्याता के व्यक्तित्व, ज्ञान तथा दृष्टिकोण पर आधृत होती है, तथा उसमे कथ्य के स्पष्टीकरण के लिए कुछ अतिरिक्त उदाहरण, उद्धरण, प्रमाण इत्यादि जोड़े जा सकते हैं। इसी कारण व्याख्यानुवाद मे अनुवादक केवल अनुवादक न रहकर काफी महत्वपूर्ण हो जाता है। लोक-मान्य तिलक का गीतानुवाद इसी प्रकार का है। सस्कृत के विभिन्न आर्ष ग्रथो के सनातनधर्मी एव आर्यसमाजी व्याख्यानुवाद भी इसके अच्छे उदाहरण हैं। व्याख्यानुवाद मे अनुवादक अनुवाद से अधिक बल, मूल की बातो का विस्तार के साथ अपने ढग से समझाने पर देता है। इसीलिए तत्वतः व्याख्यानुवाद अनुवाद से अधिक व्याख्या या भाष्य होता है। इसे भाष्यानुवाद *भी कह सकते हैं। मूल की तुलना मे यह काफी बड़ा होता है। षड्दर्शन ग्रथो* के व्याख्यानुवादो मे एक-एक सूत्र को कभी-कभी दो-दो, तीन-तीन पृष्ठो में समझाया गया है। व्याख्यानुवाद काफी प्रभावी होता है, क्योंकि इसमे मूल की अस्पष्ट बातें विश्लेषित तथा उदाहृत होकर स्पष्ट हो जाती हैं, परन्तु

इसमें एक डर यह होता है कि अनुवादक या भाष्यकार मूल लेखक के विचारों में कुछ अपना रंग आरोपित करके उसके साथ अन्याय भी कर सकता है।

(६) अनुवाद—यह अनुवाद का आदर्श प्रकार है, जिसमें अनुवादक स्रोत भाषा से मूल सामग्री का अभिव्यक्तित: और अर्थत: लक्ष्य भाषा में निकटतम एवं स्वाभाविक समानकों (closest natural equivatents) द्वारा अनुवाद करता है। इसे **स्वाभाविक सटीक अनुवाद** भी कहा जा सकता है। अनुवादक इसमें यथासाध्य अपना व्यक्तित्व नहीं आने देता। अनुवाद मूल जैसा होता है। अर्थात् अनुवादक का प्रयास यह होता है कि मूल को पढ़ या सुनकर स्रोत भाषा-भाषी जो ग्रहण करे, अनुवाद को पढ़ या सुनकर लक्ष्य भाषा-भाषी भी ठीक वही ग्रहण करे।

मैं प्राय. आदर्श अनुवाद के लिए एक सूत्र का प्रयोग करता रहा हूँ—न छोड़ो, न जोड़ो। अर्थात् अनुवादक यथासाध्य न तो मूल का कुछ (अर्थत: या अभिव्यक्तित:) छोड़े और न तो अपनी ओर से कुछ (अर्थत: या अभिव्यक्तित:) जोड़े। वह एक तटस्थ माध्यम का कार्य करे। **आदर्श अनुवादक सिरिंज की वह सुई है जो सिरिंज की दवा को ज्यों की त्यों मरीज के शरीर में पहुँचा देती है।**

अनुवाद को ही भाषांतर, भाषांतरण, उल्था, तरजुमा आदि भी कहते हैं।

(७) रूपान्तरण (adoptation)—इस शब्द का अर्थ है रूप को बदलना। अनुवाद के इस प्रकार में रूपान्तरकार मूल को अपनी रुचि, सुविधा तथा आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित करके लक्ष्य भाषा में रखता है। इस में मूल सामग्री, संक्षिप्त या विस्तृत, सरल या कठिन तथा विधा-रूप में परिवर्तित (अर्थात् कहानी से नाटक, नाटक से कहानी आदि) होकर आती हैं। पात्रों के नाम देशकाल या वातावरण आदि में परिवर्तन किए भी जाते हैं और नहीं भी। भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने शेक्सपीयर के 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' का अनुवाद 'दुर्लभ बन्धु' अर्थात् 'वंशपुर का महाजन' नाम से किया था। इसमें कथा को पूरी तरह भारतीय कर दिया गया है। 'वंशपुर' वेनिस है। 'एंटोनियो' को 'अनत', 'बैसोनियो' को 'बसत' तथा 'पोर्शिया' को 'पुरश्री' नाम दे दिये गये हैं।

रेडियो पर प्राय: विभिन्न प्रकार के रूपांतर आते रहते हैं।

(८) वार्तानुवाद अथवा आशु-अनुवाद—जब दो भिन्न भाषा-भाषी आपस में बात करते हैं तो उनके बीच के अनुवादक को दुभाषिया (Interpreter) कहते हैं। दुभाषिया द्वारा किए जाने वाले अनुवाद को किसी अन्य अधिक अच्छे

शब्द के अभाव में हिन्दी में मैं वार्तानुवाद की संज्ञा देना चाहूँगा। कहीं-कहीं ऐसी व्यवस्था भी होती है कि कोई भाषण या वार्ता किसी एक भाषा में प्रसारित होती है, परन्तु विभिन्न स्टेशनों पर उसके विभिन्न भाषाओं में अनुवाद साथ-साथ सुने जा सकते हैं। जो लोग यह अनुवाद करते हैं उन्हें आशु-अनुवादक, और उनके कार्य को आशु-अनुवाद कह सकते हैं। वार्तानुवाद या आशु-अनुवाद उपर्युक्त किसी भी दृष्टि या आधार से अनुवाद का कोई स्वतन्त्र प्रकार या भेद नहीं है। इसके स्वतन्त्र शीर्षक का आधार केवल यह है कि इस प्रकार के अनुवाद का स्वतन्त्र संदर्भ है, और इसीलिए इसका अपना महत्व है। जहाँ तक अनुवाद की प्रकृति का प्रश्न है, वार्तानुवाद आदर्श अनुवाद का ही एक रूप है। इसके संबंध में एक ही बात उल्लेख्य है कि किसी लिखित सामग्री के अनुवादक की भाँति दुभाषिया या वार्तानुवादक के पास इतना अवकाश नहीं होता कि वह देर तक सोच सके या अपेक्षित कोश आदि संदर्भ ग्रंथ देख सके। इसीलिए वार्तानुवाद कभी-कभी सटीक की तुलना में कामचलाऊ अधिक होता है किंतु दुभाषिया चूँकि महत्वपूर्ण राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक वार्ताओं के सद्यः अनुवाद का कार्य करता है, अतः उसे अत्यन्त व्यावहारिक, दोनों भाषाओं (स्रोत तथा लक्ष्य) का अच्छा जानकार, सम्बद्ध राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक आदि समस्याओं को समझनेवाला एवं आशु अनुवादक होना चाहिए। किसी प्राचीन या नवीन ग्रंथ या लेख के अनुवादक की किसी गलती के परिणाम उतने भयंकर शायद ही कभी होते हों जितने किसी दुभाषिये की सामान्य भूल के हो सकते हैं। इसीलिए इतिहास में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है, जहाँ दुभाषिये की गलतियों की प्रतिक्रिया दो देशों के आपसी तनावों में होने-होते बची है।

७

# अनुवाद की शैलियाँ

अनुवाद के प्रसग में 'शैली' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में प्रायः होता है। एक तो अनुवाद की विविध शैलियों से लोग अर्थ लेते हैं शब्दानुवाद, भावानुवाद, सारानुवाद आदि का। इस अर्थ में 'शैली' अनुवाद के प्रकार या भेद का पर्याय है। पीछे 'अनुवाद के प्रकार' शीर्षक के अन्तर्गत इस पर विचार किया जा चुका है। 'शैली' का अनुवाद के प्रसग में दूसरा अर्थ लिया जाता है अनुवाद में अभिव्यक्ति की शैली। यहाँ इस दूसरे अर्थ में ही शैली पर विचार किया जा रहा है।

मूल प्रश्न यह है कि अनुवाद की शैली क्या हो? सच पूछा जाय तो अनुवादक का मूल उद्देश्य होता है मूल कृति को लक्ष्य भाषा मे निकटतम रूप में भाषांतरित करना। इसका अर्थ यह हुआ कि अच्छा और सफल अनुवादक वह है जो अनुवाद की शैली प्रायः वही रखता है जो मूल रचना की होती है। उदाहरण के लिए जयशंकर प्रसाद का अनुवाद, प्रेमचन्द का अनुवाद तथा महात्मा गांधी का अनुवाद, चाहे किसी भी भाषा में क्यो न किया जाए, एक शैली मे नही किया जाना चाहिए। सफल अनुवादक उसे माना जाएगा जो अनुवाद मे भी उच्च सांस्कृतिक शब्दावली युक्त काव्यात्मक शैली का पुट प्रसाद के अनुवाद मे दे सके, महात्मा गांधी के अनुवाद मे हिन्दुस्तानी शैली का सीधापन झलका सके, तथा प्रेमचन्द के अनुवाद को इन दोनो के बीच में इस प्रकार रख सके कि साहित्यिकता के पुट के साथ-साथ उसमें मुहावरेदार सरल शैली का प्रसादत्व भी हो। एक ठोस उदाहरण लें तो हिंदी के कृती अनुवादक श्री महेन्द्र चतुर्वेदी ने एक तरफ 'काव्य में उदात्त तत्त्व' (होरेस के 'आन सब्लाइम' के हिन्दी अनुवाद) में या 'अरस्तू का काव्यशास्त्र' ('पेरि पोइतिकेस' के हिंदी अनुवाद) मे एक ऐसी शैली का प्रयोग किया है जो तत्सम शब्दावली तथा तद्युक्त प्रयोगो के कारण एक प्रकार की है, तो मौलाना अबुल कलाम आजाद की पुस्तक 'इंडिया विन्स फ्रीडम' के अनुवाद 'आजादी की कहानी' में उन्होंने एक दूसरे प्रकार की शैली का प्रयोग किया है, जिसे देखकर हुमायूँ कबीर ने कहा था कि मुझे यदि यह पता होता कि चतुर्वेदी जी ऐसी शैली में अनुवाद करेंगे तो मैं उर्दू मे इसका अलग अनुवाद न कराता,

तथा प्रायः इसे ही उर्दू में भी प्रकाशित करवा देता। यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि अनुवादक चतुर्वेदी ने होरेस की कृति के नाम मे तो 'काव्य मे उदात्त तत्त्व' अर्थात् 'काव्य' और 'उदात्त' का प्रयोग किया है, किन्तु मौलाना आजाद की पुस्तक के नाम मे 'स्वतन्त्रता' शब्द का प्रयोग न कर 'आजादी' का प्रयोग किया है। निष्कर्षत अनुवाद की शैली के बारे मे सामान्य सिद्धात तो यही है कि अनुवाद में अभिव्यक्ति की शैली ऐसी होनी चाहिए जो मूल कृति या मूल कृति के लेखक की अनुगामिनी हो।

इस प्रसग मे 'शैली' शब्द भी विचारणीय है। जब हम अनुवादक के 'मूल की शैली' के अनुगमन की बात उठाते हैं तो शैली का क्या अर्थ है। गहराई से देखा जाए तो सक्षेप मे 'शैली' मे वह सब कुछ आ जाता है जो किसी भी रचना मे कथ्य को पाठक या श्रोता तक पहुँचाने के लिए होता है, और जिसे समवेतत. अभिव्यक्ति-पक्ष या कला-पक्ष की सज्ञा देते हैं। कविता की शैली की परख मुख्यतः शब्द-चयन, अलकार, शब्द-शक्ति, गुण, नाद-सौंदर्य, ध्वनि, दोष तथा छद आदि से होती है। गद्य में छन्द को छोड़कर न्यूनाधिक रूप मे ये सभी बातें आ सकती हैं। हिन्दी मे शैली के भेदो या प्रकारो के नाम पर व्यास शैली, समास शैली, अलकृत शैली, उदात्त शैली, मुहावरेदार शैली, लाक्षणिक शैली, व्यजक शैली, गुम्फित शैली, सरल शैली, सरस शैली, सामान्य शैली तथा सपाट शैली आदि के नाम लिए जाते हैं। विश्व की अन्य भाषाओं मे इसी प्रकार की कुछ कम या अधिक शैलियो के नाम हो सकते हैं।

अनुवादक को चाहिए कि मूल की शैली को—चाहे वह किसी भी प्रकार की क्यो न हो—यथासाध्य अनुवाद मे भी लाने का यत्न करें, हालाँ कि ऐसा करना न तो सर्वदा सरल होता है और न बहुत सम्भव ही। उसका कारण यह है कि हर भाषा की प्रकृति मे कुछ उसकी निजी विशेषताएँ होती हैं, जो दूसरी भाषा में होती ही नही। फिर, जिस भाषा में वे हैं ही नही, उसमे कोई भला ला कैसे सकता है। फिर भी, यत्न तो होना ही चाहिए। सीधे न सही, किसी और ढग से सही।

शैली के मुख्यतत्त्वो मे शब्द-चयन, अलकार, शब्द-शक्तियाँ, ध्वनि तथा छन्द को अनुवाद में ठीक उतार पाने मे कभी-कभी काफी कठिनाई होती है। शब्द-चयन का ही प्रश्न लें। किसी भाषा मे पर्यायों का आधिक्य होता है तो किसी मे वे कम होते हैं, अतः सभी भाषाओ मे सभी स्थलो पर शब्द-चयन कर पाने की गुंजाइश नही होती। उदाहरणार्थ हिन्दी के शब्द-समूह मे पर्यायों की काफ़ी गुंजाइश है, क्योंकि इसमे देशज शब्दो के अलावा तीन स्रोतों के

शब्द हैं (१) सस्कृत तत्सम, (२) तद्भव, (३) विदेशी। इसीलिए पृथ्वी, धरती, जमीन; या सुन्दर, सुघर, खूबसूरत जैसी पर्याय-शृंखलाएँ हैं, जिनके सन्दर्भार्थ कभी-कभी एक दूसरे से दूर होते हैं। इस दृष्टि से हिन्दी की ३ शैलियां हैं : सस्कृतनिष्ठ हिन्दी, अरबी-फारसी युक्त उर्दू, बीच की शैली हिंदुस्तानी। सभी भाषाओं मे ये अन्तर ठीक इसी प्रकार नही मिल सकते, अत: सभी भाषाओं में अनुवाद मे इन्हे लाया भी नहीं जा सकता। रूप-चयन की कठिनाई को भी इसी के साथ मिला सकते हैं। हिन्दी में बैठ, बैठो, बैठिए, बैठें ये चार आज्ञा के रूप हैं, जिनमे सूक्ष्म अन्तर है। अंग्रेजी, रूसी आदि यूरोपीय भाषाओं में इन्हें उतार पाना असम्भव है। हाँ, जब हम किसी अन्य भाषा से हिन्दी मे अनुवाद कर रहे हों तो प्रसगानुसार उपयुक्त रूप का चयन कर सकते हैं।

अलकारो की भी यही स्थिति है। हिन्दी में यमक तथा श्लेष अनेकार्थी शब्दों पर निर्भर करते हैं, किन्तु यह आवश्यक नही कि लक्ष्य भाषा में ऐसा कोई शब्द हो जिसके उतने अर्थ होते ही हैं। उदाहरण के लिए 'कनक कनक ते सौगुनी......' का शैलीगत सौंदर्य उस भाषा के अनुवाद में उतारा ही नही जा सकता, जिसमे कोई एक ऐसा शब्द ('कनक' का पर्याय) न हो जिस के 'सोना' और 'धतूरा' दोनों अर्थ होते हो। अलकारों के सन्दर्भ में संक्षेप में यह कह सकते हैं कि जहाँ स्रोत सामग्री में उपमा, रूपक आदि अर्थालंकारों के चमत्कार हों, उन्हें ज्यों-का-त्यों या थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ लक्ष्य भाषा में सप्रेषित किए जाने की सम्भावना हो सकती है, परन्तु जहाँ स्रोत भाषा में अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि शब्दालकारों से चमत्कार पैदा किया गया हो, वहाँ लक्ष्य भाषा मे वैसा शैली-चमत्कार ला पाना, बल्कि अनुवाद कर पाना ही कठिन हो जाता है। दूसरी ओर, स्रोत भाषा मे कोई अलकार या मुहावरा न आने पर भी कुशल अनुवादक अपने अनुवाद में अनुप्रास की छटा या मुहावरे का सौंदर्य ला सकता है।

शब्द-शक्तियों, नाद-सौंदर्य तथा ध्वनि आदि की भी प्राय: यही स्थिति है। वस्तुत:

'ककण किंकिणि नूपुर धुनि सुनि,'

'घन घमड नभ गरजत घोरा'

अथवा 'मृदु मद-मद मथर-मथर' का शैलीगत सौंदर्य अनुवाद में ला पाना सभी अनुवादको के बस का नहीं है।

छन्द तो प्राय. विभिन्न भाषाओं मे अलग-अलग ही होते हैं। यों अनुवादको ने

इस दिशा मे नए छन्द लाने के यत्न किए है। उदाहरण के लिए महाभारत तथा रामचरित मानस के रूसी अनुवादकों ने अपने अनुवाद मूल छन्द में किए हैं। अंग्रेज़ी में भी कुछ इस प्रकार के अनुवाद विविध भाषाओं से हुए हैं। किन्तु ऐसा हमेशा सम्भव होता नही। यो सर्वदा ऐसा करना बहुत सार्थक भी नही होता, क्योकि किसी छन्द का जो प्रभाव स्रोत भाषा-भाषी पर पड़ता है, आवश्यक नही कि लक्ष्य भाषा-भाषी पर भी वही पडे।

इस तरह सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि इन सभी दृष्टियों से यथा-साध्य मूल शैली को लाने का प्रयत्न होना चाहिए। प्रयत्न होने पर इस दिशा मे अधिक नही तो कुछ सफलता मिलने की तो सम्भावना हो ही सकती है।

यह बात आदर्श अनुवाद की दृष्टि से की जा रही थी। कुछ बातें ऐसी भी होती हैं, जिनको दृष्टि मे रखते हुए मूल कृति की शैली मे कभी-कभी थोड़े-बहुत परिवर्तन अपेक्षित होते हैं। उदाहरण के लिए कल्पना कीजिए कि किसी पुस्तक का अनुवाद सुपठित बडो के लिए, नव साक्षरो के लिए, किशोरो के लिए तथा बच्चो के लिए किया जा रहा है, तो निश्चय ही शब्द-चयन आदि की दृष्टि से शैली को इन चारो मे एक नही रखा जा सकता। इसका अर्थ यह हुआ कि अनुवाद की इस प्रकार की शैली के लिए एक बहुत बडा निर्णायक तत्व यह है कि अनुवाद किसके लिए किया जा रहा है। उसके पाठक कौन होंगे ? इस तरह पाठको के ज्ञान और भाषा-स्तर की दृष्टि से अनुवाद की एकाधिक शैलियाँ हो सकती हैं और अनुवादक को उनका ध्यान रखते हुए शैली मे परिवर्तन करते रहना चाहिए।

मान ले किसी नाटक का अनुवाद किया जा रहा है। यदि नाटक रंग-मच के लिए है तो उसकी शैली अपेक्षाकृत सरल होनी चाहिए, ताकि कथो-पकथन का अर्थ श्रोता—जो भाषाज्ञान की दृष्टि से हर श्रेणी के हो सकते हैं—सुनते ही समझ जायें, किन्तु इसके विपरीत यदि नाटक केवल पढ़ने के लिए हैं तो शैली थोडी कठिन भी हो तो कोई बात नही, क्योकि पाठक अपने समझने की क्षमता की दृष्टि से उसे अपनी सुविधानुसार—तेज़ी से, धीमी गति से—पढ़ सकता है। इस तरह ऐसी अपेक्षाएँ भी अनुवाद की शैली को प्रभावित करती हैं।

शैली का सबध पुस्तक या रचना के विषय से भी बहुत अधिक होता है इस दृष्टि से विभिन्न विषयों या रचनाओ को मोटे रूप से दो वर्गों में बाटा जा सकता है—

(क) शैली-प्रधान

(ख) तथ्य-प्रधान

यह बात बल देने की है कि यह भेद मोटे ढंग से किया जा रहा है। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि शैली-प्रधान रचनाओं में तथ्य नहीं होता या तथ्य-प्रधान रचनाओ का शैली-पक्ष नहीं होता। दोनो में दोनो होते हैं किंतु एक मुख्य रूप से तो दूसरा गौण रूप मे।

शैली-प्रधान रचनाएँ कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, गद्यकाव्य, ललित निबन्ध, रेखाचित्र, रिपोर्ताज आदि की होती हैं तो तथ्य प्रधान रचनाएँ इतिहास राजनीति, अर्थशास्त्र, गणित, विज्ञान, विधि, दर्शन, धर्मशास्त्र आदि की।

शैली-प्रधान साहित्यिक विधाओं की हर भाषा में अपनी-अपनी शैलियाँ होती हैं और ये शैलियाँ भी हर युग मे एक नहीं होती। अनुवादक को लक्ष्य भाषा के काल और उसकी परम्परा के अनुसार शैली अपनानी चाहिए। उदाहरण के लिए हिंदी में आज शब्द-समूह के स्तर पर आलोचना की शैली अधिक सस्कृत-निष्ठ है, किन्तु उपन्यास, कहानी, नाटक, मे यह बात नहीं है। इनकी शैली अपेक्षाकृत बोलचाल की है। इसका अर्थ यह हुआ कि आज कोई व्यक्ति यदि किसी अन्य भाषा की आलोचना की पुस्तक का अनुवाद हिंदी मे करे तो उसे सस्कृत-निष्ठ रखना चाहेगा, किंतु यदि नाटक, उपन्यास, कहानी का करे तो बोलचाल की भाषा-शैली रखेगा। पहली में अरबी-फारसी या अंग्रेजी के शब्दों के आने की संभावना अपेक्षाकृत बहुत कम होगी, किंतु दूसरी मे वे बहुत अधिक होंगे। छायावादी काल में स्थिति ऐसी नहीं थी। उस समय नाटक, उपन्यास तथा कहानी की भाषा-शैली भी काफी सस्कृतनिष्ठ हो सकती थी। अर्थात् उस समय का अनुवादक उपन्यास तथा कहानी के अनुवाद मे भी सस्कृतनिष्ठ शैली का प्रयोग कर सकता था, जब कि आज ऐसा करने मे वह दस बार सोचेगा।

यह बात शब्द-चयन की दृष्टि से की जा रही थी। शैली के कई अन्य तत्वों के सम्बन्ध मे भी इस प्रकार की बातें स्मरण रखने की हैं। उदाहरण के लिए अलकार या अलंकृत शैली को लेकर भी ऊपर की बातें एक सीमा तक प्रायः ज्यों-की-त्यों दुहराई जा सकती हैं।

तथ्य प्रधान साहित्य मे प्रायः—अपवादो को छोड़कर—पारिभाषिक या अर्धपारिभाषिक शब्दो से युक्त सपाट शैली होती है। उदाहरण के लिए गणित, भौतिकविज्ञान, रसायनविज्ञान, प्राणिविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान आदि ऐसे ही विषय हैं। इनमें अनुवादकला का मूल आधार पारिभाषिक और अर्ध-

पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग है। यों तथ्य-प्रधान साहित्य के इतिहास, राजनीति आदि कुछ विषय ऐसे भी हैं जो कुछ तथ्य-प्रधान होते हुए भी प्रायः शैलीय सौन्दर्य से युक्त भी होते हैं। अतः इनमें एक सीमा तक अनुवादक को शैली का ध्यान भी रखना पड़ता है—हाँ, वह ललित साहित्य से कम होता है और गणित, भौतिकविज्ञान आदि शुद्ध वैज्ञानिक विषयों से ज्यादा। संक्षेप में कथ्य की दृष्टि से जैसे-जैसे हम स्थूल-से-सूक्ष्म की ओर अग्रसर होते हैं, वैसे-वैसे शैली अथवा कलापक्ष को सँवारने की प्रवृत्ति भी बढ़ती चली जाती है।

शैली के प्रसग में अंतिम उल्लेख्य बात यह है कि ऊपर जिस शैली की बात की जा रही थी वह शब्द-चयन, अलंकार, गुण, शब्द-शक्ति आदि ऐसी चीजों से संबद्ध थी, जिनका सम्बन्ध भाषा की व्याकरणिक संरचना से नहीं है। किन्तु इसके अतिरिक्त शैली का एक स्वरूप भाषा की व्याकरणिक संरचना से भी सम्बद्ध होता है। वस्तुत शैली का काफी कुछ सम्बन्ध अनेक मे से एक के चयन से है। मूल लेखक इसी प्रकार अनेक में से एक चुनकर *अपनी विशिष्ट शैली मे बात कहता है, और अनुवादक लक्ष्य भाषा मे अनेक* में एक का चयन करके मूल की शैली को यथासाध्य अनुवाद मे लाने का यत्न करता है। अनेक भाषाओं मे किसी-न-किसी स्तर पर व्याकरण (रूप-रचना एवं वाक्य-रचना) में भी अनेक में से एक के चयन की गुंजाइश होती है। हिंदी के कुछ उदाहरण हैं—भारत की चीजें, भारतीय चीजें, प्रभावित करने वाली रचना-प्रभाव डालने वाली रचना-प्रभावी रचना, भला तुमने स्वीकारा तो-भला तुमने स्वीकार तो किया; मैंने उनसे काम कराया—मैंने उनसे काम करवाया; आज वह नहीं जाएगा—आज वह नहीं जाने का; कमल अब नहीं लडता है—कमल अब नहीं लडता, मैं आज नहीं जा रहा हूँ—मैं आज नहीं जा रहा; मुझसे नहीं हो सकता—मैं नहीं कर सकता; यह भी क्या काम है—यह भी कोई काम है—यह भी क्या कोई काम है, तू तो बडा लडाका है चुप भी रह-लडाका कहीं का, चुप भी रह; वह अमीर नहीं है—वह कहाँ का अमीर है—वह भी कोई अमीर है—वह अमीर कहाँ है, इत्यादि। प्राय. सभी भाषाओं मे व्याकरणिक स्तर पर इस प्रकार के एकाधिक प्रयोगों मे एक चयन का अधिकार मूल लेखक की भाँति ही अनुवादक को भी है। इस चुनाव मे कहीं-कहीं उसकी अपनी रुचि ही एक-मात्र चयन का आधार होती है, और ऐसे चयनों से अनुवादक की अपनी निजी शैली अभिव्यक्त होती है।

इस प्रकार अनुवादक यद्यपि मूल कृति की शैली, अनुवाद के पाठक या श्रोता के लिए उपयुक्त शैली आदि कई बातों से बँधा है, किन्तु फिर भी

अनेक बातों—जैसे व्याकरणिक संरचना, शब्द-चयन, शब्द-शक्ति, गुण, छंद आदि—में उसकी वैयक्तिक रुचि एवं इच्छा भी उसके अनुवाद की शैली की निर्धारिका होती हैं, और इसी रूप में अनुवादक भी एक सीमा तक सर्जक (creative writer) होता है। इसीलिए अन्य सभी बातों के समान होने पर भी वैयक्तिक शैलीय सौन्दर्य तथा सर्जन-शक्ति के कारण किसी अनुवादक का अनुवाद बहुत बढ़िया होता है, तो किसी का सामान्य और किसी का घटिया।

निष्कर्षतः अनुवाद की अनेकानेक शैलियाँ होती हैं और हो सकती हैं जो मूल कृति, विषय, अनुवाद का पाठक या श्रोता, अनुवाद का उद्देश्य, तथा अनुवादक की व्यक्तिगत रुचि आदि पर निर्भर करती हैं।

पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग है। यों तथ्य-प्रधान साहित्य के इतिहास, राजनीति आदि कुछ विषय ऐसे भी हैं जो कुछ तथ्य-प्रधान होते हुए भी प्रायः शैलीय सौन्दर्य से युक्त भी होते हैं। अतः इनमें एक सीमा तक अनुवादक को शैली का ध्यान भी रखना पड़ता है—हाँ, वह ललित साहित्य से कम होता है और गणित, भौतिकविज्ञान आदि शुद्ध वैज्ञानिक विषयों से ज्यादा। संक्षेप में कथ्य की दृष्टि से जैसे-जैसे हम स्थूल-से-सूक्ष्म की ओर अग्रसर होते हैं, वैसे-वैसे शैली अथवा कलापक्ष को सँवारने की प्रवृत्ति भी बढ़ती चली जाती है।

शैली के प्रसंग में अन्तिम उल्लेख्य बात यह है कि ऊपर जिस शैली की बात की जा रही थी वह शब्द-चयन, अलंकार, गुण, शब्द-शक्ति आदि ऐसी चीज़ों से संबद्ध थी, जिनका सम्बन्ध भाषा की व्याकरणिक संरचना से नहीं है। किन्तु इसके अतिरिक्त शैली का एक स्वरूप भाषा की व्याकरणिक संरचना से भी सम्बद्ध होता है। वस्तुतः शैली का काफ़ी कुछ सम्बन्ध अनेक में से एक के चयन में है। मूल लेखक इसी प्रकार अनेक में से एक चुनकर अपनी विशिष्ट शैली में बात कहता है, और अनुवादक लक्ष्य भाषा में अनेक में एक का चयन करके मूल की शैली को यथासाध्य अनुवाद में लाने का यत्न करता है। अनेक भाषाओं में किसी-न-किसी स्तर पर व्याकरण (रूप-रचना एव वाक्य-रचना) में भी अनेक में से एक के चयन की गुंजाइश होती है। हिंदी के कुछ उदाहरण हैं—भारत की चीज़ें, भारतीय चीज़ें, प्रभावित करने वाली रचना-प्रभाव डालने वाली रचना-प्रभावी रचना, भला तुमने स्वीकारा तो—भला तुमने स्वीकार तो लिया; मैंने उनसे काम कराया—मैंने उनसे काम करवाया, आज वह नहीं जाएगा—आज वह नहीं जाने का, कमल अब नहीं लड़ता है—कमल अब नहीं लड़ता; मैं आज नहीं जा रहा हूँ—मैं आज नहीं जा रहा; मुझसे नहीं हो सकता—मैं नहीं कर सकता; यह भी क्या काम है—यह भी कोई काम है—यह भी क्या कोई काम है, तू तो बड़ा लड़ाका है चुप भी रह-लड़ाका कहीं का, चुप भी रह; वह अमीर नहीं है—वह कहाँ का अमीर है—वह भी कोई अमीर है—वह अमीर कहाँ है, इत्यादि। प्रायः सभी भाषाओं में व्याकरणिक स्तर पर इस प्रकार के एकाधिक प्रयोगों में एक चयन का अधिकार मूल लेखक की भाँति ही अनुवादक को भी है। इस चुनाव में कहीं-कहीं उसकी अपनी रुचि ही एक-मात्र चयन का आधार होती है, और ऐसे चयनों में अनुवादक की अपनी निजी शैली अभिव्यक्त होती है।

इस प्रकार अनुवादक यद्यपि मूल कृति की शैली, अनुवाद के पाठक या श्रोता के लिए उपयुक्त शैली आदि कई बातों से बँधा है, किन्तु फिर भी

अनेक बातों—जैसे व्याकरणिक संरचना, शब्द-चयन, शब्द-शक्ति, गुण, छंद आदि—में उसकी वैयक्तिक रुचि एवं इच्छा भी उसके अनुवाद की शैली की निर्धारिका होती है, और इसी रूप में अनुवादक भी एक सीमा तक सर्जक (creative writer) होता है। इसीलिए अन्य सभी बातों के समान होने पर भी वैयक्तिक शैलीय सौन्दर्य तथा सर्जन-शक्ति के कारण किसी अनुवादक का अनुवाद बहुत बढ़िया होता है, तो किसी का सामान्य और किसी का घटिया।

निष्कर्षतः अनुवाद की अनेकानेक शैलियाँ होती हैं और हो सकती हैं जो मूल कृति, विषय, अनुवाद का पाठक या श्रोता, अनुवाद का उद्देश्य, तथा अनुवादक की व्यक्तिगत रुचि आदि पर निर्भर करती हैं।

❁

# अनुवाद और भाषाविज्ञान

अनुवाद में एक भाषा की सामग्री को दूसरी भाषा में व्यक्त करते हैं। दूसरे शब्दों मे अनुवाद भाषा का रूपांतरण है। इसी कारण उसका सीधा सम्बन्ध भाषा के विज्ञान से है। इस बात को अच्छी तरह से समझने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि भाषा है क्या।

भाषा को अनेक रूपों में परिभाषित किया जाता है। बहुत गहराई मे न जाकर इस प्रसंग में इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि भाषा ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसकी सहायता से मानव अपने विचार दूसरों पर व्यक्त करता है। कहने का आशय यह है कि भाषा में प्रयुक्त शब्द वस्तुओं भावों, विचारो आदि के प्रतीक होते हैं। उदाहरण के लिए पुस्तक, मेज, घोड़ा, चीटी, अच्छाई, बुराई, भागना, लिखना, पूजना आदि शब्दो को लें। ये शब्द विभिन्न चीजो, भावों या क्रियाओ आदि के ध्वनि-प्रतीक हैं। इसी कारण इनको सुनते ही उन चीजों, जीवों, भावों या क्रियाओ आदि का बोध हो जाता है। भाषा इन्ही ध्वनि-प्रतीको (या शब्दों) की व्यवस्था है। व्यवस्था के कारण ही वक्ता जो कुछ कहता है श्रोता ठीक-ठीक वही समझता है। भाषा की व्यवस्था कारक, लिंग, वचन, पुरुष, काल, अन्वय आदि विषयक उन अनेकानेक नियमो के रूप मे दिखाई पडती है, जो उस भाषा को नियन्त्रित करते हैं और जिनके माध्यम से वक्ता अपनी बात श्रोता तक ठीक-ठीक पहुँचा पाता है। यदि यह व्यवस्था न होती तो वक्ता कहता कुछ और, श्रोता समझता कुछ और।

भाषा की इस परिभाषा को दृष्टि मे रखते हुए 'अनुवाद' पर विचार करें तो निम्नांकित बातें हमारे सामने आती हैं—

(क) *अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषा मे करते हैं।*

(ख) इन दोनों ही भाषाओं मे विभिन्न चीजो, भावो, क्रियाओ आदि के लिए अपने-अपने ध्वनि-प्रतीक या शब्द होते हैं। जैसे हिंदी में 'जल' है तो रूसी में 'वदा', या अग्रेजी में table में तो हिंदी मे 'मेज', या सस्कृत मे 'कथ्' है तो हिंदी में 'कह्' आदि।

(ग) इन ध्वनि-प्रतीको या शब्दों के अतिरिक्त हर भाषा की कारक,

लिंग, वचन, काल, पुरुष आदि को व्यक्त करने की अपनी विशेष व्यवस्था भी होती है। उदाहरण के लिए संस्कृत में तीन लिंग हैं तो हिंदी में दो है, या अंग्रेजी में क्रिया कर्ता के लिंग के अनुसार नहीं बदलती (Ram goes, sita goes.) तो हिंदी में लिंग के अनुसार बदलती है (राम जाता है, सीता जाती है), या हिंदी में 'घोड़ा' शब्द के घोड़ा, घोड़े (एकवचन जैसे घोड़े को; बहुवचन, जैसे घोड़े दौड रहे हैं), घोड़ों, घोड़ो (जैसे ऐ घोड़ो) चार रूप होते हैं, तो अंग्रेजी horse के केवल दो horse, horses इत्यादि।

(घ) अनुवाद करने में स्रोत भाषा के ध्वनि-प्रतिकों या शब्दों के स्थान पर लक्ष्य भाषा के ध्वनि-प्रतिकों या शब्दों को रखते है। उदाहरण के लिए... horse ran=...घोड़ा दौड़ा। यहाँ अंग्रेजी में ध्वनिप्रतीक या शब्द था horse तो उसके स्थान पर हिंदी में अनुवाद करते समय उस जानवर के लिए हिंदी ध्वनि-प्रतीक या शब्द 'घोड़ा' रखा। इसी प्रकार ran के लिए 'दौड़ा'।

(ङ) ध्वनि-प्रतीकों को बदलने के साथ-साथ अनुवाद करने में, स्रोत भाषा की व्यवस्था के स्थान पर लक्ष्य भाषा की व्यवस्था भी लानी पड़ती है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी में Ram goes, Sita goes दोनों में goes ही है अर्थात् क्रिया कर्ता के लिंग से अप्रभावित है, किंतु हिंदी में अनुवाद करना हो तो क्रिया को कर्ता के लिंग के अनुरूप रखना होगा—राम जाता है, सीता जाती है। इसी तरह 'मैंने एक पुस्तक खरीदी', 'मैंने कई पुस्तकें खरीदीं', 'मैंने एक आम खरीदा' तथा 'मैंने कई आम खरीदे' में क्रिया लिंग वचन में कर्म के अनुरूप होने से चार रूपों में है: खरीदी, खरीदीं, खरीदा, खरीदे। किंतु अंग्रेजी में अनुवाद करना हो तो क्रिया के कर्म से अप्रभावित रहने के कारण चारों वाक्यों में क्रिया का एक ही रूप होगा baught, हिंदी की तरह उसके चार रूप नहीं होंगे।

हमने देखा कि अनुवाद में एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में ले आते है और इसके लिए दो बातें की जाती है. (क) स्रोत भाषा के शब्दों के स्थान पर लक्ष्य भाषा के शब्दों का प्रयोग, तथा (ख) स्रोत भाषा की व्यवस्था के स्थान पर लक्ष्य भाषा की व्यवस्था का प्रयोग। एक भाषा के शब्दों तथा उसकी व्यवस्था के स्थान पर दूसरी भाषा के शब्दों तथा उसकी व्यवस्था लाने के लिए दोनों भाषाओं की तुलना आवश्यक है। इस तरह अनुवाद मूलतः दो भाषाओं की तुलना पर आधारित होता है, अतः उसका सीधा संबंध भाषाविज्ञान के तुलनात्मक रूप से है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर स्रोत और लक्ष्य भाषा की जितनी अच्छी तुलनात्मक सामग्री उपलब्ध होगी,

अनुवाद उतना ही अच्छा होगा तथा उतना ही कम समय मे किया जा सकेगा।

यह तुलना शब्द-समूह तथा भाषा की व्यवस्था दोनों की ही होती है। शब्द-समूह की तुलना का अर्थ हुआ अर्थ-परिधि की दृष्टि से शब्दो की तुलना। व्यवस्था का अर्थ हुआ ध्वनि, रूपरचना तथा वाक्यरचना की दृष्टि से भाषाओं की तुलना। अनूद्य सामग्री यदि मौखिक न होकर लिखित है तथा उसे अनूदित करके लक्ष्य भाषा मे लिखना है तो दोनो की लिपियों की तुलना भी आवश्यक सकती है। निष्कर्षतः कहा सकता है कि भाषाविज्ञान भाषा का जिन-जिन दृष्टियो—ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ, लिपि—से अध्ययन करता है, अनुवाद के लिए उन सभी दृष्टियो से स्रोत, और लक्ष्य भाषा की तुलना की आवश्यकता होती है।

दूसरे शब्दों मे यदि भाषा के मौखिक तथा लिखित दोनो रूपो को दृष्टि मे रखें तो ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ और लिपि—ये छः ही भाषा के अग हैं। इन्ही का प्रयोग भाषा होता है। इसीलिए भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाला विज्ञान भाषाविज्ञान इन छः अगो या शाखाओं मे ही विभक्त है : ध्वनि-विज्ञान, शब्दविज्ञान, रूपविज्ञान, वाक्यविज्ञान, अर्थविज्ञान और लिपिविज्ञान। अनुवाद मे—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है—ध्वनि, शब्द, रूप आदि इन छओ की दृष्टि से स्रोत और लक्ष्य भाषाओ की तुलना करनी होती है अतः अनुवाद का सबध भाषाविज्ञान की इन छओं शाखाओ से है। आगे स्वतत्र अध्यायो मे अनुवाद और भाषा-विज्ञान की इन शाखाओं के सबधो पर सोदाहरण विचार किया गया है।

इस प्रसग मे एक बात और भी सकेत्य है। भाषाविज्ञान के चार रूप हैं : एककालिक, बहुकालिक (ऐतिहासिक), तुलनात्मक तथा प्रायोगिक। इनमे एककालिक में किसी भाषा के किसी एक काल के रूप का विश्लेषण करते हैं। ऐतिहासिक मे कई एककालिक विश्लेषणों को शृखलित करके उसका इतिहास देखते हैं, तुलनात्मक मे दो या अधिक भाषाओं की तुलना करते हैं तथा प्रायोगिक मे इन अध्ययनों के परिणामो का अन्य क्षेत्रो मे प्रयोग करते हैं। गहराई से देखें तो इनमे एककालिक ही मूल है। किसी एक या कई भाषाओं के एककालिक अध्ययन पर ही शेष तीन आधारित होते हैं। उदाहरण के लिए तुलनात्मक भाषाविज्ञान लें, जिससे अनुवाद का सीधा संबध है। इसमे दो भाषाओं की तुलना की जाती है, किंतु तुलना तब तक सभव नही जब तक कि दोनो भाषाओं का 'एक काल' का विश्लेषण हमारे पास न हो। यह 'एक काल' स्रोत के लिए भाषा के लिए वह काल होता है जिस काल की

सामग्री का अनुवाद करना होता है तथा लक्ष्य भाषा के लिए वह काल होता है जिस काल की भाषा में अनुवाद करना होता है। ठोस उदाहरण लेना चाहें तो मान लें शेक्सपीयर के किसी नाटक का आज की हिंदी में अनुवाद करना है। इसके लिए शेक्सपियरकालीन अंग्रेज़ी की वर्तमानकालीन हिंदी से तुलना करनी पड़ेगी। दूसरे शब्दों में पहले शेक्सपियरकालीन अंग्रेज़ी का विश्लेषण कर लेंगे और इन दोनों विश्लेषणों के आधार पर दोनों की तुलना करके समानताओं-असमानताओं को अलग-अलग निकालेंगे। जो चीज़ें दोनों में समान हैं, उनका अनुवाद करना कोई समस्या नहीं होती। एक के स्थान पर दूसरे को रख देते हैं। समस्या होती है असमानताओं में। जैसे मान लें स्रोत भाषा में क्रिया में कोई विशेष काल है, किंतु लक्ष्य भाषा में वह नहीं है, फिर उसका कैसे अनुवाद करें। इसी प्रकार स्रोत भाषा में कोई शब्द है किंतु लक्ष्य भाषा में वह नहीं है (जैसे हिंदी देवदासी के लिए अंग्रेज़ी में कोई शब्द नहीं है), फिर अनुवादक क्या करे। इस प्रकार तुलनात्मक भाषाविज्ञान एककालिक भाषाविज्ञान पर ही निर्भर करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि अनुवाद तुलनात्मक भाषाविज्ञान से संबद्ध होते हुए भी मूलतः एककालिक भाषाविज्ञान पर ही आधारित है। एककालिक भाषाविज्ञान ही स्रोत और लक्ष्य भाषा का विश्लेषण कर तुलनात्मक भाषाविज्ञान या तुलना के लिए सामग्री प्रस्तुत करता है।

प्रायोगिक भाषाविज्ञान जैसा कि संकेत किया गया भाषाविज्ञान का वह रूप है, जिसमें भाषा के अध्ययन-विश्लेषण या उसके निष्कर्षों का अन्य कामों के लिए प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए उच्चारण-संबंधी दोषों को दूर करना, टाइपराइटर के की-बोर्ड का विशेष भाषा के लिए विशेष काल में क्रम निर्धारित करना, मातृभाषा या अन्यभाषा की शिक्षा देना, या कोश, भाषा की पाठ्य-पुस्तकें या व्याकरण तैयार करना आदि प्रायोगिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत आते हैं, क्योंकि इनमें भाषाविज्ञान में प्राप्त अध्ययन-विश्लेषण या उसके निष्कर्षों का उपयोग किया जाता है। अनुवाद भी इन्हीं की तरह प्रायोगिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत ही आता है, क्योंकि उसमें भी जाने-अनजाने जैसा हमने देखा, एककालिक तथा तुलनात्मक भाषाविज्ञान के निष्कर्षों से सहायता ली जाती है।

निष्कर्षतः अनुवाद भाषाविज्ञान से बहुत अधिक संबद्ध है। वह स्वयं प्रायोगिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत आता है तथा उसके आधार मूलतः एककालिक भाषाविज्ञान एवं तुलनात्मक भाषाविज्ञान के निष्कर्ष होते हैं। ✪

# अनुवाद और ध्वनिविज्ञान

अनुवादक जिस सामग्री का अनुवाद करता है उसमें दो प्रकार के शब्द हो सकते हैं। एक तो वे जिनका अनुवाद किया जाता है, और दूसरे वे जिनका अनुवाद नहीं किया जाता, और जिन्हें थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ प्रायः मूल रूप में ही स्रोत भाषा से उठाकर लक्ष्य भाषा में रख देते हैं। इस दूसरे प्रकार के शब्दों को स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में लाने में अनुवादक को ध्वनिविज्ञान का सहारा लेना पड़ता है। ऐसे शब्द प्रायः व्यक्तिवाचक संज्ञा या पारिभाषिक आदि होते हैं।

ध्वनिविज्ञान एकाधिक प्रकार का होता है, जिनमें वर्णनात्मक ध्वनिविज्ञान तथा तुलनात्मक ध्वनिविज्ञान इन दो की ही सहायता प्रायः अनुवादक को लेनी पड़ती है। वर्णनात्मक ध्वनिविज्ञान के आधार पर स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा की ध्वनियों को हमें समझना पड़ता है और फिर तुलनात्मक ध्वनिविज्ञान हमें इस निर्णय तक पहुँचाता है कि स्रोत भाषा की किसी ध्वनि के लिए लक्ष्य भाषा की किस ध्वनि को प्रतिनिधि माना जाए।

वस्तुतः जब अनुवादक के सामने इस प्रकार की समस्या आए तो उसे स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की ध्वनियों की तुलना करनी चाहिए। तुलना करने पर ध्वनियों के मोटे रूप से चार वर्ग बन सकते हैं :

(क) कुछ ध्वनियाँ दोनों भाषाओं में समान होती हैं।
(ख) कुछ ध्वनियाँ लगभग समान होती हैं।
(ग) कुछ ध्वनियाँ दोनों में होती हैं, किंतु एक-दूसरे से काफी भिन्न।
(घ) कुछ ध्वनियाँ ऐसी होती है जो स्रोत भाषा में होती हैं किंतु उनके समान, लगभग समान या उनसे मिलती-जुलती ध्वनियाँ लक्ष्य भाषा में नहीं होती।

आगे इन्हें क्रमशः लिया जा रहा है।

**समान ध्वनियाँ**

शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से कम ही भाषाओं की कुछ ध्वनियाँ आपस में पूर्णतः समान होती हैं, किंतु यदि उस शुद्ध वैज्ञानिकता की बात छोड़ दें तो यह कहा

जा सकता है कि काफी भाषाओं की काफी ध्वनियाँ आपस में मोटे रूप से समान होती हैं। उदाहरण के लिए रूसी प्, ब्, त्, द्, क्, ग्, म् (पे, बे, ते, दे, का, गे, एम)—हिंदी प्, ब्, त्, द्, क्, ग्, म्; अंग्रेजी ग्, ब्, न्, म्, य्, स्, फ् (G, B, N, M, Y, S-C, F)—हिन्दी ग्, ब्, न्, म, य्, म्, फ्; हिंदी क्, ग, न्, द, प्, ब्, म्—फारसी क्, ग्, त्, द्, प, ब्, म् (काफ, गाफ़, ते, दाल, पे, बे, मीम), तथा संस्कृत क्, ख्, ग्, घ्, श, य्, त, द, प्, ब्, म्—हिंदी क्, ख्, ग्, घ्, श्, य्, त्, द्, प्, ब्, म् आदि व्यंजन समान हैं। इस प्रकार की समान ध्वनियाँ अनुवादक के लिए कोई समस्या नहीं हैं। वह बड़ी सुविधापूर्वक स्रोत भाषा की ध्वनि के लिए लक्ष्य भाषा की समान ध्वनि का प्रयोग कर सकता है।

लगभग समान ध्वनियाँ

लगभग समान ध्वनि का आशय ऐसी ध्वनियों से है जो कुछ बातों में तो समान हैं और कुछ बातों में स्पष्टतः असमान। उदाहरण के लिए संस्कृत च्, छ, ज्, झ् (स्पर्श)—हिंदी च्, छ, ज्, झ् (स्पर्श-संघर्षी); संस्कृत न् (दंत्य)—हिंदी न् (वर्त्स्य); हिंदी ज् (वर्त्स्य)—अरबी ज् (जे, दंत्य-वर्त्स्य); पंजाबी घ्, भ्—हिंदी घ्-भ् आदि ध्वनियाँ लगभग समान हैं। प्रथम वर्ग की तुलना में इस वर्ग में समानता कम है, किंतु अनुवादक स्रोत भाषा की ऐसी ध्वनियों के लिए भी लक्ष्य भाषा में प्राप्त लगभग समान ध्वनियों का प्रयोग करता है, क्योंकि उसके पास कोई और चारा नहीं होता।

भिन्न ध्वनियाँ

इस वर्ग में ऐसी ध्वनियाँ आती हैं जो मूलतः, उच्चारण तथा श्रवण के स्तर पर भिन्न होती हैं। अरबी स्वाद अक्षर का 'स्' तथा से अक्षर का 'स्' ये दोनों हिंदी 'स्' से भिन्न हैं, इसी प्रकार अरबी जोय, ज्वाद, तथा ज़ाल के 'ज्' हिंदी के ज् से भिन्न हैं। भिन्नता के बावजूद भी ये ध्वनियाँ कुछ मिलती-जुलती लगती हैं। अनुवादक इसी कारण भिन्नता का विचार न करके इन्हीं का प्रयोग करता है। अरबी साबुन में स्वाद है तथा साबित में से, किंतु हिंदी में इन दोनों ही शब्दों को सामान्य स में लिखते हैं। इस प्रकार अरबी ज़ालिम (जोय), जरूर (ज्वाद), ज़ात (ज़ाल) तीनों ही हिन्दी में सामान्य ज से लिखे जाते हैं। यह उल्लेख्य है कि 'स्वाद' का 'स्' कंठस्थानयुक्त दंत-वर्त्स्य अघोष संघर्षी, 'से' का स 'थ्' से मिलता-जुलता, जोय का ज् कंठस्थानयुक्त दंतवर्त्स्य घोष संघर्षी आदि हैं।

आए मगृत, अरब, इज्जत, ऐश, ईसा, ईसवी आदि शब्दों में आदि में थी किंतु हिंदी में आकर लुप्त हो गई, और उनके बाद आनेवाला स्वर ही केवल शेष रह गया है।

ऊपर इस बात की चर्चा की गई है कि मूल सामग्री में कुछ शब्द ऐसे हो सकते हैं, जिनका अनुवाद नहीं किया जाता और जिन्हें ज्यों-का-त्यों या थोड़े-बहुत ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ लक्ष्य भाषा में रख दिया जाता है। विभिन्न भाषाओं से हिंदी में आने वाले इस प्रकार के कुछ शब्द ये हैं :

व्यक्तिनाम—टामस (Thomas थॉमस, थोमस, थामस); जॉन (Jhon जोन, जान); ख्रुश्चोफ (Khrushchev ख्रुश्चोव); तोलस्तोय (Tolostoy टालस्टाय, टॉलस्टाय टोलस्टोय; येस्पर्सन (Jespe rsen जेस्पर्सन); प्लेटो (Plato प्लातोन, अफलातून); ब्रील (Breal ब्रेआल, ब्रेयल); मेये (Meillet मीलेट, मेइए), बाल्ज़ाक (Balzac बालज़क); तेसीतोरी (Tessitori टेसिटोरी, टेसिटरी)। नागरिप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिंदी विश्वकोश के प्रथम तीन खंडों में चीनी यात्री ह्वेनसांग का नाम नौ रूपों में आया है: हुयेनत्साग, युवान्च्वाङ्, युवानच्वांग,युवानचांग, हुएनत्सांग, युवानच्वाङ्, ह्वेनत्साग, ह्येन-त्साग, ह्वेनसांग। ऐसे ही अरस्तू (आरिस्टॉटिल); सुकरात (साकरटीज़) इत्यादि।

पुस्तक-नाम—डस कैपिटल (Das kapital दास, डास), कुरान (कुरआन) इत्यादि।

ट्रेड-नाम—नैस काफे (कैफे, कफे)।

भाषा-नाम—इटेलियन (इतालवी), रूसी (रशन), बेंगला (बंगाली) आदि।

संस्था-नाम—साहित्य अकादमी (साहित्य एकेडमी, एकाडमी)।

महाद्वीप-नाम—अमेरिका (अमरीका, अमेरीका), यूरप (योरोप, यूरोप, योरप) आदि।

देश-नाम—अमरीका (अमेरीका, अमेरिका), नेपाल (नैपाल), बरतानियाँ (ब्रिटेन), ब्रह्मा (बरमा), इटली (इटैली), कनाडा (कैनाडा, केनेडा, कैनेडा)।

नगर-नाम—मास्को (मस्क्वा), लंदन (लंडन), प्राग (प्राहा), ओटवा (ओटावा), ओहियो (ओहायो) आदि।

समुद्र-नाम—अटलांटिक, (अतलांतिक, ऐटलांटिक)।

नदी-नाम—ह्वांगहो (ह्वंगहो), टेम्ज़ (टेम्स, थेम्स, थेम्ज़)।

विशिष्ट या पारिभाषिक शब्द—विटामिन (विटामिन, विटेमिन, विटैमिन), कॉलिज (कालेज, कॉलेज, कॉलेज, कौलिज), रेस्त्रां (रेस्टोरेंट, रेस्तोरां, रेस्टोरां), राडार (रडार), पेट्रोल (पिट्रोल, पिट्रोल) आदि।

इस प्रकार की सूची बहुत बड़ी बन सकती है। इसे देखने पर मुख्यतः निम्नांकित समस्याएं उठती हैं—

(क) **अनुवादक ऐसे शब्दों की वर्तनी का अनुसरण करे या उच्चारण का**—अपवादों की बात और है किन्तु सामान्यतः शब्द के उच्चारण पर ही ध्वनि की दृष्टि से हमारा ध्यान होना चाहिए। Rousseau, Meillet, Depot उच्चारण में ही रूसो, मेय्ये, डीपो हैं, वर्तनी का अनुसरण करें तो उनके हिन्दी रूपान्तरण कुछ और ही होंगे। वस्तुतः जिस नाम की वर्तनी उच्चारण से भिन्न है, वह वर्तनी उस भाषा में उस शब्द के पुराने उच्चारण का प्रतिनिधित्व करती है और पुराना उच्चारण पुराने काल का होता है, अतः उस का अनुसरण नहीं किया जा सकता। इस बात को एक सामान्य शब्द द्वारा समझाया जा सकता है। अंग्रेजी का एक शब्द है Psycholoy। यह वर्तनी बता रही है कि प्राचीन काल में इसका उच्चारण रहा होगा 'प्साइकालजी', किंतु उस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि मनोविज्ञान को अंग्रेजी में 'प्साइकालजी' कहते हैं, अपितु यह कहा जाएगा कि उसे 'साइकॉलजी' कहते हैं। इस प्रकार वर्तमान उच्चारण ही अनुवादक के लिए महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान का आशय है जिस काल में लिखित सामग्री का वह अनुवाद कर रहा है। इस दृष्टि से हिन्दी में येस्पर्सन (जेस्पर्सन नहीं), ख्रुश्चोफ (ख्रुश्चेव नहीं), प्लातोन् (प्लेटो या अफलातून नहीं), शार्ल (फ्रांसीसी नामों में चार्ल्स नहीं), ऐंटनी (ऐंथनी नहीं) तथा वेर्नेर (वर्नर नहीं) का उच्चारण तथा लेखन में प्रयोग होना चाहिए।

(ख) **यदि स्रोत भाषा के किसी शब्द का वास्तविक उच्चारण से भिन्न उच्चारण लक्ष्य भाषा में बहुत प्रचलित हो तो अनुवादक क्या करे**—ऐसी स्थिति में प्रचलित उच्चारण को ही अपनाना उचित होगा। अनुवादक कोशिश भी करे तो बहुप्रचलित उच्चारण को हटाकर वह वास्तविक उच्चारण को लाद नहीं सकता। एक बार जिसका प्रचार हो गया, हो गया। इस प्रकार स्रोत भाषा में जो उच्चारण प्रचलित है उसी का प्रयोग अनुवादक को करना चाहिए। उदाहरण के लिए प्लेटो का शुद्ध नाम 'प्लातोन' तथा 'सार्कोज़' या 'सुकरात' का 'सॉक्रातीज़' है, किंतु हिन्दी में उन्हें क्रमशः प्लातोन या

साक्रातीम नहीं कहा जा सकता। कुछ अनुवादकों ने ऐसा किया है किन्तु इन पंक्तियों का लेखक इससे सहमत नहीं है। अगर यह परम्परा चलाएँ तो कितनों का और कहाँ तक हम मूल नाम खोज सकेंगे।

**(ग) लक्ष्य भाषा में एक से अधिक उच्चारणों के प्रचलित होने पर अनुवादक किसे अपनाए**—कभी-कभी स्रोत भाषा के किसी शब्द के लक्ष्य भाषा में एक से अधिक उच्चारण प्रचलित होते हैं। ऐसी स्थिति में अनुवादक के लिए तीन सुझाव दिए जा सकते हैं: (१) उन उच्चारणों मे जिसका प्रयोग सर्वाधिक हो अनुवादक उसी का प्रयोग करे। उदाहरण के लिए रेस्टोरेंट, रेस्तोरा, रेस्त्रां आदि मे वह रेस्त्रां का प्रयोग कर सकता है। (२) यदि एक से अधिक उच्चारण बहुप्रयुक्त हों तो, उनमें जो उच्चारण स्रोत भाषा के ठीक उच्चारण के अधिक निकट हो, उसका प्रयोग किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए कालेज तथा कॉलिज दोनों उच्चारण हिन्दी प्रदेश मे बहुप्रयुक्त हैं, इनमें कॉलिज अंग्रेजी उच्चारण के अधिक निकट है, अतः कालेज की तुलना में कॉलिज का प्रयोग अनुवादक के लिए अधिक उपयुक्त होगा। (३) कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि स्रोत भाषा के किसी शब्द के एकाधिक उच्चारण लक्ष्य भाषा मे इतने अधिक प्रचलित हो जाते हैं कि उस भाषा में दोनों प्रायः पूर्ण स्वीकृत-से होते हैं। ऐसी स्थिति में दोनों को ही उस भाषा में गृहीत मानकर दोनों मे किसी का भी प्रयोग किया जा सकता है, चाहे वे मूल उच्चारण के निकट हों या नहीं। उदाहरण के लिए हिन्दी में अमेरिका और अमरीका की प्रायः यही स्थिति है।

सैद्धान्तिक स्तर पर इस प्रसंग में कुछ प्रश्न और भी उठाए जा सकते हैं। क्या अनुवादक अपने अनुवाद को उच्चारण की दृष्टि से मूल के अधिक निकट लाने के लिए स्रोत भाषा की कोई ऐसी ध्वनि लक्ष्य भाषा में ला सकता है जो लक्ष्य भाषा में न हो। मेरे विचार में अनुवादक को यह अधिकार नहीं है। बोलने में अनुवादक कुछ ऐसी ध्वनि से युक्त शब्दों का प्रयोग कर ले, यह दूसरी बात है किन्तु किसी भाषा की ध्वनि-व्यवस्था में परिवर्तन लाने या ध्वनियों की संख्या बढ़ाने का उसे कोई अधिकार नहीं है। यथासाध्य उसे अनुवाद इस रूप मे करना चाहिए कि वह लक्ष्य भाषा की ध्वनि-व्यवस्था के किसी भी रूप मे प्रतिकूल न हो, और न उसकी ध्वनि-व्यवस्था में किसी भी रूप में किसी परिवर्तन-परिवर्धन की आवश्यकता हो।

किसी भाषा के ठीक उच्चारण के लिए उस भाषा के संयुक्त स्वर, संयुक्त व्यंजन, अनुनासिक स्वर, स्वरानुक्रम (Vowel sequance) व्यंजनानु-

क्रम (Consonant sequence), बलाघात (stress), सुरलहर (Intonation), संगम (juncture) तथा आक्षरिक विभाजन (syllabic division) आदि का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। ध्वनिवैज्ञानिक स्तर पर अनुवादक के लिए यह संकेत बहुत आवश्यक है कि उसे अनुवाद मे यथासाध्य उपर्युक्त दृष्टियों से लक्ष्य भाषा की प्रकृति को अपने ध्यान में रखना चाहिए, और कहीं भी स्रोत भाषा की ध्वनि-व्यवस्था का उस पर प्रभाव नही पड़ना चाहिए। उदाहरण के लिए कोई हिन्दी से अंग्रेजी में अनुवाद करने वाला 'गया ?' (अर्थात् क्या वह गया ?) को 'went ?' रूप मे अनूदित करके हिंदी सुरलहर का अंग्रेजी मे प्रयोग करके अपने अनुवाद-कार्य की इतिश्री समझ ले तो उसे सफल अनुवादक नही माना जाएगा। सफल अनुवादक का ध्यान सर्वदा ही लक्ष्य भाषा की प्रकृति पर होता है, और इसे वह किसी भी रूप में परिवर्तित नहीं होने देता।

पुनश्च—

ऊपर ध्वनि के सामान्य रूप के आधार पर बात की जा रही थी। यदि और गहराई मे जाकर इस समस्या को हम अधिक वैज्ञानिक स्तर पर लेना चाहे तो स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा मे ध्वनियों को रखते समय हमे ध्वनिग्राम (Phoneme) तथा सध्वनि (allophone) की दृष्टि से विचार करना पड़ेगा। ऐसी स्थिति मे अनुवाद की समस्या पर आने के पूर्व ध्वनिग्राम तथा सध्वनि को समझ लेना आवश्यक होगा। यों तो इन दोनों की पूरी गहराई से समझने के लिए इनसे सबद्ध बातों को काफी विस्तार से लिया जाना चाहिए, किन्तु अनुवाद के प्रसग में इन्हे मोटे रूप से समझाकर भी काम चलाया जा सकता है। हम सामान्य प्रयोग मे यह प्रायः कहते हैं कि अमुक भाषा मे इतने स्वरो तथा इतने व्यजनो का प्रयोग होता है। ये स्वर तथा व्यजन सामान्यत. ध्वनिग्राम होते हैं। हर ध्वनिग्राम के वास्तविक भाषा मे प्रयुक्त विभिन्न रूपो को ही सध्वनि कहते हैं। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी में एक व्यजन ध्वनिग्राम क् है जो कभी तो k, कभी c और कभी q आदि के द्वारा लिखा जाता है। इस 'क' ध्वनिग्राम की मोटे रूप से तीन सध्वनियाँ है : (१) क् का थोड़ा महाप्राणित रूप जो प्रायः कैम्प, कोट जैसे शब्दों मे मिलता है; (२) क् का थोड़ा परचीकृत रूप जो cow जैसे शब्दो मे है तथा जो प्रायः क़ के समान है; (३) क का सामान्य रूप जो sky जैसे शब्दो मे आता है। इसका आशय यह हुआ कि शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो अंग्रेज़ी मे

क् की इन तीन सध्वनियों का ही प्रयोग होता है और इन तीनों संध्वनियों के समूह को क् ध्वनिग्राम कहा जाता है। अर्थात् भाषा में उच्चारण करते समय हम वास्तविक रूप में सध्वनियों का ही उच्चारण करते हैं, ध्वनिग्राम का नहीं। ध्वनिग्राम तो एक वर्ग की सध्वनियों का प्रतिनिधि माना है। अर्थात् अंग्रेजी में क,[1] क,[2] क[3] संध्वनियों का क् ध्वनिग्राम प्रतिनिधि है। प्रयोग क[1], क[2], क[3] का होता है, अर्थात् संक्षेप में वर्ग के सदस्यों के नाम न लेकर प्रतिनिधि का ही नाम लेते हैं। इसे यों भी कहा जा सकता है कि हर ध्वनिग्राम के अंतर्गत एकाधिक संध्वनियाँ होती है जो भाषा-विशेष में प्रयुक्त होती हैं। जब हम किसी भाषा में कुछ स्वरों और कुछ व्यंजनों के प्रयुक्त होने की बात करते हैं तो ये स्वर-व्यंजन तत्वतः ध्वनिग्राम ही होते हैं, किंतु वास्तविक रूप से प्रयोग इन ध्वनिग्रामों का न होकर इनकी विभिन्न संध्वनियों का होता है। एक उदाहरण हिंदी से लें। हिन्दी में एक व्यंजन ध्वनिग्राम ल् है। इसकी कई संध्वनियाँ हैं, जैसे ल[1] (लो, लोटा, लोग आदि में), ल[2] (लू, लूट आदि), ल[3] (ला, लाठी, लाट आदि में), ल[4] (बाल्टी, कुलटा, उलटी आदि में) आदि। ये सभी ल सध्वनिया आपस में थोड़ी-बहुत भिन्न हैं। हिन्दी में वास्तविक रूप में इन्ही ल-संध्वनियों का प्रयोग होता है, किंतु हम जब कहते हैं कि हिन्दी में एक व्यंजन ल है तो हम ल-ध्वनिग्राम की बात करते हैं जो विभिन्न ल-संध्वनियों का प्रतिनिधि है।

इस आधार पर यह स्पष्ट है कि हर भाषा में प्रयोग संध्वनियों का होता है, किंतु अनुवाद में स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में शब्दों को रखते समय हम स्रोत ध्वनिग्राम के स्थान पर लक्ष्य ध्वनिग्राम रखते हैं। अर्थात् स्रोत-भाषा में प्रयुक्त सध्वनि से उस ध्वनिग्राम पर जाते हैं जिसका वह सदस्य या उपरूप होती है, फिर उस ध्वनिग्राम के स्थान पर लक्ष्य भाषा का निकटतम ध्वनिग्राम लाते हैं और बोलते समय लक्ष्य भाषा में उस स्थिति में प्रयुक्त सध्वनि (लक्ष्य भाषा के ध्वनिग्राम से) का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए मान लें अंग्रेजी से कोई अनुवाद किया जा रहा है। उसमें pants शब्द है। यदि इसके उच्चारण के अनुरूप हिन्दी में बोलना चाहें तो हिन्दी में इसका उच्चारण फैन्ट्स होगा, क्योंकि इसका प अंग्रेजी उच्चारण में कुछ महाप्राण है, न् वर्त्स्य है तथा ट् भी वर्त्स्य है। सध्वनि तथा ध्वनिग्राम को बीच में लाएँ तो क्रम कुछ इस प्रकार होगा—

(क) यदि सुनकर अनुवाद किया जा रहा है तो स्रोत भाषा में शब्द का उच्चारण (सध्वनि के स्तर पर) फ़न्ट्स→स्रोत भाषा में ध्वनिग्रामों के स्तर

पर उच्चारण पैन्ट्स→लक्ष्य भाषा में उच्चारण (संध्वनि स्तर पर) पैण्ट् (क्योंकि हिंदी में ट वर्त्स्य न होकर प्रतिवेष्ठित तालव्य है अतः न् ण् रूप में उच्चरित होगा। साथ ही उसके अंत्य स् का हिंदी में लोप हो जाएगा।) इस तरह सध्वनि तथा ध्वनिग्राम के माध्यम से अनुवाद करने से लक्ष्य भाषा में ऐसे शब्दों के उच्चारण में गलती की संभावना नहीं रह जाती।

(ख) यदि किसी लिखित सामग्री से अनुवाद करके बोला जा रहा है तो स्रोत भाषा में शब्द की वर्तनी pants→स्रोत भाषा में शब्द का उच्चारण (सध्वनियों के स्तर पर) फ़ैन्ट्स→स्रोत भाषा में ध्वनिग्रामों के स्तर पर पैन्ट्स→लक्ष्य भाषा में उच्चारण (सध्वनि के स्तर पर) पैण्ट्।

कुछ और उदाहरण है : स्रोत में वर्तनी mail→स्रोत भाषा में उच्चारण (सध्वनि तथा ध्वनिग्राम स्तर पर), मेइल (एइ संयुक्त स्वर है)→लक्ष्य भाषा में उच्चारण मेल। coat→खोउट (सध्वनि स्तर पर क का थोड़ा महाप्राण रूप, ओउ संयुक्त स्वर, ट् वर्त्स्य)→कोउट (ध्वनिग्राम स्तर पर) →लक्ष्य भाषा में उच्चारण कोट् (सध्वनि स्तर पर)। Jespersen स्रोत भाषा में येस्पःसन् (उच्चारण मोटे रूप से सध्वनि तथा ध्वनिग्राम स्तर पर)→ लक्ष्य भाषा में उच्चारण येस्पर्सन् (स्रोत भाषा की वर्तनी से प्रभावित)। Thermameter→थ मामीटम (अंग्रेज़ी में इसका उच्चारण सध्वनि तथा ध्वनिग्राम स्तर पर लगभग यही है, थ् संघर्षी, दोनों र लुप्त; ट् वर्त्स्य)→ लक्ष्य भाषा हिंदी में उच्चारण थर्मामीटर् (सध्वनि स्तर पर; संघर्षी थ् के स्थान पर स्पर्श थ्; वर्त्स्य ट के स्थान पर प्रतिवेष्टित तालव्य ट; र का आगम वर्तनी के प्रभाव से)।

# १०

# अनुवाद और अनुलेखन

अनूद्य सामग्री में दो प्रकार के शब्द मिलते हैं। एक तो वे जिनका अनुवाद किया जाता है और दूसरे वे—जैसे व्यक्तिवाचक संज्ञा या पारिभाषिक शब्द आदि—जिनका अनुवाद नहीं किया जाता और जिन्हें थोड़े-बहुत रूपांतर के साथ प्रायः मूल रूप में ही लक्ष्य भाषा में लिख दिया जाता है। यहाँ स्रोत भाषा के ऐसे शब्दों को अनुवाद में लक्ष्य भाषा में लिखने की समस्या पर विचार करना है। इसका संबंध लिपिविज्ञान से है।

अनुवाद में ऐसी समस्या दो रूपों में आती है। यदि अनुवादक किसी से कोई बात सुनकर उसका अनुवाद करके लिख रहा है तो वह स्रोत-भाषा की ध्वनि को पहले लक्ष्य भाषा की ध्वनि में परिवर्तित करता है और फिर लक्ष्य भाषा की उन ध्वनियों के प्रतिनिधि लिपि-चिह्नों में उन्हें लिखता है।

स्रोत भाषा-ध्वनि→लक्ष्य भाषा-ध्वनि→लक्ष्य-भाषा-लिपिचिह्न

किंतु यदि वह किसी लिखित सामग्री से अनुवाद कर रहा है तो इस क्रम में वृद्धि हो जाती है—

स्रोत भाषा-लिपिचिह्न→स्रोत भाषा-ध्वनि→लक्ष्य भाषा-ध्वनि→लक्ष्य भाषा-लिपिचिह्न

यहाँ यह उल्लेख्य है कि सामान्यतः यह समझा जाता कि लिखित सामग्री से अनुवाद करने में ऐसे शब्दों में सीधे स्रोत भाषा-लिपिचिह्न के स्थान पर लक्ष्य भाषा-लिपिचिह्न रखने से काम चल जाता है:—

स्रोत भाषा-लिपिचिह्न > लक्ष्य भाषा-लिपिचिह्न

किंतु ऐसी धारणा बहुत ठीक नहीं है। यदि स्रोत भाषा में शब्द की वर्तनी उसके उच्चारण के ठीक अनुरूप हो तथा लक्ष्य भाषा में भी वर्तनी उस शब्द के उच्चारण के पूर्णतः अनुरूप हो, तब तो ऐसा हो सकता है, किंतु वर्तनी और उच्चारण की यह द्विपक्षी अनुरूपता यदि मिलेगी भी तो अपवादतः, इसीलिए अनुवादक के लिए अधिक अच्छा यही होता है कि वह स्रोत भाषा की वर्तनी से उसके उच्चारण पर आए, फिर स्रोत भाषा के उच्चारण से लक्ष्य भाषा के उच्चारण पर और फिर लक्ष्य भाषा के उच्चारण से लक्ष्य भाषा में उसकी

वर्तनी पर। ऐसा करने मे गलती की संभावना बिल्कुल नही रहती। उदाहरण के लिए मान लीजिए अंग्रेजी सामग्री में Jespersen नाम आया है, यदि हम सीधे स्रोत भाषा की वर्तनी से लक्ष्य भाषा की वर्तनी पर आना चाहें और अक्षर के लिए अक्षर रखें तो हिंदी अनुवाद में यह नाम हो जायगा जेस्पेर्सेन जबकि इसे हिंदी में होना चाहिए येस्पर्सन। Rousseau या Meillet जैसे फ्रांसीसी नामों मे तो और भी गड़बड़ हो जाएगी। अक्षर के लिए अक्षर लिखे तो हिंदी में ये नाम हो जाएगे—'राउस्सेअउ' तथा 'मेइल्लेत' जबकि वस्तुत: इन्हे होना चाहिए 'रूसो' और 'मेइये'। अत: अनुवादक के लिए सबसे निरापद रास्ता यही है कि वह स्रोत भाषा की वर्तनी से स्रोत भाषा में उच्चारण पर आए, फिर स्रोत भाषा के उच्चारण को लक्ष्य भाषा के उच्चारण मे ले आए और फिर उसे लक्ष्य भाषा मे उसके वर्तनी के नियमानुसार लिखे।

पुनश्च—

अनुवाद में ऐसे शब्दों के लेखन में सामान्यतः दो रास्तों का सुझाव दिया जा सकता है :

(क) लिप्यंतरण (Transliteration)—अर्थात् स्रोत भाषा की वर्तनी में प्रयुक्त अक्षरों के स्थान पर लक्ष्य भाषा में प्राप्त समध्वनीय अक्षरों के न होने पर लगभग समध्वनीय अक्षरों, उनके भी न होने पर निकटध्वनीय अक्षरों या उनके भी न होने पर 'अनुवाद और ध्वनिविज्ञान' शीर्षक अध्याय में दी गई बातों के आधार पर जो भी अक्षर उपयुक्त हो उसका प्रयोग करना। कुछ शब्दों (जैसे अंग्रेजी Film के लिए हिंदी फिल्म) में यह रास्ता एक सीमा तक काम कर सकता है, किंतु अनुवादक सभी शब्दों (जैसे Rousseau) का लिप्यंतरण नहीं कर सकता। प्रश्न यह उठता है कि इस बात का निर्णय कैसे किया जाय कि कोई शब्द लिप्यंतरणीय है या नहीं। इसका एक मात्र उत्तर यह है कि हमें यह देखना पड़ेगा कि स्रोत भाषा में वर्तनी तथा उच्चारण में अंतर तो नहीं है। यदि अंतर है तो लिप्यंतरण नहीं किया जा सकता, किंतु यदि अंतर नहीं है तो लिप्यंतरण किया जा सकता है। इस प्रकार इसके निर्णय का आधार भी स्रोत भाषा के शब्द का उच्चारण अर्थात् ध्वनि ही है।

(ख) प्रतिलेखन (Transcription)—अर्थात् स्रोत भाषा के शब्द की वर्तनी पर ध्यान न देकर उसके उच्चारण को आधार मान कर लक्ष्य भाषा में उस उच्चारण के अनुरूप लिखना। उदाहरण के लिए Rousseau का स्रोत भाषा में उच्चारण चूंकि 'रूसो' जैसा है, अतः हिंदी में उसे 'रूसो' लिखना।

ऊपर हमने देखा कि लिप्यंतरण के निर्णय का आधार भी उच्चारण अर्थात् ध्वनि ही है, इसीलिए मेरे विचार में अनुवादक को लिप्यंतरण न करके प्रतिलेखन ही करना चाहिए। यह रास्ता निरापद होता है। ऐसा करने से शब्द यदि लिप्यंतरणीय है तो अपने आप लिप्यंतरण हो जाएगा और नहीं है तो प्रतिलेखन होगा।

# अनुवाद और अर्थविज्ञान

अनुवाद का एक मात्र दायित्व है स्रोत भाषा (Source language) में व्यक्त किए गए अर्थ (जिसे विचार, भाव या कथ्य (Content) भी कह सकते हैं) को लक्ष्य भाषा (Target language) में यथावत उतार देना और भाषाविज्ञान की शाखा अर्थविज्ञान का एक मात्र कार्य है भाषा के अर्थ पक्ष का अध्ययन। इस तरह अनुवाद और अर्थविज्ञान दोनों ही भाषा के अर्थ पक्ष से संबद्ध हैं। यही कारण है कि अनुवाद को अनेक रूपों में अर्थविज्ञान से सहायता लेनी पड़ती है।

भाषाविज्ञान की अन्य शाखाओं की तरह ही अर्थविज्ञान को भी मुख्यतः चार उपशाखाओं में विभक्त कर सकते हैं: एककालिक अर्थविज्ञान, बहुकालिक (ऐतिहासिक) अर्थविज्ञान, तुलनात्मक अर्थात्मक तथा प्रायोगिक अर्थविज्ञान। अनुवाद को किसी-न-किसी रूप में यथावसर इन चारों से सहायता लेनी पड़ती है।

एककालिक अर्थविज्ञान में अन्य चीजों के अतिरिक्त किसी एक काल में किसी भाषा के अर्थ का अध्ययन-विश्लेषण या निर्धारण आदि होता है, यही कारण है कि अनुवादक को सबसे पहले इस एककालिक अर्थविज्ञान की ही सहायता लेनी पड़ती है। अनुवाद एक भाषा में व्यक्त अर्थ का दूसरी भाषा में प्रेषण है, अतः अनुवादक के सामने पहली समस्या आती है अनूद्य सामग्री के अर्थ का ठीक-ठीक निर्धारण। यदि अनुवादक ने मूल सामग्री के अर्थ को ठीक-ठीक नहीं समझा तो फिर उसे दूसरी भाषा में ठीक-ठीक रख पाना असंभव होगा। मूल के अर्थ का ठीक-ठीक निर्धारण अनुवाद का आधार है। यहाँ तनिक भी गलती हुई तो अनुवाद निश्चित रूप से गलत होगा।

यहा दो प्रश्न उठाए जा सकते हैं: (क) अनुवादक को मूल सामग्री के अर्थ का ज्ञान कैसा हो? (ख) उस अर्थ के निर्धारण या उसे समझने में वह किन-किन बातों का ध्यान रखे? आगे दोनों प्रश्नों को अलग-अलग लिया जा रहा है।

जहाँ तक पहले प्रश्न का संबंध है किसी सामग्री के अर्थ का ज्ञान कई स्तरों का हो सकता है। एक अनपढ़ (जो पढ़ने की दृष्टि से अनपढ़ तथा

पढ़े-लिखे के बीच में है) व्यक्ति धर्मलाभ के लिए टो-टोकर रामचरित मानस से कुछ अंश रोज नहा-धोकर पढ़ता है और कुछ थोड़ा-बहुत अर्थ समझ लेता है। एक दूसरा व्यक्ति जो अंग्रेजी भाषा अच्छी तरह जानता नहीं, किंतु अंग्रेजी-फ़िल्मों को देखते-देखते इतना अभ्यस्त हो जाता है कि संवादों के हर शब्द को न समझते हुए भी कहानी तथा संवादों का सार समझ जाता है। प्रसाद जी का 'आंसू' १७-१८ वर्ष की आयु में मुझे पूरा कंठस्थ हो गया था। उसे पढ़ने में बहुत रस मिलता था। अब पढ़ता हूँ तो पता चलता है कि उस समय उसे मैं ठीक प्रकार से नहीं समझ सका था। हिंदी-साहित्य के अनेक अध्येता प्रसाद के स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त को पढ़ते हैं, किंतु उनमें कितने उसे पूरी गहराई से समझ पाते हैं? कहने का आशय यह है कि किसी साहित्यिक कृति को या किसी भी सामग्री को समझने के कई स्तर होते हैं। अनुवादक केलिए अनूद्य कृति या सामग्री को समझने का स्तर उपर्युक्त प्रकार का नहीं होना चाहिए। उसे कृति या सामग्री के अर्थ को पूरी गहराई के साथ—शब्दों के कोशार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ को समझते हुए; शब्दबंधों, पदबंधों, उपवाक्यों, वाक्यों के सामान्य अर्थ तथा अभीप्सित अर्थ तक पहुँचते हुए एवं मुहावरे-लोकोक्तियों और विशेष प्रयोगों के शब्दार्थ तथा लक्ष्यार्थ के संबंधों को समझ कर उनका अपेक्षित अर्थ हृदयंगम करते हुए—समझना चाहिए। सिद्धान्ततः यह मानना पड़ेगा कि किसी कृति को उसकी पूरी गहराई के साथ समझने वाले को ही उनका अनुवाद करने का अधिकार है, और किसी कृति का सफल अनुवादक, उसे अधिक-से-अधिक गहराई से जानने वालों में एक होता है।

दूसरा प्रश्न है अनुवादक ठीक अर्थ तक पहुँचने मे या ठीक अर्थ के निर्धारण में किन-किन बातों का ध्यान रखे या किन-किन बातों से सहायता ले। यह प्रश्न एक बृहत्तर प्रश्न से जुड़ा है कि किसी भी भाषा में अर्थ का—चाहे वह शब्द का अर्थ हो या शब्दबंध का या उससे बड़ी भाषिक इकाई का—निश्चयन कैसे किया जाए। अर्थ-निश्चयन के लिए अनुवादक को मुख्य रूप से निम्नांकित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(१) स्थान—अनुवादक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि स्रोत भाषा की सामग्री किस स्थान या देश के व्यक्ति द्वारा मूलतः लिखित या कथित है। क्योंकि एक ही शब्द अलग-अलग स्थानों पर कभी-कभी अलग अर्थ का द्योतक होता है। एक बार पाकिस्तान ने अमरीका से ७०-८० हज़ार रेलवे स्लीपर पर खरीदे। अमरीकी अंग्रेज़ी में रेलवे स्लीपर को टाई (tie) कहते हैं, क्योंकि वह दोनों पटरियों को बाँधे रहता है। किसी अमरीकी अखबार

में यह खबर छपी। पाकिस्तान के किसी अंग्रेज़ी अखबार ने बिना विशेष ध्यान दिए वह खबर ज्यों-की-त्यों छाप दी। पाकिस्तानी जनता यह पढ़कर बड़ी आश्चर्य-चकित हुई कि अमरीका में इतनी ज़्यादा टाइयाँ (गले में बाँधने की) क्यों खरीदी जा रही हैं। वहाँ के किसी उर्दू अख़बार में इसे लेकर एक संपादकीय निकला, जिसमें इसके लिए सरकार को बहुत बुरा-भला कहा गया था कि वह इतनी बड़ी संख्या में बाहर से टाई मँगाकर देश के पैसे को बर्बाद कर रही है। यदि पाठकों तथा पाकिस्तान के अंग्रेज़ी पत्रवालों को यह पता होता कि अमरीका में 'टाई' का अर्थ रेलवे स्लीपर है तो यह गलतफ़हमी न होती। इस प्रकार के काफ़ी उदाहरण दिए जा सकते हैं। अमरीका में 'चैक' का अर्थ 'बिल' होता है तथा 'बिल' का अर्थ 'करेंसी नोट'। अमरीकी प्रयोग में टैक्सी को 'कैब' पेट्रोल को 'गैसोलीन', आर्थिक वर्ष (financial year) को fiscal year, मोटर कार को 'आटोमोबील', 'लिफ्ट' को 'एलीवेटर' तथा 'सिनेमा' को 'मूवी' कहते हैं। इस प्रसंग में अनुवादक यदि इस बात से परिचित हैं कि अनूद्य सामग्री अमरीकी है तो वह उसका ठीक अर्थ समझ सकता है, और नहीं तो उससे गलती हो जाना स्वाभाविक है। दिल्ली का व्यक्ति किसी के लिए 'चलता-पुरज़ा' विशेषण का प्रयोग करे तो इसका अर्थ 'धूर्त' होगा, किंतु भोजपुरी प्रदेश के व्यक्ति 'चलता-पुरज़ा' का इस अर्थ में प्रयोग नहीं करते। उनके लिए व्यवहार-कुशल, चतुर, अपना काम निकालने वाला व्यक्ति चलता-पुरज़ा है। इस तरह दिल्ली-भाषी के प्रयोग में यह विशेषण अप्रशंसा का सूचक है तो भोजपुरी भाषा के प्रयोग में प्रशंसासूचक। इंग्लैंड के लेखकों की कृति में अंग्रेज़ी का 'कार्न' शब्द प्रायः गल्ला या अनाज का अर्थ देता है तो अमरीका के लेखकों की कृति में 'मक्का' का। मेरठ या पश्चिमी हिंदी प्रदेश के कई भागों के लेखकों की कृति में 'मौसा' 'मौसी' शब्द भाई के ससुर और सास का भी अर्थ देते हैं, किंतु बनारस, इलाहाबाद या पूर्वी हिंदी क्षेत्र तथा और पूरब के लेखकों में ये शब्द केवल माँ की बहिन और उसके पति का ही द्योतन करते हैं। 'इया' कुछ हिंदी क्षेत्रों (जैसे ब्रज के कुछ भाग) में माँ के लिए प्रयुक्त होता है तो कुछ (जैसे भोजपुरी क्षेत्र के कुछ भाग) में दादी के लिए। एक भाषा की विभिन्न बोलियों के अनेक शब्दों में भी इस प्रकार के क्षेत्रीय अर्थांतर प्रायः मिलते हैं। ऐसी स्थिति में अनुवादक यदि लेखक के स्थान या देश का ध्यान न रखे तो मूल सामग्री का अनपेक्षित अर्थ ग्रहण करने की वह ग़लती कर सकता है।

(२) काल—काल का ध्यान रखना भी अर्थ-निर्धारण में सहायक होता

है। भाषाओं के इतिहास में हम प्रायः पाते हैं कि काल विशेष में किसी शब्द का अर्थ एक होता है किंतु दूसरे काल में उसमें कुछ परिवर्तन आ जाता है। 'हरिजन' मध्यकाल मे भक्त के लिए आता था, किंतु अब 'अछूत' के लिए आता है। चौरासी वैष्णवन की वार्ता (सन् १५६८ ई०) मे आता है :—'पुरुषोत्तम जोसी को, देहानुसंधान रह्यो नाही।' यहाँ 'अनुसधान' का अर्थ 'सुध-बुध' है किंतु आज अनुसधान 'रिसर्च' का समानार्थी है। इसी वार्ता में आता है :—पाछें हाकिम के मनुष्यन ने गोविन्ददास को अपराध कियो।' यहा 'अपराध करना' का अर्थ है 'हत्या करना' किंतु आज 'अपराध करना' कुछ और ही है। बिहारी (१५६५-१६६३) मे 'अवधि' का अर्थ 'अंतिम सीमा' (extremity) है :—'तो तन अवधि अनूप' किंतु अब यह समय-सीमा है। सूरदास (१४७८-१५८३) में आता है :—'ज्यों ही त्यों रथ आतुर आवो।' यहां 'आतुर' का अर्थ 'शीघ्र' या 'जल्दी' है। आज आतुर कुछ और है। रसखानि (रचना काल १६१६) मे 'उजागर' का अर्थ 'जाग्रत' हैं :—'रहिये सतसग उजागर में।' अब उजागर का अर्थ पूर्णतः बदल गया है। किसी भी भाषा से इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण लिए जा सकते हैं।

(३) संदर्भ—अर्थ निर्धारण में सदर्भ को प्रायः सबसे महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। व्यंग्य के प्रसंग में अन्यत्र सकेत किया जा चुका है कि उसे सदर्भ से ही पहिचाना जा सकता है, क्योंकि सदर्भ से विहीन कर देने पर व्यग्ययुक्त वाक्य व्यग्यविहीन भी हो सकता है। उदाहरणार्थ 'तुम तो बडे भले आदमी हो, उसके साथ तुम्हारा जाना ठीक नहीं' मे 'तुम तो बडे भले आदमी हो' का व्यग्यविहीन सामान्य अर्थ है, किंतु 'तुम तो बडे भले आदमी हो, कहा था सुबह आओगे, और आए हो शाम को, ठीक १२ घटे बाद' मे इसका व्यंग्यपूर्ण प्रयोग है, अतः अर्थ ठीक उल्टा है। अग्रेज़ी मे बिछुड़ने के प्रसग में प्रयुक्त so long तथा किसी की लबाई के प्रसग मे प्रयुक्त so long एक नही हैं। पहले का अर्थ 'अच्छा!' है तो दूसरे का 'इतना लबा।' शब्दों के स्तर पर भी संदर्भ अर्थ-निर्धारक होता है। उदाहरण के लिए सस्कृत में 'सैंधव' का अर्थ 'नमक' तथा 'घोड़ा' दोनों होता है। सदर्भ से ही यह पता लगाया जा सकता है कि अनुवादक उसे क्या समझे। मोटे ढग से यह कह देना पर्याप्त होगा कि जितने भी शब्द, पद, पदबंध, उपवाक्य, ऐसे हैं जिनके कोशार्थ, व्यग्यार्थ, सुरलहर (Intonation) आदि किसी भी कारण से एकाधिक अर्थ हो सकते हैं, सदर्भ से जोड़ने पर ही कोई एक (अपेक्षित) अर्थ देते हैं। बिना संदर्भ पर ध्यान दिए उनके अपेक्षित अर्थ का निर्धारण नही हो सकता। भार-

तीय परंपरा में संसर्ग ('शंख-चक्र लिए हरि' में 'हरि' का अर्थ बंदर या शेर नहीं अपितु विष्णु), विप्रयोग ('शंखचक्ररहित हरि' में भी हरि=विष्णु), विरोध (कर्णार्जुनौ में अर्जुन=पाँच पाडवों में एक। वृक्ष नहीं), प्रयोजन ('स्थाणुभज' मे 'स्थाणु' का अर्थ 'खभा' नही अपितु 'शिव'), औचित्य (जिस प्रसग मे जो उचित हो), सामर्थ्य (जैसे 'मधुमत्त कोकिल' में मधु' का अर्थ 'वसत' होगा, शहद नही। शहद में 'मत्त' करने की शक्ति नही है) आदि भी अर्थ-निर्धारण मे सहायक कहे गए है। मैं इन सभी को सदर्भ के ही अतर्गत रखने के पक्ष में हूँ। उपर्युक्त उदाहरणों मे सदर्भ से ही विप्रयोग, विरोध, संसर्ग आदि का पता चलता है, अतः इन्हे सदर्भ के बाहर नही रखा जा सकता। हाँ सदर्भ के भीतर ये या इस प्रकार के अन्य और भी भेद आवश्यकतानुसार माने जा सकते हैं।

(४) लिंग के आधार पर भी कई भाषाओ मे अर्थ-निर्धारण में सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए सस्कृत मे 'मित्र' शब्द के दो अर्थ हैं: सूर्य, दोस्त। लिंग के आधार पर इस शब्द के अर्थ का निर्धारण सरलता से किया जा सकता है। 'मित्र' शब्द यदि पुल्लिंग मे प्रयुक्त हुआ हो तो उसका अर्थ 'सूर्य' होगा तथा नपुसक लिंग मे हुआ हो तो 'दोस्त' होगा। इसी तरह 'आम्र' शब्द 'वृक्ष विशेष' के अर्थ मे पुल्लिग मे प्रयुक्त होता है तथा 'फल विशेष' के अर्थ मे नपुसक लिंग में। 'गो' स्त्रीलिंग में 'गाय' का अर्थ देता है तथा पुल्लिंग मे 'बैल' का।

(५) वचन—कुछ भाषाओं में एकवचन में शब्दविशेष का अर्थ कुछ होता है तथा बहुवचन में कुछ और। उदाहरणार्थ अग्रेजी में wood-woods, air-airs, water-waters, iron-irons जैसे काफी शब्द हैं जिनमें अर्थ-भेद है। अनुवादक को अर्थ-निर्धारण में इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए, नहीं तो अर्थ का अनर्थ हो सकता है। हिन्दी में एक व्यक्ति के लिए (एकवचन में) भी कहा जाता है 'बेचारो ने मेरी बडी मदद की।' यहाँ 'बेचारों' एकवचन है, बहुवचन नहीं। इसी तरह 'मैंने उनके दर्शन किए' में 'दर्शन' एकवचन है, यद्यपि उसका प्रयोग बहुवचन में हुआ है।

(६) समास—अनेक समस्त पदों के अर्थ मूल शब्दों के अर्थ से भिन्न हो जाते हैं। उदाहरण के लिए 'जल' और 'वायु' के अर्थ से 'जलवायु' का अर्थ नहीं जाना जा सकता। अतः समस्त पदों के अर्थ-निर्धारण में अनुवादक को सतर्कता बरतनी चाहिए। मूल शब्दों के अर्थ से कोई अनुवादक परिचित

हो और समस्त रूप में जो अलग अर्थ है, उससे परिचित न हो तो गलती हो जाने की प्रायः सभावना रहती है। गृहयुद्ध, लोकसभा, राज्यसभा, आदि समस्त पद इसी प्रकार के हैं।

(७) उपसर्ग और प्रत्यय—इनके कारण भी अर्थ परिवर्तित, सीमित या विशेष हो जाता है, अतः अनुवादक का ध्यान अर्थ-निर्धारण के समय इन पर भी जाना चाहिए। उदाहरण के लिए 'आहार', 'विहार' 'सहार' 'प्रहार' या 'क्रोधी'-'क्रोधित' आदि शब्द देखे जा सकते हैं।

(८) शब्द-शक्ति—शब्दों का सर्वदा कोशार्थ ही नही लिया जाता, अपेक्षानुसार लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ का भी ध्यान रखना पड़ता है। 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध और आंखों में पानी' में 'आँचल' न तो 'आँचल' है और न 'पानी' 'पानी'। 'राम बड़ा गधा है' में 'गधा' 'गधा' नही है। इस प्रकार अनुवादक को इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि अनूद्य सामग्री मे किन-किन शब्दों का क्या-क्या अर्थ लिया जाय : अभिधार्थ, लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ। 'पूरा गाँव भूख से मर रहा है' में मरने वाला 'गाँव' नही है, 'गाव के लोग' हैं।

(९) व्यंग्य—व्यंग्य में कहा गया वाक्य प्रायः अपने मूल अर्थ का उल्टा अर्थ देता है। ऐसे स्थलों पर अनुवादक ने यदि व्यंग्य को व्यंग्य न समझकर उसका सीधे अनुवाद कर दिया तो अनुवाद मूल का ठीक उल्टा हो जाता है। उदाहरण के लिए 'चतुर हो तो ऐसा, देखो तो अपना काम किस खूबी से निकाल लिया' का प्रयोग सामान्य एव व्यंग्य दोनों ही दृष्टियों से हो सकता है। किसी व्यक्ति ने सचमुच ही चातुरी के साथ अपना काम निकाल लिया हो तो इसका सामान्य अर्थ होगा, किंतु यदि कोई व्यक्ति अपनी मूर्खता के कारण अपना काम न निकाल सका हो तो इसका अर्थ ठीक उल्टा हो जाएगा। 'तुम तो बड़े अच्छे हो', 'भई वाह, क्या सुन्दर वर खोजा है', 'कमाल की पुस्तक लिखी हैं', 'लिखना तो कोई तुम से सीखे', 'तुम तो बड़े ही भोले-भाले हो' 'हाँ तुम तो बड़े गंदे कपड़े पहनते हो', 'तुम्हारी गरीबी के क्या कहने, खाने-खाने को मुहताज हो, 'जी हाँ बदसूरत हो तो तुम जैसा' आदि इस प्रकार के सैंकड़ों उदाहरण लिए जा सकते हैं। व्यंग्य का पता सदर्भ से प्रायः लग जाता है, किंतु इसके लिए अनुवादक द्वारा सतर्कता अपेक्षित है।

(१०) मुहावरे तथा विशेष प्रयोग—अनूद्य सामग्री में अनुवादक के लिए इन दोनों को पहचानना बहुत आवश्यक है, क्योंकि प्रायः इनके अलग-अलग शब्दों के अर्थ के आधार पर अपेक्षित अर्थ को ज्ञात नहीं किया जा सकता।

उदाहरण के लिए पानी-पानी होना या to throw a party क्रमशः मुहावरे तथा विशेष प्रयोग हैं। इनमें 'पानी' को अंग्रेजी अनुवादक 'वाटर' समझकर ठीक अर्थ नहीं जान सकता न 'थ्रो' को 'फेंकना' समझकर हिन्दी अनुवादक अपेक्षित अर्थ तक पहुँच सकता है। इस प्रकार अर्थ के निश्चयनार्थ अनुवादक के लिए यह आवश्यक है कि वह सामान्य शब्दों तथा सामान्य प्रयोगों से अलग मुहावरेदार अभिव्यक्तियों एवं विशिष्ट प्रयोगों को पहचाने तथा शब्दार्थ से अलग उनका अर्थ समझे।

(११) बलाघात (stress)—बलाघात के कारण भी कुछ भाषाओं में अन्तर पड जाता है। उदाहरण के लिए रूसी भाषा में Zamok शब्द में बलाघात यदि a पर होगा तो इस शब्द का अर्थ होगा किला' किंतु यदि बलाघात o पर होगा तो इसका अर्थ 'ताला' होगा। muka, ruki आदि कई अन्य रूसी शब्दो मे भी बलाघात परिवर्तन से अर्थ-परिवर्तन की बात देखी जाती है। अंग्रेजी मे कई शब्द सज्ञा तथा क्रिया दोनो होते हैं। उनमे भी बलाघात का अन्तर होता है। जैसे present में पहली ई पर बलाघात हो तो यह शब्द सज्ञा होगा किन्तु दूसरी ई पर हो तो क्रिया होगा। अनुवादक को ऐसी भाषाओ से अनुवाद करते समय ठीक अर्थ जानने के लिए बलाघात का ध्यान रखना चाहिए। दुभाषिये के रूप में अनुवादक को बलाघात का पता उच्चारण पर ध्यान देने से चल जाता है। लिखित भाषा मे अनुवाद करते समय इसका पता विशेष-चिह्न या प्रसग से चलना है।

वाक्य स्तर पर भी बलाघात का ध्यान रखना आवश्यक है। 'मैं इलाहाबाद नही जा रहा' मे यदि इलाहाबाद पर बलाघात होगा तो इसका एक अर्थ होगा, किन्तु यदि नही पर होगा तो इसका दूसरा अर्थ हो जाएगा। 'मोहन आया और खाना खाकर चला गया' मे 'और' and का अर्थ दे रहा है, किन्तु यदि उस पर बल दें तो उसका अर्थ more या an other हो सकता है। इस तरह ठीक अर्थ समझने के लिए बलाघात पर ध्यान देना भी आवश्यक है।

(१२) सुरलहर (Intonation)—चीनी आदि कई तान भाषाएँ (Tone language) ऐसी हैं जिनमे सुरलहर में परिवर्तन से शब्द का अर्थ बदल जाता हैं। उदाहरण के लिए चीनी शब्द 'मा' का उच्चारण एक सुरलहर में किया जाए तो इसका अर्थ 'घोडा' होता है, दूसरी सुरलहर में 'एक कपड़ा' तीसरी मे 'माँ' और चौथी में 'गाली देना'। इसी प्रकार अफ्रीका की 'एफिक' भाषा मे ekere didie वाक्य का एक सुरलहर में अर्थ होगा 'तुम्हारा क्या नाम है ?' दूसरी मे 'तुम क्या सोचते हो ?' चीनी भाषा की एक बोली में

येन' का विभिन्न सुरलहरों में अर्थ धुआँ, नमक, आँख, हस होता है। ऐसी ाषाओं से अनुवाद करते समय अनुवादक का ध्यान सुरलहर पर न जाए तो र्थ का अनर्थ हो जाएगा। हिंदी आदि अन्य प्रकार की भाषाओं में भी सुर-लहर कभी-कभी अर्थ-निर्धारण मे बडा सहायक होता है। 'हाँ' का एक सुर-लहर में सामान्य अर्थ होगा तो दूसरे में 'मत'। 'राम आ गया', 'राम आ गया?' 'राम आ गया!' में भी अर्थांतर है। इस प्रकार की भाषाओं में लिखित रूप से यदि अनुवाद करना हो तो विराम-चिह्न एक सीमा तक अर्थ-निर्धारण में सहायक होता है।

स्रोत भाषा की सामग्री का ठीक अर्थनिर्धारण करने के बाद अनुवादक का ध्यान लक्ष्य भाषा में उसके 'समानार्थी स्वाभाविक अभिव्यक्ति' खोजने की ओर जाता है। इस प्रसग मे भी उसे काफी सतर्कता बरतनी चाहिए ताकि अनूदित सामग्री का लक्ष्य-भाषा-भाषी ठीक वही अर्थ ग्रहण कर सकें जो स्रोत-सामग्री का स्रोत-भाषा-भाषी ग्रहण करते हैं। अनुवादक को इस प्रसग में भी उपर्युक्त बातो (लक्ष्य भाषा के सदर्भ, लिंग, वचन, स्थान आदि) का ध्यान रखना चाहिए।

'समानार्थी स्वाभाविक अभिव्यक्ति' का प्रयोग विशेष अर्थ में मैं कर रहा हूँ। इसमे 'समानार्थी' का अर्थ है 'स्रोत भाषा मे अभिव्यक्त अर्थ के समान अर्थवाली' तथा 'स्वाभाविक' का अर्थ है 'लक्ष्यभाषा के स्वभाव या प्रकृति के अनुकूल' अर्थात् जो अनुवाद न लगे, लक्ष्यभाषा की प्रकृति की दृष्टि से अट-पटा न लगे, पढने पर लगे कि उस भाषा में ही वह मूलतः लिखी गई है। इस तरह 'समानार्थी' अर्थविज्ञान से सम्बद्ध है तथा 'स्वाभाविक' शब्द, रूप, मुहा-वरे तथा वाक्य रचना आदि से, अर्थात् भाषा की व्यवस्था से।

गहराई से विचार करें तो 'समानार्थी अभिव्यक्ति' भी दो प्रकार की हो सकती है: (क) ठीक वही अर्थ वाली अभिव्यक्ति जो स्रोत-सामग्री मे है। इसे हम लोग 'एकार्थी' (स्रोत तथा लक्ष्य, दोनों अर्थ की दृष्टि से एक हों) भी कह सकते हैं। (ख) 'निकटतमार्थी' अर्थात् मूल के निकटतम अर्थ रखने वाली।

समानार्थी { एकार्थी
निकटतमार्थी

यह बात ध्यान देने की है कि स्रोत और लक्ष्य भाषा विशेष की विशिष्ट सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के कारण अनुवाद प्रायः निकटतमार्थी ही हो पाते हैं, एकार्थी अपेक्षाकृत बहुत कम होते हैं।

'एकार्थी अभिव्यक्ति' तथा 'निकटतमार्थी अभिव्यक्ति' पर यहाँ कुछ गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। ये अभिव्यक्तियाँ यों तो शब्द, शब्द-बंध, पद, वाक्यांश, उपवाक्य, वाक्य, मुहावरा, लोकोक्ति, विशिष्ट प्रयोग आदि सभी स्तरो पर हो सकती हैं, किन्तु यहाँ केवल शब्द-स्तर पर ही उनके विभिन्न पक्षों और कोटियों को स्पष्ट किया जा रहा है। अन्य स्तरो पर भी इसी प्रकार उन्हे देखा और समझा जा सकता है।

*मान लें स्रोत भाषा का एक शब्द 'क' है तथा लक्ष्य भाषा मे उसके लिए* 'ख' शब्द उपलब्ध है। हर शब्द की अपनी अर्थ-परिधि होती है। इन दोनो की अर्थ-परिधियाँ मान लें ये हैं—
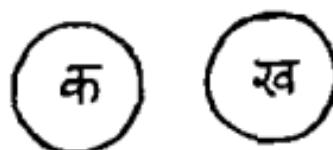
अब यदि दोनो के अर्थ बिल्कुल एक है तो 'क' के लिए अनुवाद में 'ख' को रखना 'एकार्थी अभिव्यक्ति' होगी। किन्तु यदि दोनों मे थोड़ा भी अन्तर है तो अर्थ की दृष्टि से वे 'एक' न होकर मात्र 'निकट' माने जाएँगे। किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया स्रोत भाषा के 'क' शब्द के लिए लक्ष्य भाषा मे 'ख' ही निकटतम शब्द है अतः उसे 'निकटतमार्थी अभिव्यक्ति' कह सकते है।

एकार्थी अभिव्यक्ति मे दोनों शब्दो की अर्थ-परिधि समान होगी। एक के द्योतक वृत्त को दूसरे के द्योतक वृत्त के ऊपर रखें तो कोई अन्तर नहीं मिलेगा। एक दूसरे के ठीक ऊपर आ जाएगा :

किन्तु निकटतमार्थी अभिव्यक्ति के अनेक भेद हो सकते हैं। हो सकता है कि स्रोत भाषा के शब्द के लिए लक्ष्य भाषा में प्राप्त शब्द अर्थ-परिधि की दृष्टि से थोड़ा ही भिन्न हो। ऐसी स्थिति मे उनके द्योतक वृत्तो द्वारा उनकी समानता तथा अन्तर को यों दिखाया जा सकता है—

इस रेखाचित्र से स्पष्ट है कि 'क' के अर्थ का बिन्दुयुक्त भाग 'ख' में नहीं आ रहा है तथा 'ख' का बिन्दुयुक्त अंश 'क' में नही आ रहा। अर्थात् बीच के बिन्दुविहीन अंश से द्योतित अर्थ ही दोनों में समान है, बिन्दुयुक्त रेखाकित अश अपने-अपने अलग हैं। दो भाषाओं के समान शब्दों की अर्थ की दृष्टि से तुलना की जाए तो इस प्रकार कम या अधिक अतरों के अनेक भेद हो सकते है। चार प्रकार के अन्तरो के आधार पर उन्हे यो दिखाया जा सकता है—
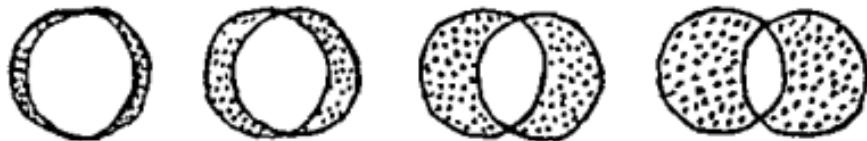
यदि एकार्थी, निकटतमार्थी तथा भिन्नार्थी को एक साथ दिखाना चाहे तो—
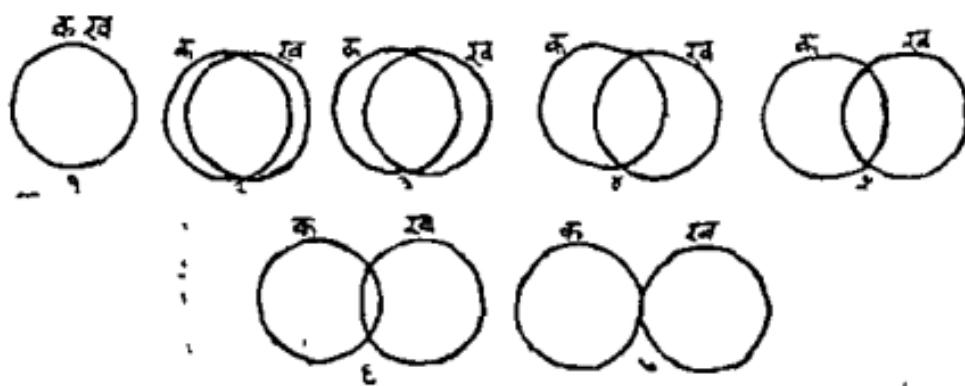
१ मे 'क' 'ख' एक दूसरे पर हैं. अर्थात् दोनों एकार्थी हैं। जैसे अंग्रेजी one तथा हिन्दी एक। निकटतमार्थी २ से ६ तक हैं। २ मे 'क' 'ख' मे अर्थ की निकटता अधिक है, किन्तु ३, ४, ५, ६ मे वह क्रमश: कम होती गई है। ७ में दोनों अलग-अलग हैं, भिन्नार्थी हैं, अर्थात् ७ मे दो ऐसे शब्द आएँगे जिनमें अर्थ की समानता है ही नही।

'१' सर्वोत्तम अनुवाद कहा जाएगा; २, ३, ४, ५, ६ क्रमशः एक दूसरे से खराब माने जाएँगे। किन्तु अनुवाद करते समय १ के न मिलने पर २, २ के न मिलने पर ३, तथा आगे इसी प्रकार (अंतत ६ मे) काम चलाना पडता है। यहाँ तो निकटतमार्थी की ये पाँच (२, ३, ४, ५, ६) स्थितियाँ दिखाई गईं। ऐसी और अधिक या कम स्थितियाँ भी हो सकती हैं।

अब तक हम लोग अनुवाद की दृष्टि से स्रोत भाषा की सामग्री और लक्ष्य

भाषा मे उसके रूपातर के बीच अर्थ की समानता पर एक दृष्टि से एक दिशा मे विचार कर रहे थे । इस समस्या पर एक दूसरी दिशा मे भी विचार किया जा सकता है । स्रोत भाषा के शब्द की अर्थ-परिधि और लक्ष्य भाषा मे उसके स्थान पर प्रयुक्त शब्द की अर्थ-परिधि पूर्णत: एक हो तो

दोनों एक दूसरे पर होगे । किंतु कभी-कभी मूल की तुलना में अनुवाद के शब्द की अर्थ-परिधि छोटी हो जाती है । ऐसे अनुवाद के दोष को मैं अर्थ-सकोच दोष कहना चाहूँगा । मूल सामग्री के 'क' शब्द के स्थान पर अनुवाद मे 'ख' शब्द रखें और उसकी अर्थ-परिधि कम हो तो अर्थ-सकोच दोष हो ज एगा—

मात्रा के आधार पर अर्थ-सकोच दोष के अनेक भेद किए जा सकते हैं :—
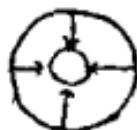
  

कुछ उदाहरणों द्वारा यह बात और स्पष्ट हो जाएगी । 'गीदड' शब्द बँगला तथा हिन्दी दोनों भाषाओं मे है । यदि हिन्दी अनुवादक बगला मे अनुवाद करते समय बगला 'गीदड' (उस जगल मे बहुत से गीदड हैं) के स्थान पर हिन्दी में 'गीदड' शब्द का प्रयोग करें तो अर्थ-सकोच दोष आ जाएगा, क्यो कि बगला मे 'गीदड़' का अर्थ 'लोमडी' और 'सियार' दोनों होता है । जब कि हिन्दी मे केवल 'सियार' । मान लें हिंदी में कहीं प्रयोग है 'मृगराज सिंह' उर्दू में अनुवाद करने वाला मृग के पुराने अर्थ से परिचित नहीं है और वह 'मृग' को 'हिरन' समझकर 'मृगराज' का उर्दू में अनुवाद कर देता है 'हिरनों का राजा' तो यहाँ उसके अनुवाद में अर्थ-सकोच की गलती मानी जाएगी, क्योंकि यहाँ 'मृग' का अर्थ है 'पशु' और अनुवादक 'पशु' के स्थान पर 'हिरन' का प्रयोग कर रहा है—
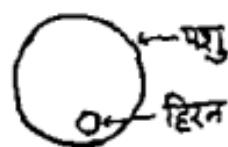
अंग्रेज़ी में 'पीयर' (peer) फलों की एक प्रजाति का नाम है। हिन्दी में इस के लिए सामान्य शब्द नहीं है। हिन्दी के नाशपाती, नाख, तथा बब्बूगोशा इन तीनों ही को अंग्रेज़ी में पीयर ही कहते हैं। ऐसी स्थिति में यदि किसी अंग्रेज़ी सामग्री मे 'पीयर' आया हो और हिन्दी में अनुवाद करना हो तो उस के स्थान पर नाशपाती, नाख तथा बब्बूगोशा इन तीन में ही किसी का प्रयोग करेंगे। यदि सामग्री मे पीयर इनमे किसी एक के लिए आया हो तब तो उसी शब्द का प्रयोग किया जाएगा और अनुवाद ठीक होगा, किंतु यदि पीयर उस प्रजाति के लिए प्रयुक्त हुआ है तो तीनों में चाहे किसी का भी प्रयोग क्यो न करें, अनुवाद मे अर्थ-सकोच दोष आ जाएगा। अंग्रेज़ी (aunt) —हिन्दी ताई, चाची, मौसी, बूआ, मामी; अंग्रेज़ी अंकल (uncle)—हिन्दी ताऊ, चाचा, मौसा, फूफा, मामा; अंग्रेज़ी कज़िन (cousin)—हिन्दी चचेरा भाई, ममेरा भाई, मौसेरा भाई, फुफेरा भाई या चचेरी बहन, ममेरी बहन, मौसेरी बहन, फुफेरी बहन तथा अंग्रेज़ी जैस्मिन (jasmine)—हिन्दी चमेली, जुही आदि मे भी इसी प्रकार के अर्थ-सकोच दोष की सम्भावना हो सकती है।

अनुवाद में इसके ठीक उल्टा दोष भी हो सकता है जिसे मैं अर्थ-विस्तार दोष की सज्ञा देना चाहूँगा। उदाहरण के लिए हिन्दी 'गीदड' के लिए यदि बगला अनुवाद मे कोई 'गीदड' शब्द का प्रयोग करे तो अर्थ-विस्तार दोष होगा, क्योंकि हिंदी में 'गीदड़' सियार को कहते हैं, जबकि बंगला मे सियार और लोमड़ी दोनों ही को। इसी प्रकार, ऊपर अर्थ-संकोच दोष के जितने भी उदाहरण दिए गए हैं, यदि स्रोत भाषा को लक्ष्य भाषा तथा लक्ष्य भाषा को स्रोत भाषा मान लें तो सभी उदाहरण अर्थ-विस्तार दोष के हो जाएँगे। अर्थ-संकोच की तरह ही इस दोष के भी कमी-बेशी के आधार पर कई भेद हो सकते हैं। उदाहरण के लिए दो को चित्र-रूप मे यों दिखा सकते हैं :

मानलें एक हिन्दी का वाक्य है 'राम अक्षत लेने गया है,' इसमें 'अक्षत' का अंग्रेज़ी अनुवाद क्या होगा ? वस्तुतः अक्षत, चावल, भात तीनों के लिए सामान्यतः अंग्रेजी मे केवल 'राइस' है। अगर अक्षत के लिए केवल 'राइस' शब्द का प्रयोग करें तो यह गलती अर्थ-विस्तार की कही जाएगी, क्योंकि 'राइस' की अर्थ-सीमा अक्षत की अर्थ-सीमा से बड़ी है। 'राइस' मे चावल तथा भात दोनो समाहित हैं, जबकि अक्षत मे वे नही हैं। ऐसे स्थानों पर 'अक्षत' शब्द का ही अंग्रेज़ी मे भी प्रयोग करके, उसे पाद-टिप्पणी में समझा देना कदाचित् अच्छा होगा। किन्तु मान लें कि ऐसा नही किया गया और अक्षत की रचना पर ध्यान देकर अनुवादक उसे unbroekn rice कर देता है, तो भी यह अर्थ-विस्तार की अशुद्धि होगी, क्योंकि सभी unbroken rice को अक्षत नही कह सकते।

अनुवाद मे अर्थ की दृष्टि से एक तीसरे प्रकार का दोष भी आ सकता है जिसे अर्थादेश दोष कहा जा सकता है। अनुवाद मे अर्थादेश दोष का अर्थ हैं है एक अर्थ वाले शब्द के स्थान पर दूसरे अर्थ वाले शब्द को रख देना। ऊपर 'अंकल' का उदाहरण सकोच और विस्तार दोष के प्रसग मे लिया जा चुका है। His all the five uncles came. वाक्य का अनुवाद 'उसके सभी पाँच चाचे आए' करें और uncle मे मूलतः चाचा, फूफा, मामा, ताऊ, मौसा हो तो यह अर्थसकोच दोष होगा। 'उसके फूफा ने कहा' का अनुवाद अंग्रेज़ी के His uncle said करें तो अर्थ-विस्तार दोष होगा। कुछ स्थितियो मे ऐसे ही शब्दों में अर्थादेश दोष भी हो सकता है। कल्पना कीजिए कि अंग्रेज़ी का तीन अकों का कोई नाटक है। पहले अक में एक व्यक्ति किसी को सबोधित करता है 'अंकल......'। नाटक के तीसरे अक मे इस बात का अर्थस्पष्ट सकेत है—जिसको पकडने के लिए नाटक का अत्यन्त सतर्क पठन आवश्यक है—कि जिसे वह 'अंकल' कह रहा है वह वस्तुतः उसके पिता की बहिन का पति है। किसी व्यक्ति को नाटक के केवल प्रथम अक का अनुवाद करना है। एक सभावना तो यह हो सकती है कि वह पूरा नाटक पढे बिना पहले अक का अनुवाद कर दे और तब सहज ही वह 'अंकल' का अनुवाद 'चाचा जी' करेगा। दूसरी सम्भावना यह भी हो सकती है कि वह नाटक आगे भी पढे, किंतु, चूंकि कई रिश्तों को जोडने पर यह पता चलता है कि वह व्यक्ति उस के पिता की बहिन का पति है, और उसे अनुवाद केवल पहले अक का करना है, वह आगे यो ही केवल सरसरी निगाह से पढ रहा है, अतः उसका ध्यान इस रिश्ते की ओर जाता ही नही। तीसरी सभावना यह भी हो सकती है कि

उसका ध्यान तो इस रिश्ते की ओर जाता है किन्तु पहले अंक के 'अंकल' शब्द के अनुवाद के प्रसंग में वह इसका ध्यान नहीं रख पाता। इन तीनों स्थितियों में भी यह असंभव नहीं है कि अनुवादक 'अंकल' शब्द का अनुवाद 'चाचा जी' करे। ध्यान देने पर यह स्पष्ट हुए बिना नहीं रहेगा कि यहाँ 'फफा जी' के लिए उसने 'चाचा जी' का प्रयोग कर दिया, अर्थात् 'अंकल' शब्द का इस प्रसग मे जो मूल अर्थ है, उसे वह न पकड़ सका, और उसके स्थान पर उसने अनुवाद में दूसरे अर्थ की अभिव्यक्ति कर दी। इस प्रकार अर्थदिशीय भूल हो गई। एक अर्थ के स्थान पर दूसरे अर्थ का 'आदेश' या 'आगम' हो गया।

वस्तुत: अंग्रेजी 'अंकल' का हिन्दी में सामान्य प्रतिशब्द तो 'चाचा जी' है, किन्तु अनुवादक को इस शब्द का अनुवाद करने के पूर्व पूरे टेक्स्ट को भली-भाँति पढ़कर यह पता लगा लेना चाहिए कि 'अंकल' कहा जाने वाला व्यक्ति सचमुच चाचा ही है या ताऊ, मौसा, फूफा, मामा में से कोई। 'आट' या 'आटी' का 'चाची' या 'चाची जी' अनुवाद करने में भी इसी प्रकार की अर्थदिशीय भूल हो सकती है, क्योंकि वे मौसी, मामी, बुआ, ताई भी हो सकती हैं। इसी प्रकार 'कज़िन ब्रदर' मौमेरा, चचेरा, फुफेरा या ममेरा कोई भी भाई हो सकता है या 'कज़िन सिस्टर' मौसेरी, चचेरी, फुफेरी या ममेरी कोई भी बहिन हो सकती है।

वस्तुत: जब भी स्रोत भाषा का एक शब्द लक्ष्य भाषा के एक से अधिक शब्दों का प्रतिनिधित्व करता है, तो लक्ष्य भाषा में अनुवाद करते समय इस प्रकार की अर्थदिशीय अशुद्धि की सम्भावना बराबर बनी रहती है। पूरे टेक्स्ट को पढ़कर कभी-कभी तो इस प्रकार की अशुद्धि से बचा जा सकता है, किंतु मान लीजिए पूरे टेक्स्ट में भी कोई ऐसा संकेत न हो जिससे ठीक अर्थ का पता चल सके, तो फिर अनुवादक को असहाय होकर किसी भी अर्थ को लेकर अपना काम चलाना पड़ता है, यद्यपि ऐसी स्थिति में अशुद्धि होने की पूरी सम्भावना रहती है। उदाहरण केलिए मान लीजिए किसी बगीचे का वर्णन है। फारसी में लिखा है 'घुसते ही बाएं हाथ, यासमीन का लहलहाता पौदा आपका स्वागत करेगा।' सामान्यत: 'यासमीन' का अर्थ चमेली लिया जाता है, अतः अनुवादक 'यासमीन' का अनुवाद चमेली करेगा, किन्तु हो सकता है कि बगीचे में सचमुच घुसने पर आपको चमेली के स्थान पर जूही मिले, क्योंकि फ़ारसी में जूही को भी 'यासमीन' ही कहते हैं। ऐसी गलती से बचने के लिए अनुवादक को हमेशा कोई-न-कोई सूत्र मिल ही जाय, कोई आवश्यक नहीं। चमेली और

जुही के लिए अंग्रेजी में भी एक ही शब्द है : 'जैस्मिन्' । अतः अंग्रेजी अनुवाद में भी इस प्रकार की अनिवार्य गलती हो सकती है।

इस प्रसंग मे ऐतिहासिक सामग्री के अनुवाद का भी एक उदाहरण देखा जा सकता है । मान लीजिए इतिहास की किसी अंग्रेजी पुस्तक में दो व्यक्तियों के सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि एक दूसरे का 'अंकल' था। उन दोनों के सम्बन्धों पर और किसी भी प्रकार की कोई सामग्री या किसी भी प्रकार का कोई सूत्र नहीं है । हिन्दी अनुवादक के सामने केवल एक ही चारा है कि वह 'अंकल' का अनुवाद 'चाचा' करे। अनूदित सामग्री के प्रकाशित होने के बाद हो सकता है कि कोई नई सामग्री ऐसी मिले जिससे उन दोनों के वास्तविक सम्बन्ध (ताऊ, मामा, फूफा, मौसा) का पता चले, और तब इस अनुवाद मे अर्थादेशीय दोष आ जाएगा। इसका अर्थ यह है कि अनुवादक से इस प्रकार की अनिवार्य अशुद्धि हो सकती है, और हो सकता है कि अशुद्धि का पता बाद मे चले या यह भी सम्भव है कि अशुद्धि तो है किन्तु उसका पता कभी भी न चले।

अनुवाद में अर्थादेश दोष के कुछ और भी उदाहरण लिए जा सकते हैं। संस्कृत में 'परिवार' का अर्थ है 'परिजन' या 'नौकर-चाकर'। मध्ययुग में 'परिवार' शब्द मे नौकर-चाकर के अतिरिक्त कुटुंब का भाव भी आ गया था, अर्थात् इस शब्द में अर्थ-विस्तार हुआ था। आधुनिक हिंदी तक आते-आते इस शब्द के अर्थ में मध्ययुग की तुलना में अर्थ-सकोच हुआ और अब इसका अर्थ केवल कुटुंब है :

| | मूल संस्कृत | मध्ययुगीन अर्थ | आधुनिक हिंदी अर्थ |
|---|---|---|---|
| परिवार | नौकर-चाकर | नौकर-चाकर | × |
| | × | कुटुंब | कुटुंब |

अब यदि किसी संस्कृत सामग्री का मध्ययुगीन भाषा में अनुवाद करें और मूल सामग्री के 'परिवार' शब्द के स्थान पर अनुवाद में भी 'परिवार' रख दें तो अनुवाद में अर्थ-विस्तार दोष आ जाएगा, यदि मूल मध्ययुग का हो और संस्कृत में अनुवाद करें और 'परिवार' के स्थान पर 'परिवार' शब्द रखें तो अर्थ-सकोच दोष आ जाएगा, किंतु यदि संस्कृत मूल का आज की हिंदी में अनुवाद करें और 'परिवार' के स्थान पर 'परिवार' रखें तो अर्थादेश दोष आ जाएगा, क्योंकि 'परिवार' का संस्कृत में अर्थ आज के हिंदी अर्थ से सर्वथा भिन्न था। ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं, जहाँ दो भाषाओं में अनेकानेक कारणों से समान शब्द होते

हैं, किन्तु उनके अर्थ समान नही होते। ऐसी स्थिति में एक भाषा से दूसरी में अनुवाद करते समय मूल भाषा में प्रयुक्त किसी शब्द के स्थान पर लक्ष्य भाषा में भी उसी शब्द का प्रयोग करने से यह दोष प्रायः आ जाता है। जैसा कि आगे हम देखेंगे सस्कृत पतग—हिंदी पतग; सम्कृत शीर्षक—हिन्दी शीर्षक; मलयालम उपान्यास—हिन्दी उपन्यास; मराठी सशोधन—हिन्दी सशोधन, हिन्दी बनिया—उडिया बाणिया आदि में अर्थ के स्पष्ट अतर हैं। अनुवाद में मूल में प्रयुक्त इन शब्दो के स्थान में लक्ष्य भाषा में भी यदि कोई अनुवादक इन्ही का प्रयोग करे तो उसका अनुवाद अर्थादेश दोष का शिकार हो जाएगा। इसीलिए अनुवादक को इस प्रकार के समान शब्दो से बहुत सतर्क रहना चाहिए।

दो भाषाओं में शब्द की समानता मुख्यतः तीन कारणों से होती है : (क) दोनों भाषाएं मूलतः एक भाषा से निकली हों। जैसे हिन्दी-पजाबी, सस्कृत-ग्रीक, मलयालम-तेलुगु, मराठी-सिंहली। (ख) एक का दूसरी पर प्रभाव पडा हो। जैसे सस्कृत-हिन्दी, फ़ारसी-उर्दू, अंग्रेजी-हिन्दी, पुर्तगाली-मराठी। ऐसा भी सभव है कि दोनों ने एक दूसरे को प्रभावित किया हो। जैसे हिन्दी-बंगाली। (ग) किसी अन्य भाषा का दोनो पर प्रभाव पड़ा हो। जैसे अंग्रेजी का हिंदी-पंजाबी पर या सस्कृत का मराठी-बंगाली पर। इस समानता का परिणाम यह होता है कि अनुवादक स्रोत भाषा के किसी शब्द को लक्ष्य भाषा में पाकर अनुवाद में उसे ही रख देने के लोभ का सवरण नही कर पाता। किंतु ऐसा प्रायः होता है कि ये समस्रोतीय शब्द अर्थ-परिवर्तन के कारण अर्थ की दृष्टि से समान नही होते, और इस तरह वह अनुवाद कभी तो हास्यास्पद हो जाता है और कभी ग़लत। मूल सामग्री का भाव उसमें नहीं आ पाता। यहां कुछ भाषाओं से आर्थिक अतरवाले समस्रोतीय समान शब्दो को देखा जा सकता है। सस्कृत और हिंदी में काफी शब्द समान हैं, किंतु उन समान शब्दों मे ऐसे भी शब्द कम नही हैं जो अर्थ की दृष्टि से एक नही हैं। संस्कृत 'जंघा' का अर्थ 'घुटने' और 'टखने' के बीच का भाग है किंतु हिंदी में इसका अर्थ 'घुटने' और 'कमर' के बीच का भाग 'जांघ' है। गुजराती जांघ, सिंधी-उडिया-पंजाबी जंघ, असमी-बँगला जाड, कश्मीरी जग के अर्थ भी हिंदी के समान हैं। अब यदि सस्कृत से अनुवाद करने में हिंदी, गुजराती या बगला आदि में इसी शब्द का प्रयोग कर दिया जाय तो अर्थादेश दोष आ जायगा। इसी प्रकार 'शीर्षक' का संस्कृत मे अर्थ 'सिर' है किंतु हिंदी मे 'हैडिंग' है। 'पतंग' सस्कृत में 'गुड्डी' को नहीं कहते। 'पदवी' सस्कृत मे मार्ग, पद, स्थान है किन्तु हिंदी में 'उपाधि' है। 'प्रणाली' संस्कृत मे 'नाली' है किन्तु हिंदी में यह

अर्थ नहीं है। 'पेट' संस्कृत में थैला या संदूक है, किंतु हिंदी में इसका नया अर्थ विकसित हो गया है। 'आन्दोलन', 'प्रथा', 'अनुरोध' आदि अन्य अनेक शब्दों के भी हिंदी वाले अर्थ संस्कृत में नही हैं। तमिल तथा हिंदी में भी अनेक शब्द समान हैं किंतु अर्थ में पर्याप्त अंतर है। 'चिमनी' तमिल में 'चिमणि' है, और उसका अर्थ 'मिट्टी का तेल' है। इसी तरह तमिल में 'चपल' का अर्थ लालच है तथा कुलि (हिंदी कुली) का 'मजदूरी'। किलास (हिंदी गिलास) का काच, इलाक्का (हिंदी इलाका) का महकमा, अनुमति का स्कूल आदि में प्रवेश (admission) भी, तथा इनाम का 'मुफ्त सेवा' भी है। मलयालम तथा हिंदी के भी कुछ उदाहरण लिए जा सकते हैं। श्रीमती-श्रीमान मलयालम में 'सम्पन्न' भी हैं। ऐसे ही 'शेख' का अर्थ 'बूढ़ा आदमी', शासनम् का 'आज्ञा', तथा रूपा का 'रुपया'। तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम में 'उपन्यास' शब्द है किंतु उसका अर्थ इन सभी भाषाओं में 'भाषण' है, अर्थात् हिंदी से इन भाषाओं में या इन भाषाओं से हिंदी में अनुवाद करते समय 'उपन्यास' के स्थान पर 'उपन्यास' नही रखा जा सकता। गुजराती में 'हल्ला' आक्रमण है, जबकि हिंदी में 'शोर-शराबा', 'बावडी' गुजराती में 'छोटा कुआँ' है जब कि हिंदी में 'छोटा ताल'; 'बलात्कार' गुजराती में अत्याचार (violence oppression) है जबकि हिंदी मे कुछ और; तथा 'संशोधन' गुजराती में शोध है जबकि हिंदी में 'सुधार'। 'सड़ना' पजाबी में 'जलना' है लेकिन हिंदी मे 'सड़ना', असमी में 'देमाक' (हिंदी दिमाग) गुस्सा है, 'घाम' पसीना भी है, 'हरकत' हानि भी है, 'विचार' खोज भी है, 'विचित्र' सुंदर है तथा 'छाती' छाता भी है। इसी तरह कन्नड़ में 'कवि' बुद्धिमान भी है। मराठी मे अबीर चंदनयुक्त सुगंधित चूर्ण है और 'आबहवा' मौसम भी है। उड़िया में 'काठ' ईंधन है जब कि हिंदी में लकड़ी। 'उजला' (सं० उज्ज्वल) शब्द हिंदी उड़िया दोनों मे है किंतु उड़िया मे इसका अर्थ धोबी है, अनाज (सं० अन्नाद्य) भी दोनों मे है पर उड़िया मे इसका अर्थ तरकारी या सब्जी है। 'रोजगार' उड़िया में आमदनी या आय का अर्थ देता है, किंतु हिंदी में इससे सर्वथा भिन्न। इसी तरह 'पुष' उड़िया में ९वाँ महीना है, किंतु हिंदी 'पूस' १०वाँ। 'फागुण' उड़िया मे ११वाँ महीना है किंतु हिंदी 'फागुन' १२वा है। उड़िया में 'बणिया' सुनार है, 'चमक' डर या आश्चर्य है, 'जिगर' जिद है, 'नाति' लड़के का लड़का है और 'नानी' बड़ी बहन या बुआ है जबकि हिंदी में इनके अर्थ सर्वथा भिन्न हैं।

निष्कर्षतः अनुवादक को अर्थ के स्तर पर इन दोषों (संकोच, विस्तार, आदेश) से यथासाध्य बचने का यत्न करना चाहिए।

अर्थ की दृष्टि से अनुवाद में और भी अनेक बातें ध्यान में रखने की हैं। दो-तीन का संकेत यहाँ किया जा रहा है।

कभी-कभी स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में एक ही अर्थ या भाव के लिए अभिव्यक्ति में समानता नहीं होती। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी में first floor हिंदी में दूसरी मंजिल है और ground floor पहली मंजिल है। असावधान अनुवादक first floor का अनुवाद पहली मंजिल या secoud floor का दूसरी मंजिल या Third floor की तीसरी मंजिल कर दे तो गलत हो जाएगा। ऐसे ही issuless Couple का अनुवाद असावधानी से नि.संतान माता-पिता किया जा सकता है। किंतु वास्तविकता यह है कि संतान पैदा होने के पूर्व Couple माता-पिता की संज्ञा का अधिकारी नहीं हो सकता। इसका ठीक अनुवाद—नि.संतान दंपति या पति-पत्नी होगा।

हर भाषा में (अर्थ की) सूचना देने की क्षमता समान नहीं होती। यही कारण है कि एक वाक्य का दूसरी भाषा में अनुवाद आवश्यक नहीं कि उतनी ही सूचनाएँ दे जितनी सूचनाएँ स्रोत भाषा का वाक्य दे रहा है। 'राम आज कल दवा पी रहा है' का अंग्रेज़ी अनुवाद होगा Ram is taking medicine these days. किंतु क्या अर्थ के स्तर पर दोनों वाक्य समानार्थी हैं? शायद नहीं। अंग्रेज़ी वाक्य में अर्थ-विस्तार हो गया है, क्योंकि taking या लेना में 'पीना' भी संभव है और 'खाना' भी। आशय यह है कि यह हिंदी वाक्य अपेक्षाकृत अधिक सटीक (exact) सूचना दे रहा है और अंग्रेज़ी वाक्य की सूचना उतनी सटीक नहीं है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि 'राम आजकल दवा खा ररा है, का भी अंग्रेज़ी अनुवाद यही होगा। इस सटीक सूचना के अभाव के कारण ही अंग्रेज़ी Ram is taking medicine these days को हिंदी में कहना कठिन था—इसीलिए 'राम आज कल दवा ले रहा है' प्रयोग चल पड़ा। यदि यह प्रयोग अंग्रेज़ी के प्रभाव से न चला होता तो अंग्रेज़ी से हिंदी अनुवाद में अर्थादेश दोष आ जाने की संभावना होती ('खाना' के स्थान पर 'पीना' या 'पीना' के स्थान पर 'खाना' के कारण) तथा हिंदी से अंग्रेज़ी अनुवाद में तो अर्थ-विस्तार की संभावना है ही। निष्कर्षतः स्रोत और लक्ष्य भाषा में सूचना-शक्ति के समान न होने पर अनुवादक को बहुत सतर्कता रखनी चाहिए नहीं तो अनुवाद दोषपूर्ण हो जाता है।

१२

# अनुवाद और वाक्यविज्ञान

वाक्यविज्ञान भाषाविज्ञान की एक शाखा है, जिसमें भाषा के वाक्यों की रचना का अध्ययन होता है, और अनुवाद में एक भाषा के वाक्यों का दूसरी भाषा में रूपांतर करते हैं, दूसरे शब्दों में एक भाषा की वाक्य-रचना को दूसरी भाषा की प्रकृति के अनुकूल वाक्य-रचना में परिवर्तित करते हैं, इस तरह विभिन्न भाषाओं के वाक्यों के विश्लेषण का विज्ञान वाक्यविज्ञान अनुवाद में निश्चित ही बहुत सहायक हो सकता है।

प्राचीन काल में अनेक लोगों का यह मत था कि अनुवाद शब्दशः literal होना चाहिए। इस तरह अनुवाद में शब्द का या शब्द-स्तर का विशेष महत्त्व था। कुछ यूनानी तथा रोमन अनुवादकों ने बाइबिल के ऐसे ही अनुवाद किए, किन्तु उन शाब्दिक अनुवादों के (भाव तथा शैली की दृष्टि से) अटपटेपन ने यह शीघ्र ही स्पष्ट कर दिया कि अनुवाद में शब्द या शब्द-स्तर उतना महत्त्वपूर्ण नहीं होता, जितना अर्थ या भाव महत्त्वपूर्ण होता है, और अर्थ या भाव शब्द-स्तर पर न होकर वाक्य-स्तर पर ही होते हैं। वस्तुतः ध्यान देने की बात यह है कि अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषा में होता है, और भाषा की सहज मूलभूत इकाई वाक्य है, शब्द नहीं। मनुष्य वाक्यों के माध्यम से ही सोचता, बोलता और समझता है। यहाँ तक कि कभी बातचीत में हम एक शब्द का प्रयोग करते भी हैं तो वह एक शब्द भी पूरे वाक्य के संदर्भ में ही बोला और समझा जाता है—

राम—घर चलोगे ?

मोहन—हाँ।

यहाँ 'हाँ' एक शब्द नहीं है। वक्ता और श्रोता दोनों ही के लिए वह 'हाँ घर चलूँगा' वाक्य का संक्षिप्त रूप है। इस तरह भाषा में अर्थ या भाव हमेशा वाक्य स्तर पर ही होते हैं और इसीलिए अनुवाद भी वाक्य का ही होना चाहिए। इससे यह बात स्वतः सिद्ध है कि अच्छा अनुवाद वाक्यविज्ञान

की व्यावहारिक जानकारी के बिना किया ही नहीं जा सकता।

सम्बद्ध विषय पर निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत विचार किया जा रहा है।

(१) बाह्य-संरचना (Deep Structure) तथा आंतरिक संरचना (Surface structure)—भाषाओं में वाक्यों के सामान्यतः एक ही अर्थ होते हैं। जैसे 'राम जा रहा है।' किन्तु कुछ वाक्य ऐसे भी होते हैं जिनके एकाधिक अर्थ होते हैं। उदाहरण के लिए एक वाक्य लें—

शीला गानेवाली है।

इस वाक्य के दो अर्थ हैं : (१) शीला अब गाएगी; (२) शीला गाने का काम करती है। इसका अर्थ यह है कि बाह्य संरचना में एक वाक्य होता हुआ भी आंतरिक संरचना में यहाँ दो वाक्य हैं। एक है 'शीला गाएगी' जिसे 'शीला गानेवाली है' रूप में कहा गया है, और दूसरा है 'शीला गाने का काम या पेशा करती है' और इसे भी 'शीला गानेवाली है' रूप में कहा गया है। आंतरिक संरचना में दो वाक्य होने के कारण ही इस वाक्य के दो अर्थ हैं। अनुवादक के लिए यह आवश्यक है कि वह देख ले कि वाक्य कहीं एक से अधिक अर्थोंवाला तो नहीं है, और यदि है तो उसकी आंतरिक संरचना के आधार पर उस प्रसंग में अनुवाद करने से पहले उसका ठीक अर्थ निश्चित कर लेना चाहिए और उसी का अनुवाद करना चाहिए। इस बात का ध्यान न रखने वाला अनुवादक अनेकार्थी वाक्यों में एक अर्थ के स्थान पर दूसरे को लेकर अनुवाद करने की ग़लती कर सकता है।

यहाँ कुछ ऐसे वाक्य या वाक्यांश देखे जा सकते हैं, जिनके एकाधिक अर्थ हैं। एकाधिक अर्थ आंतरिक रूप में दिखाए गए हैं।

(क) बाह्य—मुझे, तुम्हें दो रुपये देने हैं।
आंतरिक—(१) तुम मुझे दो रुपये दोगे।
(२) मैं तुम्हे दो रुपये दूँगा।
(३) तुम मेरे दो रुपये के कर्ज़दार हो।
(४) मैं तुम्हारा दो रुपये का कर्ज़दार हूँ।

(ख) बाह्य—मैंने दौड़ते हुए शेर को मारा।
आंतरिक—(१) जब मैंने शेर को मारा तो मैं दौड़ रहा था।
(२) जब मैंने शेर को मारा तो शेर दौड़ रहा था।

(ग) बाह्य—मुझे मन भर मिठाई चाहिए।
आंतरिक—(१) मुझे एक मन मिठाई चाहिए।
(२) मुझे मन (जी) भर मिठाई चाहिए।

(घ) बाह्य—shooting of the hunter।
आंतरिक—(१) शिकारी का मारना
(२) शिकारी को मारना
(ङ) बाह्य—मुकुल की पेंटिंग
आंतरिक—(१) मुकुल की बनाई पेंटिंग
(२) पेंटिंग जिसका मालिक मुकुल है।
(३) पेंटिंग जो मुकुल (के स्वरूप) की है।
(च) बाह्य—दाढी मुझे अच्छी लगती है।
आंतरिक—(१) दाढी देखना मुझे अच्छा लगता है।
(२) दाढी मेरे चेहरे पर अच्छी लगती है।
(छ) बाह्य—खाते जाओ।
आंतरिक—(१) खाते हुए जाओ।
(२) खाकर जाओ।
(३) go on eating.

इस प्रकार के अनेकार्थक वाक्यों या वाक्यांशों के अनुवाद के समय अनुवादक का ध्यान निश्चित रूप से आंतरिक स्तर पर व्यक्त अर्थ पर ही होना चाहिए, अन्यथा, अर्थ का अनर्थ हो सकता है, क्योंकि आवश्यक नहीं कि स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा मे बाह्य और आंतरिक स्तर पर वाक्य-रचना मे सर्वदा समानता हो।

(२) निकटतम अवयव (Immidiate constituent)—वाक्य जिन विभिन्न पदों या खडो से बनते हैं उन्हे वाक्य के अवयव कहते है। किसी वाक्य का ठीक अर्थ जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि वाक्य मे किस अवयव का निकटतम अवयव कौन सा है, क्योंकि निकटतम अवयव के आधार पर ही अर्थ की इकाइयाँ बनती हैं। पहले निकटतम अवयव को समझ ले। एक वाक्य है:—

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| राम | का | मित्र | मोहन | श्याम | के | घर | जा | रहा | है। |

इसमें १० अवयव हैं। यदि विभिन्न स्तरों पर इनकी निकटता देखें तो १० को ७ में रखा जा सकता है:—

| राम का | मित्र | मोहन | श्याम के | घर | जा रहा | है। |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ |

फिर इन ७ को ४ मे—

फिर ४ को ३ में—

फिर ३ को २ में—

फिर २ को १ में—

वाक्य में अर्थ की प्रतीति इसी क्रम से निकटतम अवयवों के आधार पर होती है। इसे एक साथ यों भी रख सकते हैं—
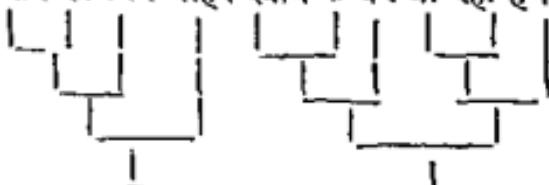
पद अर्थ के स्तर पर निकटतम अवयव बनते हैं, एक स्थान पर होने के कारण नहीं। उपर्युक्त वाक्य मे 'मोहन' तथा 'श्याम' एक साथ आए हैं, किन्तु वे निकटतम अवयव नहीं हैं, क्योंकि अर्थ के स्तर पर उनका आपस में सीधा सम्बन्ध नहीं है। Is he going ? वाक्य मे Is तथा going दूर-दूर हैं, किंतु वे निकटतम अवयव हैं, क्योंकि अर्थ के स्तर पर वे आपस में सम्बद्ध हैं। अर्थ समझने में निकटतम अवयवों को समझना आवश्यक है। उदाहरणार्थ—

सुन्दर फूल और फल रखे हैं।

में निकटतम अवयवों का विभाजन दो रूपों में सम्भव है, इसीलिए इनके दो अर्थ हैं—
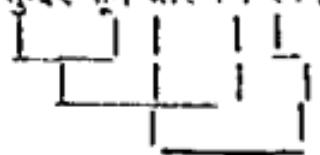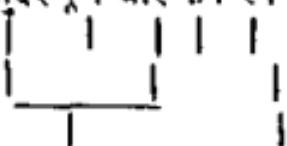
पहले में सुन्दर केवल फूल का विशेषण है किन्तु दूसरे में वह फूल और फल दोनों का विशेषण है। इस तरह अर्थ इस विभाजन से बँधा है या विभाजन इस वाक्य या रचना या लेखक के भाव से बँधा है। इसीलिए अनेक वाक्यों में निकटतम अवयवों का सम्बन्ध एकाधिक रूपों में हो सकता है अतः उनके एकाधिक अर्थ हो सकते हैं। निष्कर्षतः किसी वाक्य का ठीक अर्थ जानने के लिए अवयवों के आपसी सम्बन्ध जानना आवश्यक है, इसीलिए अनुवादक को भी निकटतम अवयवों का ध्यान रखना चाहिए। मान लीजिए हिंदी में है:

सुन्दर फूल और फल

तथा हमें संस्कृत में अनुवाद करना है। यदि

सुन्दर फूल और फल
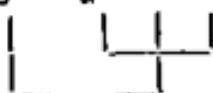
रूप में मानकर अनुवाद करें तो होगा—

सुन्दर. पुष्पः सुन्दर फल च

किन्तु यदि
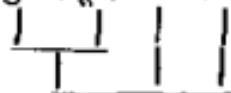
मानें तो अनुवाद होगा—

सुन्दर. पुष्पः फल च

एक दूसरा उदाहरण लें—

बैठो मत जाओ

यदि

बैठो मत जाओ
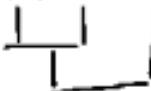
लें तो अंग्रेजी अनुवाद होगा

Don't sit, go.

और यदि

बैठो मत जाओ
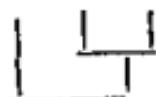
तो होगा

Sit down, don't go. ऐसे ही

Tall boys and girls are going.

के निकटतम अवयवों के आधार पर दो अनुवाद होंगे—

(१) लंबे लड़के और लड़कियाँ जा रही हैं।

(२) लंबे लड़के और लंबी लड़कियाँ जा रही हैं।

अनुवाद में हर शब्द पर अधिक ध्यान देने वाले लोग निकटतम अवयवों का ध्यान न रखने पर गलती कर सकते हैं। एक वाक्य है—

वह अपनी स्त्री की मुट्ठी में है।

इसमें यदि हर शब्द को अलग-अलग लेकर अनुवाद करें तो होगा

He is in the fist of his wife.

किंतु वस्तुत. इसमें 'मुट्ठी' अलग नहीं है 'मुट्ठी मे होना' एक दूसरे के निकटतम अवयव हैं, अतः यही एक आर्थिक इकाई (मुहावरा) है, और इस पूरे का एक साथ अनुवाद होगा—He is under the thumb of his wife. मुहावरो तथा लोकोक्तियों के शब्द, वाक्य के अन्य शब्दों से अलग आपस मे निकटतम होते हैं, अतः उसका हमेशा एक आर्थिक इकाई के रूप में अलग अनुवाद होना चाहिए, अन्यथा अर्थ का अनर्थ हो जाता है। He fell in love with her में निकटतम अवयव का ध्यान न रखें तो अनुवाद होगा 'वह उसके साथ प्रेम में गिरा' 'किन्तु fall in love with' को निकटतम मानकर इकाई रूप में अनुवाद करें तो 'प्यार करना' के आधार पर होगा 'वह उससे प्यार करने लगा'। इसी प्रकार 'मेरा सिर चक्कर खा रहा है,' 'वह नौ दो ग्यारह हो गया' 'It is raining cats and dogs' आदि के अनुवादों में भी देखा जा सकता है।

दो वाक्य हैं—

(१) उन दोनों में रात-दिन का अंतर है।

(२) वहाँ रात-दिन काम हो रहा है।

निकटतम अवयव के आधार पर स्पष्ट है कि एक इकाई है 'रात-दिन का अन्तर' (vast difference) और दूसरी है 'रात-दिन' (round the clock), अतः अनुवाद में इसका ध्यान रखना पड़ेगा।

(३) सहप्रयोग—वाक्य में 'सहप्रयोग' का अपना विशेष महत्त्व है। 'सह-प्रयोग' मेरा अपना बनाया हुआ शब्द है। सहप्रयोग से मेरा आशय यह है कि हर भाषा में शब्द-विशेष के साथ विशेष अर्थों में सभी शब्दों का प्रयोग नहीं होता। अनेक पर्यायों में एक या कुछ ही शब्द उस शब्द के साथ उस अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण के लिए हिंदी मे नाश्ता अर्थ में 'जलपान' शब्द प्रयुक्त होता है। यद्यपि जल के पर्याय हिन्दी में पानी, नीर, अंबु आदि कई है, किन्तु नाश्ते के अर्थ में 'पान' के साथ पानी, नीर अथवा अंबु (पानीपान, नीरपान, अंबुपान) का सहप्रयोग नहीं हो सकता। होता है केवल जल (जल-पान) का सहप्रयोग। अर्थात् इस विशेष अर्थ मे हिन्दी मे 'जल' और 'पान' इन दो का ही सहप्रयोग सम्भव है। सहप्रयोग का सभी भाषाओं में समास और वाक्य-रचना के स्तर पर महत्व है। ऊपर का उदाहरण समास का था। वाक्य में भी उदाहरण लिया जा सकता है। उदाहरण के लिए हिन्दी में 'भोजन' और 'खाना' पर्याय हैं, किंतु खाने के अर्थ में 'खाना' धातु का प्रयोग इन दोनो के साथ नही हो सकता। 'खाना खाना' तो ठीक है किंतु 'भोजन खाना' नही हो सकता। 'भोजन' का सहप्रयोग 'खाना' के साथ नहीं, अपितु 'करना' के साथ होता है। बंगला में सिगरेट खाते हैं पर हिन्दी में पीते हैं। अंग्रेजी में to play a radio होता है पर हिन्दी में 'रेडियो बजाना'। इसी तरह हिन्दी में 'चाय पीना' किन्तु अंग्रेजी में 'टी' के साथ 'ड्रिंक' का सह-प्रयोग नही है, टेक (to take tea) का है। अंग्रेजी मे to play on violin पर हिंदी में 'वायलिन बजाना'। सहप्रयोग की दृष्टि से हिन्दी अंग्रेजी के कुछ वाक्य दर्शनीय हैं:—

(१) बत्ती जलाओ।
Burn the lamp (गलत)
light the lamp

(२) उसने मैच में एक गोल किया।
He made a goal in the match. (गलत)
He scored a goal in the match.

(३) The doctor felt my pulse.
डाक्टर ने मेरी नब्ज महसूस की। (गलत)

डाक्टर ने मेरी नब्ज देखी।

(४) Make the bed.
विस्तर बना दो (गलत)
बिस्तर बिछा दो।

(५) मैंने होटल के लिए टैक्सी की।
I dida taxi for the hotel. (गलत)
I took a taxi for the hotel.

(६) फूल तोडो।
Break the flower. (गलत)
Pluck the flower.

(७) He is taking his meals.
वह खाना ले रहा है। गलत
वह खाना खा रहा है।
हिन्दी में :
मैंने दवा दी।
मैंने दवा खाई।
मैंने दवा पी।

तीनों ठीक हैं, किन्तु अंग्रेज़ी में केवल to take the medicine, न तो to drink और न eat। हिन्दी में प्राय: 'असर करना' होता है पर दूसरी ओर 'प्रभाव डालना'। इस तरह वाक्य-रचना में अनुवादक के लिए सहप्रयोग का ध्यान रखना आवश्यक है। इसी ध्यान न रखने का कारण हिन्दी में 'मैंने चाय ले ली है' जैसे प्रयोग चल पड़े हैं।

(४) लिंग—प्राकृतिक लिंग और व्याकरणिक लिंग सर्वदा समान नहीं होते। जर्मन में 'फाउनाइन' (कुमारी) तथा 'फाउनरिसमा (स्त्री-अर्यापकपित) नपुंसक लिंग हैं तो संस्कृत में 'दारा' (स्त्री) पुल्लिंग है, तथा 'कलत्र (स्त्री) नपुंसक लिंग है। इसीलिए ऐसी भाषाओं में, जिनमें व्याकरणिक लिंग है, अनुवाद करते समय लिंग का ध्यान आवश्यक हो जाता है। इस पर और भी अधिक ध्यान देने की आवश्यकता तब होती है जब स्रोत भाषा ऐसी हो (जैसे फारसी, ताजिक, उज़बेक, तुर्की आदि) जिसमें व्याकरणिक लिंग न हो तथा लक्ष्य भाषा ऐसी हो जिसमें व्याकरणिक लिंग हो। इस स्थिति में जरा भी असावधानी से अनुवाद में लिंग विषयक गलती हो जाती है। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी का वाक्य लें 'She is very intelligent lady' मान लें

संस्कृत में अनुवाद करना है। अनुवादक यदि 'बुद्धिमान् महिला' का प्रयोग करेगा तो गलत हो जाएगा। उसे 'बुद्धिमती महिला' कहना पड़ेगा। इसी प्रकार संस्कृत में 'सुन्दर स्त्री' न होकर 'सुन्दरी स्त्री' होगा। इस सावधानी के साथ ही इस बात की सावधानी भी आवश्यक है कि सादृश्य के कारण ऐसे लैंगिक रूप न बन जाएं जो अपरिनिष्ठित हों। उदाहरण के लिए हिंदी-उर्दू में *अच्छा-अच्छी-अच्छे या बुरा-बुरी-बुरे के सादृश्य पर लड़ाका-लड़ाकी-लड़ाके,* सुनहरा-सुनहरी-सुनहरे या ताजा-ताजी-ताजे का प्रयोग परिनिष्ठित नहीं है। परिनिष्ठित उर्दू में 'ताजा खबर' ठीक है न कि 'ताजी खबर'। इसी तरह 'खारा पानी' तथा 'लड़ाका औरत' ठीक हैं, न कि 'खारा पानी' और 'लड़ाकी औरत', यद्यपि ये भी बोले जाते हैं। अनुवादक के गलती करने की संभावना उस स्थिति में और भी बढ़ जाती है जब स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में एक ही अर्थ में प्रयुक्त शब्दों में लिंग-भेद हो। उदाहरण के लिए हिंदी जहाज, चाँद, बसंत, पतझड़ पुल्लिंग हैं, किंतु अंग्रेजी ship, moon, spring, Autumn समानार्थी होते हुए भी स्त्रीलिंग है। हिन्दी वाक्य 'चाँद ने बादलों में अपना मुँह छिपा लिया है' को The moon has hid his fase behind clouds नहीं कह सकते। his के स्थान पर her का प्रयोग करना पड़ेगा। इसी तरह 'जहाज और उसकी सभी नौकाएं तूफान में नष्ट हो गईं' को The ship and all his boats were destroyed in the storm नहीं कह सकते। यहाँ भी his के स्थान पर her का प्रयोग शुद्ध होगा। इसके विपरीत मौत तथा जाड़ा हिन्दी में स्त्रीलिंग हैं तो death और अंग्रेजी में winter पुल्लिंग हैं।

इस तरह अनुवादक को स्रोत तथा लक्ष्य भाषा में व्याकरणिक लिंग से सम्बद्ध प्रायोगिक विशेषताओं एवं नियमों से परिचित होना चाहिए तथा इस ओर से सतर्क रहना चाहिए।

(२) वचन—वचन-सम्बन्धी नियम भी हर भाषा के अपने होते हैं। अनुवादक को इस सम्बन्ध में सतर्क रहना चाहिए। उदाहरण के लिए हिन्दी में 'दर्शन' का प्रयोग बहुवचन (बहुत दिनों के बाद आपके दर्शन हुए) में होता है। इसी प्रकार 'उसके प्राण निकल गए' न कि 'निकल गया'। अंग्रेजी की वचन सम्बन्धी कुछ बातों का उल्लेख भी यहाँ उपयोगी होगा। sheep, deer cod आदि कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके एकवचन-बहुवचन के रूप समान होते हैं। संख्यावाचक विशेषणों के बाद pair, stone, gross, hundred, thousand के भी बहुवचन नहीं बनाते : He gave me five thusand rupees. He

weights above nine stone. कुछ संज्ञाओं का अंग्रेज़ी में प्रयोग हमेशा बहुवचन रूप में ही होता है : Spectacles, scissors, pants, trousers, tongs, pincers, bellows, billiands, measles, panties, slags, mumps, annals आदि। हिन्दी में कुछ शब्द बहुवचन में होने पर भी एकवचन रूप में भी वाक्य में आते हैं : 'वह दस दिन ('दिनों' का प्रयोग भी होता है पर कम) तक नहीं आएगा'; 'उसके पिता एक सौ दस वर्ष (वर्षों का भी प्रयोग हो सकता है किन्तु कम ही होता है) तक जीवित रहे।'

कुछ भाषाओं में एकवचन के स्थान पर आदर के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है। अंग्रेज़ी वाक्य—

Nehru was a very good speaker.

नेहरू बड़े अच्छे वक्ता थे।

के हिन्दी रूपांतर से बात स्पष्ट हो जाएगी। सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रियाविशेषण में यह बात देखी जा सकती है :

क१ He is coming.

क२—वे आ रहे हैं।

ख१—चपरासी लंबा है।

ख२—अध्यापक लंबे हैं।

ग१—सभा के अध्यक्ष गए।

ग२—श्रोतागण गए।

ग३—माइकवाला गया।

घ१—लड़का दौड़ता आया है।

घ२—पिता जी दौड़ते आए हैं।

अनुवादक को लक्ष्य भाषा के नियमों के अनुसार ऐसी स्थितियों में स्रोत भाषा के वचन में जहां अपेक्षित हो परिवर्तन कर देने चाहिए।

(६) पुरुष—अनुवाद में कभी-कभी सर्वनाम के पुरुष में भी परिवर्तन अपेक्षित होता है :

He said that he will go.

उसने कहा मैं जाऊंगा।

(७) कारक-चिह्न—भाषा की प्रकृति के अनुसार अनुवादक को वाक्य में प्रयुक्त कारक-चिह्नों को भी कभी-कभी बदलना पड़ता है—

He has faith *in* his wife.

उसे अपनी पत्नी पर विश्वास है।

His name was mentioned *at* the lecture.

भाषण मे उसके नाम का उल्लेख हुआ था।

we will have to go a little ahead *of* time.

हमे समय से कुछ पहले जाना होगा।

(८)पदक्रम—हर भाषा मे वाक्य मे पदो का विशेषक्रम होता है। अनुवाद मे यह ध्यान रखना चाहिए कि स्रोत भाषा के पदक्रम की छाया लक्ष्य भाषा मे किए गए अनुवाद मे न पडे। उदाहरण के लिए 'रामः लक्ष्मणश्च' के स्थान पर 'राम और लक्ष्मण' का सस्कृत अनुवाद 'रामश्च लक्ष्मणः' सस्कृत के अनुकूल न होगा। अग्रेजी मे यदि तीनो पुरुष साथ आएँ तो पहले अन्य पुरुष फिर मध्यम पुरुष और तब उत्तम पुरुष का क्रम रखा जाता है। 'मैंने और रामने उसका समर्थन किया' का अनुवाद 'I and Ram supported him' गलत होगा। शुद्ध अनुवाद होगा Ram and I supported him.

इसी प्रकार विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करने के लिए पदक्रम में परिवर्तन भी कर लिया जाता है :

तो मैं जाता हूँ।

तो जाता हूँ मैं।

किंतु आवश्यक नही कि हर भाषा मे इसके नियम समान हों। अनुवादक को उस अतर का ध्यान रखना चाहिए।

(६) व्याकरणिक परिवर्तन—स्रोत भाषा की वाक्य-रचना लक्ष्य भाषा की वाक्य-रचना के समान ही नही होती। इसीलिए लक्ष्य भाषा के अनुरूप वाक्य बनाने के लिए स्रोत भाषा के वाक्य के शब्दो मे कभी कभी व्याकरणिक परिवर्तन करने पडते हैं। यों भी अनुवादक कभी-कभी विशेष सदर्भ मे ऐसे परिवर्तन कर लेता है। जैसे कभी विशेषण का काम संज्ञा से लेते हैं—

He is controller of time.

समय का नियत्रण उसके हाथ में है।

...Private members' bussiness gets more *generous* allotment of time in the Parliament of United Kingdom than in the Indian Parliament.

...भारतीय ससद के मुकाबले युनाइटिड किंगडम की संसद में ग़ैर सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए समय नियत करने में अधिक उदारता बरती जाती है।

तो कभी क्रिया का विशेषण से—

I shall not go.

मैं नही जाने का।

या क्रियाविशेषण और क्रिया दोनों के स्थान पर सिर्फ क्रिया—

वह अपनी चीज़ें फिर से सजा रहा है।

He is rearranging his things.

या क्रियाविशेषण के लिए विशेषण—

He speaks well.

वह अच्छा वक्ता है।

या क्रियाविशेषण से विशेषण और विशेषण से क्रियाविशेषण—

It can *safely* be asserted that the sittings af the Indian Legistatures occupy an *average* five hours per sitting.
यह कहना निरापद होगा कि भारतीय विधानमंडलों की बैठकों में औसतन पाँच घंटे प्रति बैठक लगते हैं।

या संज्ञा के लिए क्रिया—

He is a begger.

वह भीख मांगता है।

या क्रिया के लिए संज्ञा—in the Legislative Assembly the relative precedence of bills by non-offical members was determined by ballot to be held according to a prescribed procedure on snch day not being less than 15 days before the day with reference to which the ballot was held, as the Presideni directed.

विधान सभा मे गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों की आपेक्षिक पूर्वता मत-पर्ची डालकर निश्चित की जाती थी। इसके लिए मतदान निर्धारित प्रणाली के अनुसार प्रधान के निर्देशन में, होता था और जिस दिन के संदर्भ मे पर्ची डालनी होती थी, मतदान उससे कम-से-कम पंद्रह दिन पहले हो जाता था।

आदि। कहने का आशय यह है कि किसी वाक्य के अनुवाद मे आवश्यक नही है कि शब्द अपने मूल व्याकरणिक रूप मे ही आएँ, उनमें परिवर्तन भी हो सकता है और होता है।

(१०) काल—वाक्यों मे विभिन्न-कालों के द्योतन में कभी-कभी तो स्रोत और लक्ष्य भाषा में पूरी समानता मिलती है, किंतु कभी-कभी असमानता भी मिलती है और वैसी स्थिति मे अनुवादक को बड़ी सावधानी से अनुवाद करना चाहिए। 'राम जाता है' तथा 'राम जा रहा है' दोनो के लिए संस्कृत में 'रामः गच्छति'

ही होगा। सामान्यतः फ्रांसीसी में भी इन दोनों का अंतर नहीं है। 'मैं पढ़ता हूँ' (सामान्य वर्तमान) तथा 'मैं पढ़ रहा हूँ' (सातत्य या अपूर्ण वर्तमान) दोनों को 'ज जाम्रो' कहेंगे। अंग्रेजी-रूसी-जर्मन-फ्रेंच आदि में तुलना करने पर अनुवाद-विषयक ऐसी अनेक समस्याएँ सामने आती हैं। फ्रांसीसी वर्तमानकाल, अंग्रेजी में हमेशा वर्तमानकाल से ही नहीं व्यक्त होता। अफ्रीका की होपी (Hopi) भाषा में अन्य अनेक भाषाओं की तरह काल नहीं होते। क्रियाओं का प्रयोग वहाँ मात्र पूर्णता-अपूर्णता पर आधारित है। ऐसी भाषाओं में या से अनुवाद भी एक समस्या बन जाता है। अंग्रेजी I worked को हिंदी में कहेंगे 'मैंने काम किया' किंतु Those days I worked there में I worked का 'मैंने काम किया' के अतिरिक्त 'मैं काम करता था' भी हो सकता है। I am suffering from fever का उसी काल में हिंदी अनुवाद होगा 'मैं ज्वर से पीडित हो रहा हूँ' किंतु हिंदी में इस प्रकार का वाक्य नहीं बनता अतः ठीक अनुवाद होगा— मुझे ज्वर है' या 'मैं ज्वरग्रस्त हूँ' या 'मैं ज्वर से पीड़ित हूँ।'

अंग्रेजी के सातत्यबोधक वर्तमान को हिंदी में रह+हो से व्यक्त करते हैं। Ram is going का 'राम जा रहा है'। किंतु हर संदर्भ में आँख मूंदकर इस प्रकार का अनुवाद नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए

The birds are sitting on a tree.

को 'चिड़िया पेड पर बैठ रही हैं' नहीं कह सकते। इस Present continuous का अनुवाद पूर्ण वर्तमान रूप में करना होगा—चिड़ियाँ पेड़ पर बैठी हैं। इस तरह स्रोत तथा लक्ष्य भाषा में काल-बोधक समानता होने पर भी कभी-कभी स्रोत भाषा के एक काल के स्थान पर लक्ष्य भाषा के किसी दूसरे काल का प्रयोग करना पडता है। इसी तरह where are you staying ? का 'कहाँ आप ठहर रहे हैं' केवल भविष्य के लिए कहेंगे, वर्तमान व्यक्त करने के लिए पूर्ण का प्रयोग होगा—'आप कहाँ ठहरे हैं ?'

एक दूसरा उदाहरण लें। 'मैं कल आया' में 'आया' को भूतकाल के रूप came से अनूदित किया जाएगा किंतु 'तुम बैठो मे अभी आया' में भूतकालिक रूप 'आया' के लिए अपूर्ण वर्तमान 'I am just coming' का प्रयोग किया जाएगा। अर्थात् यहाँ हिन्दी भूतकाल का अनुवाद अंग्रेजी मे अपूर्ण वर्तमान से होगा। 'गिरा' भूतकाल का रूप है किंतु 'लड़का कल गिरा' के अंग्रेजी अनुवाद मे जहाँ एक तरफ इसे भूतकालिक रूप से व्यक्त किया जाएगा वहीं 'बचाओ लड़का गिरा' के अनुवाद में भविष्य काल से।

(११) वाच्य—अनुवाद में कभी-कभी वाक्यों में वाच्य का अंतर भी करना पड़ता है।

All states were despotically ruled.
सभी राज्य स्वेच्छाचारी शासकों के अधीन थे।

+ + +

The national spirit in India was kept alive by congress.
कांग्रेस ने भारत में राष्ट्रीय भावना को जीवित रखा।

(१२) छोड़ना—अनुवाद में कभी-कभी ऐसा भी करना पड़ता है कि स्रोत सामग्री के वाक्य को लक्ष्य भाषा में ले आते समय एक या अधिक शब्द छोड़ देते हैं। इसका मुख्य कारण स्रोत तथा लक्ष्य भाषा में प्रयोगों का अंतर है। वस्तुतः अनुवादक को भाषा के प्रयोग का ध्यान रखना चाहिए न कि इस बात का कि जितने शब्द मूल वाक्य में हों, उतने ही अनुवाद में भी हों। यहां कुछ ऐसे उदाहरण लिए जा रहे हैं :—

Ram *is* not going to day.
राम आज नही जा रहा।
He is returning *back*.
वह लौट रहा है।
भारतीय प्रायः प्रकृति से बहुत धार्मिक होते हैं।
Indians are generally by nature very rellgious.
How far is *it* Ghaziabad to Delhi ?
गाजियाबाद से दिल्ली कितनी दूर है ?
*Right* now I can not say anything.
अभी मैं कुछ नही कह सकता।
I want to buy *a* few things.
मैं कुछ चीजें खरीदना चाहता हूँ।
*At* what time is this lecture ?
यह भाषण किस समय है ?
मुझे ठीक-ठीक पता नहीं है।
I dont know exactly.
in *the* city *of* venice
'वेनिस मे' अथवा 'वेनिस शहर में'
He fired three *rounds of* bullet.
उसने तीन गोलियाँ चलाईं।
Take him *to the* hospital.
उसे अस्पताल ले जाओ।
He is taking *his* meals.

वह खाना खा रहा है।
I have learnt *my* lessons.
मैंने पाठ याद कर लिया है।
He is *a* good man.
वह अच्छा आदमी है।
I have met *a* lot of Bangalis.
मैं बहुत से बगालियो से मिला हूँ।
(३१) जोड़ना—कभी-कभी कुछ जोडना भी पड़ता है :—
बेकार में इतना वक्त वर्बाद हुआ।
A lot of time wasted *to no purpose.*
I *rented* the house to him.
मैंने उसको मकान किराए पर दिया।
उसने तीन गोलियाँ चलाईं।
He fired three rounds of bullet.

यदि स्रोत भाषा को लक्ष्य तथा लक्ष्य को स्रोत मान लें तो छोडने में जो उदाहरण लिए गए हैं वे जोडने के हो सकते हैं।

(१४) अन्य प्रकार के परिवर्तन—अनुवाद में भाषा के सहज प्रयोग के अनुसार वाक्य में कुछ अन्य प्रकार के परिवर्तन भी करते हैं। कुछ उदाहरण हैं :—
what art thou that usurp'st
this time of night,
क्या है तू जो घनी रात पर टूट पड़ा है। (हैमलेट, बच्चन, पृ० २१)
It stalks away.
लबे डग भरते जाता है। (हैमलेट, बच्चन, पृ० २१)
You look pale.
तुम पीले पड़ गए हो। (हैमलेट, बच्चन, पृ० २१)
I will receive it sir with all dilligence of spirit.
श्रीमन् मैं बडी तत्परता के साथ उसे सुनने को प्रस्तुत हूँ। (हैमलेट, बच्चन, पृ० १७६)
I beseech you remember.
मैंने कुछ प्रार्थना की थी, याद है। (हैमलेट, बच्चन, पृ० १७६)
It faded on the crowing of the cock.
जैसे ही मुर्गा बोला वह लुप्त हो गया। (हैमलेट, बच्चन, पृ० २५)
राम यहाँ प्रायः आता है।
Ram is a frequent visitor to this place.

उसके पास नं० २ का पैसा है।
He has black money.
I am very much here.
'मैं यही हूँ।' या 'मैं बिल्कुल यही हूँ।'
He is 25 years old.
'वह २५ का है' अथवा 'वह २५ वर्ष का है।'
His remark is altogether beside the mark.
(उसकी बात निशान के पास ही है)
उसकी बात नितांत अप्रासंगिक है।
Your answer is below the mark.
(तुम्हारा उत्तर अङ्क के नीचे है)
तुम्हारा उत्तर सन्तोषजनक नहीं है।
It is an intresting point.
(यह एक रोचक बिन्दु है)
यह रोचक (बात) है।
The poem reads well.
(कविता अच्छी पढ़ती है)
Tiwari and sons.
(तिवारी और पुत्र)
तिवारी एवं संतति
विराजिए।
Please sit down.
He is about to come.
वह आया चाहता है।
उसने दावत दी।
He threw a party.
big guns.
(बड़ी तोपें)
बड़े लोग
As a matter of fact
(तथ्य के पुद्गल के रूप में)
'सच पूछो तो' या 'वस्तुतः या' 'वास्तविकता यह है कि'
In coure of time.

(समय के पाठ्यक्रम मे)
'धीरे-धीरे' या 'जैसे जैसे समय बीतेगा'
I have not taken any tea today.
(मैंने आज कोई चाय नही ली)
मैंने आज चाय बिलकुल या एकदम नही पी।
I am leaving this evenig.
*मैं आज रात या शाम जा रहा हूँ।*
He had faith in what I said
उसे मेरी बात का विश्वास था।
came across the writings of··
···की रचनाएँ पढने का अवसर मिला।
By the way, your name please.
अच्छा, आपका नाम ?
We do a lot of things for you.
इसके अनुवाद मे 'चीज' नही 'काम' होगा।
He dose not wear a long beared.
वह लबी दाढ़ी नही रखता।
If you ask trury,
सच पूछिए तो······
The train is in motion now.
गाड़ी अब चल रही है।
The Govt. did not know what to do.
सरकार किंकर्तव्यविमूढ हो रही।
Between 7 A. M. and 8 A. M.
पूर्वाह्न मे ७ और ८ के बीच
ठीक है, तो हम चलेंगे।
Fine, then we shall start.
लड़के जाने की जल्दी कर रहे हैं।
लडके जाने की जल्दी मे है।
The boys are in a hurry to leave

When a little over two years ago I approached Maulana Azad with the repuest that he should write his biogrophy.
दो साल मे कुछ अधिक समय हुआ मैंने मौलाना आज़ाद से निवेदन किया किया कि आप अपनी आत्मकथा लिखिए।

**एक वाक्य से अधिक वाक्य अथवा अधिक वाक्य से एक वाक्य**

मूल सामग्री के एक वाक्य का अनुवाद कभी-कभी एकाधिक वाक्यों या अधिक का एक में किया जाता है। उदाहरणार्थ—

Apart from a share to be paid to his nearest surviving relatives, royalties from this book will therefore go to the council for the annual award to two prizes for the best essay on Islam by a non-Muslim and on Hinduism by a Muslim citizen of India or Pakistan.

(नीचे की पुस्तक, पृ० ६)

अतः इस किताब की रायल्टी का एक हिस्सा तो उनके निकटतम जीवित संबंधियों को चला जाएगा और बाकी परिषद् को दे दिया जाएगा। परिषद् इस रकम से प्रतिवर्ष दो पुरस्कार दिया करेगी—एक पुरस्कार तो इस्लाम पर किसी गैर-मुसलमान द्वारा लिखे गये सर्वश्रेष्ठ निबन्ध पर दिया जाएगा और दूसरा हिन्दू धर्म पर भारत या पाकिस्तान के किसी मुसलमान नागरिक द्वारा लिखे गए सर्वश्रेष्ठ निबन्ध पर।

(नीचे की पुस्तक पृ० ग)

As I have already stated, Maulana Azad was not in the bagining very willing to undertake the preparation of this book. As the book progressed his interest grew. (India Wins Freedom—Abul kalam Azad, preface By H. kibir P. 8)

मैं बता चुका हूँ शुरू-शुरू में मौलाना साहब यह किताब तैयार करने का काम उठाने के लिए राजी न थे, पर ज्यों-ज्यों किताब आगे बढ़ी, उनकी दिलचस्पी भी बढ़ती गई। (अनुवाद, महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ० ख)

**साधारण वाक्य के लिए मिश्रित वाक्य**

I advise you go to the doctor.

मेरी सलाह है कि आप डाक्टर के यहाँ जायँ।

इसी प्रकार मिश्रित के लिए साधारण या संयुक्त अथवा संयुक्त के लिए मिश्रित या साधारण भी हो सकता है।

**उपवाक्य के लिए पदबंध**

कभी स्रोत सामग्री के उपवाक्य के लिए लक्ष्य भाषा में उपवाक्य का प्रयोग न करके पदबंध का भी प्रयोग करते हैं। दो उदाहरण है :

I heard what he said—मैंने उसकी बात सुनी।

I have faith in what you say—मुझे आपकी बात पर विश्वास है।

छाया।

ऐसा प्राय: देखा जाता है कि अनुवाद में स्रोत भाषा के वाक्य का प्रभाव लक्ष्य भाषा में किए गए अनुवाद के वाक्य पर पड़ता है, और परिणाम यह होता है कि अनुवाद के ऐसे वाक्य लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुरूप नहीं रह पाते । उदाहरण के लिए—

अंग्रेजी वाक्य—The boy who came yesterday went away.
प्रभावित अनुवाद—वह लड़का जो कल आया था, चला गया ।
ठीक अनुवाद—जो लड़का कल आया था, चला गया ।
अंग्रेजी—By the order of Muncipal Chairman.
प्रभावित—आज्ञा से अध्यक्ष नगरपालिका ।
ठीक—नगरपालिका के अध्यक्ष की आज्ञा से ।
अंग्रेजी—Near Plaza Cinema.
प्रभावित—निकट प्लाज़ा सिनेमा ।
ठीक—प्लाज़ा सिनेमा के निकट ।
अंग्रेजी—Ram said that he will go.
प्रभावित—राम ने कहा कि वह जाएगा ।
ठीक—राम ने कहा कि मैं जाऊंगा ।
अंग्रेजी—He is a good man.
प्रभावित—वह एक अच्छा आदमी है ।
ठीक—वह अच्छा आदमी है ।
अंग्रेजी—I am thinking of going to Madras.
प्रभावित—मैं मद्रास जाने की सोच रहा हूँ ।
ठीक—मेरा विचार मद्रास जाने का है ।

इस प्रकार की छाया से अनुवादक को बचना चाहिए ।

संदर्भ—अनुवादक को वाक्य के शब्दों, वाक्यांशों या वाक्यों का अनुवाद सदर्भ देखकर करना चाहिए । उदाहरण के लिए, I dont mind. का अनुवाद होगा 'मुझे आपत्ति नहीं है' किन्तु वास्तविक प्रयोग में आवश्यक नहीं कि यही अनुवाद ठीक हो । उदाहरण के लिए मान लीजिए राम-श्याम जा रहे हैं । रास्ते में कोई चाटवाला मिल गया । राम ने पूछा—चाट खाओगे ? श्याम ने उत्तर दिया—I dont mind. इसका हिन्दी अनुवाद होगा 'खा लूंगा' न कि 'मुझे आपत्ति नहीं है' । इसका अर्थ यह हुआ कि सदर्भ के अनुसार शब्द का प्रयोग देखना चाहिए । एक दूसरा उदाहरण में । dead का

अनुवाद 'मृत' या 'मरा हुआ' होता है, किन्तु dead slow का अनुवाद 'बिल्कुल धीरे' होगा तो dead season का 'मंदी' या 'मंदी का समय' या dead loss का 'साफ़ घाटा'। इनमें कहीं भी dead 'मृत' या 'मरा हुआ' नही है।

कभी-कभी लक्ष्य भाषा में मिलते-जुलते अर्थ में एकाधिक प्रकार के वाक्य-रूप बनते हैं। अनुवादक को ऐसे वाक्यों के मूल अर्थ, तथा संदर्भ आदि समझकर वाक्य का चयन करना चाहिए। आगे 'अनुवाद और चयन' में ऐसे कुछ वाक्य दिए गए हैं।

## १३

# अनुवाद और रूपविज्ञान

वाक्य रूपों (या पदों) से बनते हैं और अनुवाद में एक भाषा के वाक्यों का रूपांतर दूसरी भाषा में करते हैं। इस तरह अनुवाद में स्रोत भाषा के रूपों या रूप-समुच्चयों के स्थान पर लक्ष्य भाषा के अपेक्षित रूपों या रूप-समुच्चयों को रखते है। इसीलिए रूपविज्ञान का अनुवाद से बहुत सीधा संबंध है। रूपविज्ञान में भाषा-विशेष की रूप-रचना का अध्ययन-विश्लेषण करते हैं तथा तद्विषयक नियमों का निर्धारण करते हैं। अनुवादक लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह स्रोत और लक्ष्य भाषा के की रूप-रचना से भली भाँति परिचित हो, क्योंकि रूप ही वह ईंट (मसाला संयुक्त) है जिससे भाषा के भवन को बनाने वाली वाक्य रूपी दीवार खड़ी होती है।

रूप-रचना का अर्थ है किसी भाषा में मूल शब्दों या धातुओं के आधार पर भाषा में प्रयुक्त होनेवाले विभिन्न रूपों की रचना। हिंदी को आधार माने तथा शब्द-रचना को भी रूप-रचना में सम्मिलित कर लें तो इसके मुख्यत. निम्नांकित प्रकार हो सकते हैं :

(क) प्रत्ययों से शब्दों की रचना। जैसे—

- (१) संज्ञा से विशेषण—क्रोध+ई=क्रोधी
- (२) विशेषण से संज्ञा—सुन्दर+ता=सुन्दरता
- (३) संज्ञा से क्रियाविशेषण—कृपा से कृपया
- (४) विशेषण से क्रियाविशेषण—मुख्य से मुख्यतः
- (५) सर्वनाम से विशेषण—तुम से तुम्हारा
- (६) संज्ञा से क्रिया—जूता से जुतिया (ना)
- (७) क्रिया से विशेषण—सो से सोता या सोया
- (८) क्रिया से क्रियाविशेषण—सो से सोते

(ख) उपसर्ग से शब्दों की रचना जैसे—

- (१) संज्ञा से संज्ञा—वि+भाग=विभाग।

(२) प्रत्यय से विशेषण—वि+ज्ञ=विज्ञ .
(३) विशेषण से विशेषण—सु+विज्ञ=सुविज्ञ ।
(४) संज्ञा से विशेषण—ला+जवाब=लाजवाब ।
(५) संज्ञा से क्रियाविशेषण—आ+जीवन=आजीवन ।
(६) विशेषण से क्रियाविशेषण—दर+असल=दरअसल ।

(ग) समासों से शब्दों की रचना जैसे—
जिलाधीश, राजकुमार

'क', 'ख', 'ग', में दो या तीन के मिश्ररूप भी हो सकते हैं। जैसे—*अव्यावहारिकता ।*

(घ) पुल्लिग रूपो से स्त्रीलिंग रूप। जैसे—लड़का-लड़की, चला-चली, अच्छा-अच्छी, दौड़ता-दौड़ती ।

(ङ) एकवचन से बहुवचन—लड़का-लड़के, चला-चले, दौड़ता-दौड़ते, बड़ा-बड़े ।

(च) मूल रूप से विकृत रूप—लडका-लड़के, अच्छा-अच्छे ।

(छ) सज्ञा तथा सर्वनाम से कारकीय रूपो की रचना। जैसे—'घोडा', से 'घोडे ने', 'घोड़ो पर', 'घोडो', या 'तू', से 'तुम', 'तुझे', 'तुम्हें' आदि ।

(ज) विशेषण के तुलनाबोधक रूप—बेहतर, बेहतरीन, लघुतर, लघुतम, श्रेष्ठ, श्रेष्ठतम ।

(झ) धातु से क्रियारूप। जैसे—
(१) कालबोधक—है, था आदि ।
(२) कृदत—चलता, चला, चलना आदि ।
(३) तिङत—चले, चलूं, चलो आदि ।

स्रोत तथा लक्ष्य दोनो भाषाओ की रूप-रचना तथा शब्द-रचना मे परिचित होना अनुवादक के लिए इसलिए आवश्यक है कि वह उनके आधार पर स्रोत भाषा के चयन को पहचान सकता है, उसके अनुरूप लक्ष्य भाषा से चयन कर सकता है, तथा नवनिर्मित शब्दों या रूपो को पहचान सकता है, और आवश्यक होने पर लक्ष्य भाषा मे नए शब्दों या रूपों का निर्माण कर सकता है।

रूप के क्षेत्र मे चयन के आगे संकेत 'अनुवाद और चयन' में दिए गए हैं।

अनुवादक एक सीमा तक कारयित्री प्रतिभावाला (Creative) भी होता है। यह आवश्यक नहीं कि वह हमेशा उन्ही शब्दो और शब्द-रूपों का प्रयोग

करे जो भाषा में पहले से प्रचलित हों। किसी भाषा-भाषी की तरह ही अनुवादक को भी इस बात का पूरा अधिकार होता है कि वह भाषा की निर्माण शक्ति (Potentiality) का, आवश्यकता पड़ने पर पूरा-पूरा उपयोग करे, लाभ उठाए, नए शब्दों, नए रूपों को बनाए। किंतु वे शब्द, वे रूप ऐसे होने चाहिएँ जो उस भाषा मे ग्राह्य हो सकें। इसके लिए यह आवश्यक होगा कि उस भाषा मे शब्द-रचना और रूप-रचना के नियमों से अनुवादक भलीभाँति परिचित हो। नियमो से सुपरिचित व्यक्ति ने ही जब देखा कि 'प्रभावशाली' शब्द का प्रभाव बहुप्रयोग से कम हो गया तो उसने हिंदी मे नया शब्द 'प्रभावी' बना दिया। नियम से सुपरिचित अनुवादक ने ही पाकिस्तानी घुस-पैठ के समय अंग्रेज़ी 'इनफिल्ट्रेटर' के लिए हिंदी मे उपयुक्त शब्द न मिलने पर 'घुसपैठिया' शब्द गढ लिया, जो 'इनफिल्ट्रेटर' तथा 'इनट्रूडर' के लिए अब प्रयोग में है। किसी अनुवादक ने ही अंग्रेज़ी 'फिल्माइज़' के लिए हिंदी मे 'फिल्माना' शब्द चला दिया। अनुवादक का शब्द-रचना और रूप-रचना का ज्ञान इतना गहरा होना चाहिए कि वह यहाँ तक समझ सके कि क्रोध मे 'ई' 'प्रत्यय' से बनाने वाला विशेषण क्षणिक स्थिति का द्योतक न होकर प्रकृति का द्योतक (क्रोधी) होता है, जब कि 'इत' प्रत्यय से बनने वाला विशेषण (क्रोधित) विशिष्ट समय की मानसिक स्थिति का द्योतक होता है। एक बार रेडियो के एक प्रोग्राम 'पर्यायों की खोज मे' मे श्री रामचन्द्र टंडन, बच्चन जी तथा मैंने अंग्रेज़ी initiative के लिए हिंदी मे पहलकदमी (चहलक़दमी के सादृश्य पर) का निर्माण किया था और अब यह शब्द चल पडा है। To take initiative के लिए 'पहलकदमी करना'। इस प्रकार शब्द-रचना और रूप-रचना का ज्ञान या इसके सिद्धान्त (मुख्यतः स्रोत और लक्ष्य भाषा के) अनुवादक के लिए उपयोगी ही नहीं अनिवार्यतः आवश्यक हैं।

किसी भी भाषा मे रूप-रचना के केवल सामान्य नियम ही नही होते। उसके अपवाद भी होते है। सामान्य व्यक्ति केवल सामान्य नियमो से परिचित होता है, किन्तु अनुवादक को उन अपवादो से भी परिचित होना चाहिए। अन्यथा अर्थ का अनर्थ हो सकता है या गलती हो सकती है। उदाहरण के लिए हिन्दी मे सभी धातुओं मे आ, इ, ए, ई, जोडकर भूतकालिक रूप बनते है—चला, चली, चले, चलीं, पढा, पढी, पढे, पढीं। किंतु कर, दे, ले, जा (किया, की, किए, कीं, दिया, दी, दिए, दीं, गया, गई, गए, गईं) आदि अपवाद हैं। आकारांत पुल्लिंग के रूप ए, ओं, ओ लगाकर बनते हैं : घोड़ा, घोड़े, घोडों, घोडो, किंतु पिता, राजा, मामा, काका, बाबा, लाला, देवता आदि अपवाद हैं। अंग्रेज़ी मे कुछ शब्दों मे बहुवचन के लिए एस (hats, books,

roses) जोड़ते हैं, कुछ में en (oxen, brotheren, यों brathers भी होता है और brotheren तथा brothers में अन्तर है), कुछ में f को v करके जोड़ते हैं (thieves, knives, lives, wolves किन्तु chief, roof, dwarf, safe, hoof, proof अपवाद हैं, इनमे s ही जोड़ा जाता है), o अत में हो तो es जोडते हैं (potatoes, mangoes, Corgoes; पर dynamo अपवाद है, उसमें केवल s जुड़ता है), और कुछ में कुछ भी नही जोड़ते (sheep, cod, deer आदि)। कुछ रूप केवल बहुवचन में आते हैं (News, Politics, thanks, tongs आदि), तो कुछ के दोनों रूप होते हैं पर एकवचन मे एक अर्थ होता है और बहुवचन में दो : Colour, effect, manner, moral, pain आदि। कुछ का एकवचन में एक अर्थ होता है तो बहुवचन में दूसरा: good, force, air, water, iron, wood आदि। हिंदी में सामान्यतः आकारांत विशेषण का ईकारात एकारान्त हो जाता है (अच्छा, अच्छी, अच्छे) किंतु बढ़िया, घटिया, लड़ाका आदि बहुत से विशेषणों का नही भी होता। पुरानी हिंदी में चिड़िया का चिड़ियें तथा इद्रिय का इद्रियें बहुवचन होता था, अब चिड़ियाँ, इद्रियाँ ही होता है। 'तू' का बहुवचन 'तुम' है और 'मैं' का 'हम'। किंतु 'तुम' का तो सर्वदा ही तथा 'हम' का भी कभी-कभी एकवचन में प्रयोग होता है और तब उनके बहुवचम क्रमशः 'तुम लोग' 'हम लोग' या 'तुम सब' 'हम सब' होते हैं। इसी तरह लिंग-रूप तथा अन्य रूपों मे भी अनेक बातें ध्यान मे रखने की है।

निष्कर्षतः अनुवादक को स्रोत भाषा की रूप-रचना और शब्द-रचना की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए ताकि वह मूल सामग्री को ठीक से समझ सके तथा उसे लक्ष्य-भाषा की रूप-रचना तथा शब्द-रचना की भी पूरी जानकारी होनी चाहिए ताकि आवश्यकतानुसार वह नए शब्दों या नए रूपो का निर्माण कर सके तथा अपने प्रयोग में अपवादों से परिचित होकर गलतियों से बच सके।

पुनश्च—

कभी-कभी ऐसा होता है कि स्रोत भाषा में कोई सामान्य शब्द एक लिंग का होता हैं, किंतु लक्ष्य भाषा में उसका प्रतिशब्द दूसरे लिंग का मिलता है। ऐसी स्थिति में अनुवादक को अनुवाद मे लिंग-परिवर्तन कर लेना चाहिए, नही तो अर्थ को ठीक अभिव्यक्ति नही हो पाती। उदाहरण के लिए 'घोड़ा स्वामिभक्त जानवर है' का रूसी में अनुवाद करना हो तो हमें 'घोडा' के लिए 'लोशज' शब्द का प्रयोग करना होगा जो स्त्रीलिंग शब्द है। उसके पुल्लिंग रूप का प्रयोग नही किया जा सकता, क्योंकि हिंदी में जैसे उस जाति

के लिए सामान्य शब्द 'घोड़ा' है उसी तरह रूसी में लोशज है। हिंदी में जैसे 'घोड़ा स्वामिभक्त होता है' में घोड़ी भी समाहित है उसी तरह रूसी 'लोशज' में घोड़ा भी समाहित है। हिंदी में यदि कहें कि, घोड़ी स्वामिभक्त होती है, तो आशय यह होगा कि 'घोड़ा' शायद नहीं होता। इसी प्रकार रूसी में पुल्लिंग के प्रयोग से गड़बड़ी हो जाएगी।

कुछ भाषाओं में (संस्कृत आदि) द्विवचन के रूप अलग होते हैं। जिन भाषाओं में ऐसे रूप नहीं हैं, संख्यावाचक शब्द के साथ बहुवचन रूप रखकर काम चलाना पड़ता है। ऐसे ही कुछ भाषाओं में त्रिवचन के भी रूप अलग होते हैं।

वाक्यविज्ञान में हम देख चुके हैं कि कभी-कभी अनुवाद में स्रोत भाषा के एक व्याकरणिक रूप के स्थान पर लक्ष्य भाषा में दूसरे व्याकरणिक रूप को रखना पड़ता है। जैसे विशेषण के स्थान पर संज्ञा या क्रियाविशेषण आदि।

लिंग-परिवर्तन के कारण कुछ भाषाओं में अर्थ भी परिवर्तित हो जाता है। अनुवादक को इसका भी ध्यान रखना चाहिए। उदाहरणार्थ घड़ा-घड़ी, चींटा-चींटी, पत्र-पत्री, ताला-ताली, नाला-नाली, साला साली (चाचा-चाची की तरह साली साला की बीवी नहीं है, बहिन है), डाक्टर-डाक्टराइन-डाक्टरनी-डाक्टरानी आदि।

१४

# अनुवाद और शब्दविज्ञान

शब्दविज्ञान जैसा कि नाम से स्पष्ट है भाषाविज्ञान की वह शाखा है जिसमे शब्दो का अध्ययन-विश्लेषण होता है। शब्द अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुतम स्वतंत्र इकाई है। अर्थात (१) शब्द भाषा की एक इकाई है, (२) इसका अर्थ होता है, (३) अर्थ के स्तर पर भाषा की यह सबसे छोटी इकाई है। (४) यह स्वतंत्र होता है। इसीलिए अलग से भी शब्द का प्रयोग होता है तथा भाषा को समझने के लिए शब्द-कोश बनाए जाते हैं।

'शब्द' में भाषा की वे सारी मूल इकाइयाँ आती हैं जो सार्थक और स्वतंत्र होती हैं। अर्थात् मूल संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, धातु तथा अव्यय। इन्ही शब्दोमे संबंध-तत्व जोड़कर कारकीय रूप और क्रिया-रूप बनते हैं और रूपो से वाक्य बनता है तथा एक भाषा के वाक्यो का दूसरी भाषा मे अनुवाद किया जाता है। अर्थात् शब्द वह ईंट है जिसे सबध-तत्त्व (प्रत्यय या कारक-चिह्न आदि) के गारे से आपस में जोड़कर वाक्य रूपी दीवार चुनते है और इसी दीवार से भाषा का महल खड़ा होता है। फिर, जब अनुवाद एक भाषा के वाक्यों को दूसरी भाषा के वाक्यो मे रूपातरित करके किया जाता है तो सहज ही अनुवाद और शब्दविज्ञान आपस में बहुत अधिक सबधित है। यह कहना अन्यथा न होगा कि बिना शब्द (विज्ञान) की सहायता के अनुवाद हो ही नही सकता।

शब्दविज्ञान मे शब्द-रचना तथा शब्दो के वर्गीकरण आदि आते हैं। अनुवाद करते समय आवश्यकतानुसार हमे उपसर्ग, प्रत्यय तथा समास आदि के द्वारा नए शब्दो की रचना करनी पडती है तथा पुराने शब्दो को वर्गीकृत करके उन्हे देखना पड़ता है कि किस प्रकार के अनुवाद में किस प्रकार के शब्दो का प्रयोग किया जाय। शब्द-रचना के संबध मे 'अनुवाद और रूपविज्ञान' के अतर्गत सकेत किए जा चुके हैं। यहाँ शब्दों के वर्गीकरण तथा तदनुसार शब्दों के चयन-सबधी कुछ ऐसी बातो को लिया जाएगा जिनसे अनुवाद का संबंध है।

अनुवादक को स्रोत-भाषा के भावों या विचारों को सफलतापूर्वक और सटीक रूप में लक्ष्य भाषा में व्यक्त करने के लिए लक्ष्य भाषा के शब्द-भंडार को वर्गीकृत करके अपने लिए शब्द चुनना पड़ता है। हिंदी आदि भाषाओं के शब्द-भंडार को निम्नांकित आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है:—

(१) इतिहास—इतिहास के आधार पर भारतीय भाषाओं के शब्दों को चार वर्गों में रखा जा सकता है:—

तत्सम—शुद्ध संस्कृत शब्द। जैसे कृष्ण, गृह, दधि, नृत्य।

तद्भव—तत्सम शब्दों से बिगड़कर या विकसित होकर बने शब्द। जैसे कान्ह, घर, दही, नाच। परवर्ती तद्भव या अर्धतत्सम को भी इसी के अंतर्गत मैं रखना चाहूँगा। जैसे चन्दर (चन्द्र), किशन (कृष्ण), सुरेन्दर (सुरेन्द्र), करम (कर्म) आदि।

विदेशी—इसमें तत्सम विदेशी भी आते हैं (जैसे लॉर्ड, सिगनल, फॉर्क, स्टेशन, ज़ुल्म, मर्ज़ी, बाग़, दारोग़ा) और तद्भव विदेशी (लाट, सिगल, काग, टेसन, जुलुम, मरजी, बाग, दरोगा) भी।

देशज—इनमें वे शब्द आते हैं जो उपर्युक्त में किसी में नहीं हैं, जैसे तेंदुआ, थोथा, अटकल, धूम, घूँसा, चूहा, अलबेला आदि।

इतिहास के आधार पर कई परिस्थितियों में अनुवादक को चयन करना पड़ता है। मान लीजिए कोई अनुवादक मौलाना आज़ाद की पुस्तक का अनुवाद कर रहा है तो उसकी भाषा उर्दू की ओर झुकी हुई हिंदुस्तानी रखना उपयुक्त होगा, इसीलिए भरसक उसे विदेशी (अरबी, फारसी, तुर्की) तथा तद्भव से काम चलाना पड़ेगा। अंग्रेजी के बहुप्रचलित शब्द भी आ सकते हैं, किंतु संस्कृत के तत्सम शब्द कम ही आएँगे। अरबी, फारसी, तुर्की शब्द प्रायः अपने तत्सम रूप में आएँगे। तिलक की गीता के हिंदी अनुवाद में तत्सम तथा तद्भव का प्रयोग करेगा। विदेशी का भरसक नहीं करेगा। गांधी जी की किसी पुस्तक का अनुवाद उन शब्दों में होगा जो बोलचाल की हिंदुस्तानी में प्रयुक्त होते हैं। आधुनिक भारत से संबद्ध कोई नाटक या उपन्यास है और उसमें किसी विद्यार्थी, वकील, डॉक्टर या अफसर की बातचीत का हिंदी अनुवाद करना है तो अंग्रेजी शब्द उसमें काफी रखने पड़ेंगे। डॉक्टर 'मेरी पत्नी अस्वस्थ हैं' न कह कर 'मेरी वाइफ बीमार है' कहेगा। वैद्य जी 'मेरी पत्नी अस्वस्थ है' कह सकते हैं। हकीम की बीवी की तबीयत खराब होगी, नासाज भी हो सकती हैं। किसी पंजाबी व्यक्ति की बातचीत में स्वाभाविकता लाने के लिए परवर्ती तद्भव (सुरेन्दर, महेन्दर, शगन, चन्दर)

तथा हिंदी जनता द्वारा समझे जाने वाले पंजाबी शब्द (गल, चंगी, सत्त आदि) अनुवादक के द्वारा प्रयुक्त हो सकते हैं। सीता के लिए 'राजकुमारी' (तत्सम) शब्द चलेगा तो जहाँनारा के लिए शाहजादी (विदेशी)। किसी मुसलमान के मुहँ में 'आदाब-अर्ज' फबेगा तो पंडित जी के मुहँ में प्रणाम या पालागन। नई पीढ़ी का ग्रेजुएट 'हैलो' (अंग्रेजी) कहेगा।

इसी तरह यदि बच्चों के लिए कोई अनुवाद किया जा रहा है तो उसमें प्रयुक्त शब्द-भंडार बोलचाल का (अर्थात् कठिन संस्कृत या कठिन फारसी-अरबी से रहित) होगा, प्रौढ साक्षरों का भी लगभग यही होगा, किंतु कोई अनुवाद सुशिक्षित लोगों के लिए होगा तो उसमें यह बंधन नहीं होगा।

(२) अर्थ—अभिधार्थी—जिनका केवल अभिधार्थ हो।
लक्षणार्थी—जिनका लक्षणार्थ भी हो।
व्यंजनार्थी—जिनका व्यंग्यार्थ भी हो।

शैली-प्रधान साहित्य का अनुवादक इनका ध्यान रखता है। 'वह मूर्ख है', 'वह गधा है', में 'मूर्ख' अभिधार्थी है तथा 'गधा' लक्षणार्थी। 'उसको काम दे रहे हो, वह तो गधा है' में गधा व्यंजनार्थी है। अभिधामूलक अभिव्यक्ति स्थूल और भोंड़ी होती है, अतः शैलीकार उससे यथासाध्य बचता है। लक्षणा-मूलक और व्यंजनामूलक अभिव्यक्ति सांकेतिक, प्रतीकात्मक, सूक्ष्म और पैनी होती है, अतः शैलीकार भरसक उसका ही प्रयोग करना चाहता है।

अर्थ के आधार पर और प्रकार से भी चयन करना पड़ता है। उदाहरण के लिए शृंगार रस के प्रसंग में कृष्ण के लिए मदनमोहन, राधारमण, गोपी-कांत, रसिकबिहारी, किशोरीरमण नाम अधिक उपयुक्त होंगे तो वीर रस के प्रसग मे मुरारी और कंसनिकंदन तथा वात्सल्यरस के प्रसंग में गोपसखा, देवकीनंदन, नंदकिशोर आदि।

(३) ध्वनि—अनुप्रास, वर्ण-मैत्री, ध्वन्यात्मकता की दृष्टि से भी शब्दों का चयन होता है। कोई व्यक्ति सूखे पेड़ का वर्णन कर रहा हो तो

नीरसतरुरिह विलसति पुरतः

की तुलना में

शुष्को वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे

कहना उचित होगा, क्योंकि इससे अर्थ की ध्वनि से समानता है। पहले में विरोध है। यों कुछ लोगों को पहला भी पसंद आ सकता है। 'घंटा बज रहा' की तुलना में 'घंटा टनटना रहा' अधिक समर्थ अभिव्यक्ति है। 'घन घमंड नभ गरजत घोरा' तथा 'कंकण किंकिण नूपुर धुनि सुनि' में तुलसी ने जो

ध्यान रखा है, उसका ध्यान यथासाध्य हर अनुवादक को रखना पड़ेगा ।

(४) तुक—तुकांत छंद में अनुवाद करनेवाले को तुक के आधार पर भी शब्दों का चयन करना पडता है। मान लें ऊपर की पंक्ति में 'बाला' शब्द आ चुका है और दूसरी पंक्ति में 'पुष्पहार' अर्थ का कोई शब्द रखना है, स्वभावतः 'हार' का प्रयोग न करके अनुवादक 'माला' का प्रयोग करेगा । इसी तरह 'विख्यात' के तुक में 'बदनाम', लांछित, कलंकित को छोड़कर 'कुख्यात' चुनना पडेगा । तुकांत अनुवाद में इसके अनेक उदाहरण मिल सकते हैं ।

(५) मात्रा—मात्रा के आधार पर एक, दो, तीन, चार, पाँच आदि मात्रा के शब्द हो सकते हैं । मात्रिक छंद में अनुवाद करने वाले व्यक्ति को यथावसर मात्रा के आधार पर भी शब्द-चयन करना पडता है । ऐसा न करने पर छंद-दोष आ जाता है ।

(६) वर्ण—वर्णों के आधार पर एक, दो, तीन आदि वर्णों के शब्द हो सकते हैं । वर्णिक छंद में अनुवाद करनेवाले को शब्द-चयन में वर्ण-संख्या का ध्यान रखना पडता है ।

(७) प्रयोग—प्रयोग के आधार पर शब्द तीन प्रकार के होते हैं :

सामान्य—जो सामान्य भाषा में प्रयुक्त होते हैं । जैसे घास, अन्न, बाग, फूल, हवा, कागज, घर, रोशनी आदि ।

अर्धपारिभाषिक—जो सामान्य भाषा में तो सामान्य शब्द के रूप में तथा विशिष्ट विषयों में पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयुक्त होते हैं । जैसे धातु (सामान्य भाषा में सोना, चाँदी आदि धातु तथा व्याकरण में क्रिया की धातु) या बोली (सामान्य भाषा में 'बोलना' अर्थ में, भाषाविज्ञान में dialect अर्थ में) ।

पारिभाषिक—जो विशिष्ट विज्ञानों या विषयों में सुनिश्चित अर्थ में प्रयुक्त होते हैं तथा जो सामान्य भाषा में प्राय. नहीं आते । उदाहरणार्थ—भाषाविज्ञान—ध्वनिग्राम, संलिपि, घोषीकरण, क्षतिपूरक दीर्घीकरण, गणित—दशमलव; दर्शन—अद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद ।

वाङ्मय में दो प्रकार की कृतियाँ होती हैं :

(क) शैलीप्रधान या अभिव्यक्तिप्रधान—इनमें उपन्यास, नाटक, कहानी, कविता, ललित निबन्ध आदि आते हैं । इनमें प्रायः सामान्य शब्दों का तथा कुछ अर्धपारिभाषिक शब्दों का प्रयोग होता है। इस श्रेणी की कृतियों का अनुवादक आवश्यकतानुसार इतिहास, अर्थ, ध्वनि, तुक, मात्रा तथा वर्ण के अनुसार वर्गीकृत शब्दों से अपना शब्द-भंडार चुनता है । इस श्रेणी के

अनुवादक को शब्द-चयन में बहुत अधिक श्रम करना पड़ता है।

(ख) तथ्य या सूचना-प्रधान, अथवा वैज्ञानिक या शास्त्रीय—इनमें गणित, भौतिकी, रसायन, जीवविज्ञान, भाषाविज्ञान, व्याकरण, दर्शन आदि की कृतियाँ आती हैं। इनमे सामान्य शब्दों का सामान्य अर्थों मे प्रयोग होता है तथा पारिभाषिक शब्दों का विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ मे। अर्धपारिभाषिक शब्द अपने दोनों प्रयोगों मे आते हैं। इस श्रेणी के अनुवादक के लिए मुख्य समस्या पारिभाषिक शब्दो या अभिव्यक्तियो की होती है। इस दृष्टि से यदि लक्ष्य भाषा सपन्न हो तो अनुवाद में विशेष कठिनाई नही पड़ती।

पारिभाषिक शब्दावली पर आगे अलग से लिखा जा रहा है।

| | |
|---|---|
| × × | मुझे स्वीकार है। |
| वह बोला। | मुझे इनकार नहीं है। |
| वह बोल पड़ा। | मुझे इनकार कब? |
| वह बोल उठा | मुझे इनकार कब है? |
| वह बोल गया | मुझे इनकार कहाँ है? |
| × × | मैंने इसे इनकार कब किया? |

लड़का जो कल पेड़ से गिरा था आज मर गया
जो लड़का कल पेड़ से गिरा था आज मर गया।
वह लड़का जो कल पेड़ से गिरा था आज मर गया।
कल पेड़ से जो लड़का गिरा था आज मर गया।

| | | |
|---|---|---|
| × × | × | |
| वह भी आज आ पड़ा। | मोहन गया। | |
| वह भी आज आ गया। | मोहन चला गया। | इत्यादि |
| वह भी आज आ मरा। | | |

समास-स्तर पर—

| | |
|---|---|
| अयोध्या के नरेश—अयोध्या-नरेश | कुश का आसन—कुशासन |
| पिता की अनुमति—पित्रनुमति | मातापिता—माता और पिता |
| राजा का दरबार—राजदरबार | कपड़े से छान करके—कपड़छन करके |
| राजा का पुत्र—राजपुत्र | घोड़े जैसा मुँहवाला—घुड़मुँहा इत्यादि |

संधि स्तर पर—

| | |
|---|---|
| अति उत्तम-अत्युत्तम | एक-एव—एकैव |
| सप्त ऋषि—सप्तर्षि | प्रथम आशा—प्रथमाशा |
| कुश-आसन—कुशासन | तब ही—तभी |
| यावत् जीवन—यावज्जीवन | प्रथम अध्याय—प्रथमोध्याय इत्यादि |

अनुवादक को चयन पर दो दृष्टियों से विचार करना चाहिए। एक तो यह कि क्या मूल लेखक ने चयन किया है। यदि किया है तो चयन के द्वारा वह क्या कुछ व्यक्त करना चाहता था। दूसरे, जो वह व्यक्त करना चाहता था, उसकी अभिव्यक्ति के लिए लक्ष्य भाषा में चयन की परिधि क्या है? फिर उस पूरी परिधि से अनुवादक को अपना चयन करके अभिव्यक्ति करनी चाहिए। इस प्रकार मूल लेखक के चयन का विश्लेषण करके अनुवादक मूल के अर्थ को अधिक गहराई से समझ सकता है, फिर स्वयं चयन करके मूल के प्रति अपेक्षाकृत अधिक न्याय कर सकता है।

पुनश्च—

ऊपर अनुवाद के प्रसंग मे चयन की बात की गई।

वस्तुतः अनुवाद के लिए प्राप्त सामग्री मुख्यतः दो प्रकार की होती है :

(क) सूचना-प्रधान—इसमें सूचनाएँ होती हैं, या तथ्य होते हैं। गणित, भौतिकी, भूगोल, वाणिज्य आदि से सबद्ध सामग्री इसी वर्ग की होती हैं : इस वर्ग के साहित्य के मूल लेखक या अनुवादक को कोई खास चयन नहीं करना पड़ता।

(ख) शैली-प्रधान—इसमे शैली बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। कविता, उपन्यास, कहानी, ललितनिबंध आदि इसी श्रेणी में आते हैं। शैली की प्रधानता होने से इस वर्ग के साहित्य के मूल लेखक को बडी सतर्कता से चयन करना पडता है। इसीलिए ऐसी सामग्री के अनुवादक के लिए भी चयन आवश्यक हो जाता है।

शैली-प्रधान सामग्री के अनुवादक को दो दिशाओं में चयन का विचार करना पडता है।

मूल सामग्री←अनुवादक→अनुवाद

पहले तो मूल सामग्री को अच्छी तरह समझने के लिए वह उस चयन पर अपनी दृष्टि दौड़ाता है जो रचना के मूल लेखक ने किया होगा। क्योंकि मूल लेखक के चयन का अनुमान लगाए बिना वह अनुवाद के लिए अपेक्षित गहराई से मूल को समझ नहीं सकता। मान लीजिए मूल मे एक वाक्य है—

मोहन बोल उठा।

इसका ठीक अर्थ ऐसे नही जाना जा सकता। यदि अनुवादक यह सोच सके कि मूल लेखक ने 'मोहन बोल पड़ा' 'मोहन बोला' 'मोहन बोल गया' आदि का प्रयोग न करके 'मोहन बोल उठा' का प्रयोग किया है तो उसके सामने 'उठा' का विशेष अर्थ जो 'गया' 'पड़ा' आदि मे नही है, आ सकेगा और तभी वह मूल भाव को ठीक पकड सकेगा।

इसके बाद उसके सामने चयन की दूसरी समस्या आती है, लक्ष्य भाषा में। वह उस भाव के लिए लक्ष्य भाषा मे देखने का यत्न करता है कि कुल कितनी अभिव्यक्तियाँ हो सकती हैं, और फिर उनमे से वह अपने लिए अपेक्षित अभिव्यक्ति का चयन करता है।

इस प्रकार मूल लेखक के चयन पर दृष्टि दौडाकर वह बिल्कुल सटीक अर्थ जानने का यत्न करता है, तो लक्ष्य भाषा में चयन करके अनुवाद मे सर्वोत्तम संभव अभिव्यक्ति ला पाता है।

यह उदाहरण वाक्य के स्तर पर था। ध्वनि, शब्द तथा रूप के स्तर पर भी यही होता है। उदाहरण के लिए 'मिलन' फ़िल्म में सुनीलदत्त नूतन को सिखाता है 'शोर' नहीं 'सोर'। क्या यह श-स का भेद निरर्थक है? कदापि नहीं। इसी प्रकार 'गंगा-जमुना' फिल्म में वैजयंती माला गाती है 'जुलुम भयो'। वह 'जुल्म' नहीं कहती, 'ज़ुलुम' भी नहीं। 'जुलुम' कहती है। यह ध्वनि-परिवर्तन भी निरर्थक नहीं है। गीतकार जानबूझ कर इसका प्रयोग कर रहा है। ध्वनि-चयन के द्वारा वह कुछ कह रहा है। शुद्ध शब्द 'ज़ुल्म' में वह रोमांसोचित सहज अनगढ़ सौंदर्य नहीं है जो 'जुलुम' में है। ऐसे भी 'तुम मूर्ख हो' और 'तुम मूरख हो' एक नहीं है। यहाँ तक ध्वनि की बात थी। शब्द और रूप के आधार पर भी देखा जा सकता है कि चयन मूल लेखक और अनुवादक दोनों ही को पैनी और यथातथ अभिव्यक्ति देने में सहायक होता है।

# अनुवाद और भाषा की सूचना-शक्ति

हर भाषा की सूचना-शक्ति समान नही होती। अनेक विषयों में हम पाते हैं कि एक भाषा की सूचना अधिक सटीक और सूक्ष्म होती है जब कि दूसरी भाषा मे वह स्थूल होती है। उदाहरण के लिए हिंदी वाक्य 'उसने रोटी खाई' मे 'उसने' से यह पता नही चलता कि वह 'पुरुष' है या 'स्त्री', जबकि इसके अंग्रेजी रूपातर मे he या she का प्रयोग होने से इस बात का पता लग जाता है। दूसरी तरफ अंग्रेजी वाक्य He is my uncle से यह पता नहीं चलता कि यह रिश्ता क्या है, क्योंकि 'अंकल' शब्द बहुत स्थूल सूचना ही दे सकता है। इसके विपरीत हिंदी में uncle के स्थान पर चचा, फूफा, मौसा, मामा, ताऊ आदि का प्रयोग होगा और इन शब्दों से रिश्ते का ठीक पता चल जाता है।

स्रोत और लक्ष्य भाषा में, जिस विषय मे सूचना-शक्ति समान नही होती, उसका अनुवाद करने मे अनुवादक के सामने कठिनाई उपस्थित हो जाती है और अनुवादक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि ठीक अनुवाद करने के लिए वह अपेक्षित सूचना संदर्भ से, आस-पास के वाक्यों से या कही से भी एकत्र करे। बिना इसके उसका ठीक अनुवाद नही हो सकता। ऊपर के ही वाक्य 'उसने रोटी खाई' का अनुवाद अंग्रेजी में नहीं किया जा सकता जब तक कि 'उस' के लिंग का पता नही चल जाए। इसी प्रकार He is my uncle का हिंदी अनुवाद तब तक नही हो सकता, जब तक कि uncle का ठीक रिश्ता ज्ञात न हो। और यदि अनूद्य सामग्री से इस तरह की अपेक्षित सूचना नही मिलती और कही अन्यत्र से भी नही मिल पाती तो अनुवादक को अनुमान से अनुवाद करना पड़ता है, जो गलत भी हो सकता है, सही भी। ऐसे अनुवादों मे गलती उन तीनों प्रकारों की हो सकती है, जिनका उल्लेख 'अर्थविज्ञान और अनुवाद' में अन्यत्र किया जा चुका है : अर्थ संकोच (जैसे अंग्रेजी जैस्मिन का हिंदी चमेली), अर्थ-विस्तार (जैसे हिंदी जुही का फारसी यासमीन) तथा अर्थादेश (जैसे अंग्रेजी में 'बूआ' अर्थ मे प्रयुक्त 'आंट' के लिए हिंदी 'चाची')।

इसके विपरीत जिन विषयों में स्रोत और लक्ष्य भाषा की सूचना शक्ति समान होती है अनुवादक को इस प्रकार की कठिनाई नही होती।

१७

# मुहावरों के अनुवाद की समस्या

अनुवाद मे जिन विभिन्न प्रकार की समस्याओं से अनुवादक को जूझना पड़ता है, उनमें एक महत्त्वपूर्ण समस्या मुहावरो के अनुवाद की है। सामान्य शब्दावली के माध्यम से की गई अभिव्यक्ति की तुलना मे मुहावरो के माध्यम से की गई अभिव्यक्ति जितनी अधिक प्रभावशाली तथा व्यंजक होती है, उस का अनुवाद भी उतना ही कठिन होता है।

अनुवाद करते समय स्रोत भाषा मे किसी मुहावरे के मिलने पर अनुवादक का प्रयास सबसे पहले लक्ष्य भाषा मे उस मुहावरे के शब्द तथा अर्थ दोनो ही दृष्टियो से समान मुहावरे की खोज की दिशा में होना चाहिए। स्रोत और लक्ष्य भाषा में कुछ थोडे मुहावरे ऐसे मिल सकते है, जिनमें शब्द और अर्थ (या भाव) दोनों की समानता हो। यह समानता कई कारणों से हो सकती है इनमे सबसे प्रमुख कारण एक भाषा का दूसरे पर प्रभाव है। उदाहरण के लिए मान ले कि कोई अनुवादक अंग्रेजी से हिंदी या हिन्दी से अंग्रेजी मे अनुवाद कर रहा है। अंग्रेजी भाषा ने अनेक अन्य क्षेत्रों की भाँति मुहावरो के क्षेत्र मे भी हिन्दी भाषा को प्रभावित किया हैं, अत यह स्वाभाविक ही है कि दोनो मे अनेक मुहावरे ऐसे है जो शब्द और अर्थ दोनो ही दृष्टियो से समान हैं। उदाहरणार्थ—

अंग्रेजी—To be caught redhanded

हिन्दी—रँगे हाथो पकड़ा जाना

अंग्रेजी—Ups and downs of life

हिन्दी—जीवन के उतार-चढाव

अंग्रेजी—Child' s play

हिन्दी—बच्चो का खेल

अंग्रेजी—Crcodile's tears

हिन्दी—घड़ियाली आँसू, मगरमच्छ के आँसू

हिन्दी—आस्तीन का साँप
फ़ारसी—दस्त अज़ जान शुस्तन
हिन्दी—जान से हाथ धोना
फ़ारसी—कमर बस्तन
हिन्दी—कमर बाँधना
फारसी—अगुश्त ब दन्दाँ
हिन्दी—दाँतो तले उँगली दबाना
फारसी—आब शुदन
हिन्दी—पानी-पानी होना

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रभाव के समान स्रोत के कारण स्रोत तथा लक्ष्य भाषा मे अर्थ तथा शब्द दोनो ही दृष्टि से समान मुहावरे मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए समान स्रोत के कारण निम्नांकित मुहावरे हिन्दी-मराठी, हिन्दी-बँगला तथा हिन्दी-गुजराती आदि मे समान हैं—

फ़ारसी—अंगूर तुर्श शुदन (मूल स्रोत)
हिन्दी—अंगूर खट्टे होना
मराठी—द्राक्षे आंबट होणें
अंग्रेज़ी—grapes are sour.
फारसी—ज़मीन ओ आसमान यक कर्दन (मूल स्रोत)
हिन्दी—ज़मीन आसमान एक करना, आकाश-पाताल एक करना
मराठी—आकाश पाताल एक करणें
अंग्रेज़ी—To throw dust into one's eyes.
मराठी—डोल्यात धूळ फेकणें
बँगला—चोखे धूलो देओया
हिन्दी—आँखों मे धूल झोंकना या फेंकना
अंग्रेज़ी—To build castle in the air (मूल)
*हिन्दी—हवाई किले बनाना*
गुजराती—हवाई किल्ला बाधवा

वस्तुत: आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में संस्कृत, फारसी तथा अंग्रेज़ी से अनेक मुहावरे आए हैं, अत: उनमे शाब्दिक तथा आर्थिक समानता है।

स्रोत तथा लक्ष्य भाषा के मुहावरों मे कभी-कभी शब्द और अर्थ की दृष्टि से ऐसी समानता भी मिलती है जिसके कारण के बारे मे कुछ कहना कठिन

मराठी—आकाश-पाताल चे अंतर
हिन्दी—आकाश-पाताल का अंतर
हिन्दी—आग लगाना
मराठी—आग लावणें
मराठी—तोंड काळे करणें
हिन्दी—मुँह काला करना
हिन्दी—बात का बतगड करना
गुजराती—वातनु वतेसर करवुं
गुजराती—आँख लाल-पीली करवी
हिन्दी—आँख लाल-पीली करना
मराठी—राई चा पर्वत करणें
हिन्दी—राई का पर्वत करना
पंजाबी—अपणे पैरां ते कुहाडी मारना
हिन्दी—अपने पांव पर आप कुल्हाडी मारना
हिन्दी—अंगूठा दिखाना
उड़िया—बूढाआंगुठि देखेइवा
(उड़िया में 'अंगूठा' को 'बूढाआंगुठि' कहते हैं)
मराठी—डाल न शिजणें
हिन्दी—दाल न गलना
उड़िया—हाथ पशु पशु बाहा पशिवा
हिन्दी—उंगली पकड़कर पहुँचा पकड़ना
हिन्दी—गागर में सागर भरना
गुजराती—गागरमां सागर समाववो

स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में अनुवाद करते समय लक्ष्य भाषा में समान मुहावरों की खोज करने में जल्दी नहीं करनी चाहिए। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि लक्ष्य भाषा में स्रोत भाषा के उक्त मुहावरे के लिए एक से अधिक मुहावरे होते हैं, जिनमें एक भाव की दृष्टि से लगभग समान होता है, दूसरा भाव की दृष्टि से पूर्णतः समान होता है तथा तीसरा भाव तथा शब्द दोनों की दृष्टियों में पूर्णतः समान होता है। स्पष्ट ही तीसरा मुहावरा ही अनुवाद के लिए सर्वोत्तम है। उदाहरण के लिए मान लीजिए हिन्दी से गुजराती में अनुवाद किया जा रहा है और हिन्दी में 'गुस्सा पी जाना' का प्रयोग है। गुजराती में लगभग इसी अर्थ में 'क्रोध गळी जवो' का प्रयोग होता है। अनु-

वादक जल्दी में अनुवाद में इसका प्रयोग कर सकता है, किंतु गुजराती में इसी भाव का एक दूसरा भी मुहावरा है, 'गुस्सा पी जवो'। स्पष्ट ही भाव तथा शब्द दोनों ही दृष्टियों से समान होने के कारण अधिक सटीक अनुवाद यह दूसरा ही होगा। किन्तु इस बात से भी अनुवादक को सतर्क रहना चाहिए कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि शब्दसाम्य होने पर भी अपेक्षित भाव-साम्य नहीं है। कभी-कभी समान शब्दावली तथा भाव में कुछ समानता होने पर भी दो भाषाओं के मुहावरे अर्थ में पूर्णतः एक नहीं होते। उदाहरण के लिए—

हिन्दी—चारपाई पकड़ना
मराठी—अंथरुणास खिळणें
(बिस्तर से चिपकना)

दोनों काफी समीप हैं, किंतु हिन्दी मुहावरे का प्रयोग थोड़े बीमार होने पर भी हो सकता है, जबकि मराठी का बहुत अधिक बीमार होने पर। अनुवादक को इन ऊपरी समानता वाले मुहावरों से बचना चाहिए।

इसी तरह अंग्रेजी To build castle in the air का हिन्दी में 'मन के लड्डू खाना' अनुवाद भी हो सकता है किन्तु 'हवाई क़िले बनाना' अधिक अच्छा होगा।

अनुवादक को स्रोत और लक्ष्य भाषा में यदि आर्थिक और शाब्दिक दोनों ही दृष्टियों से समान मुहावरे न मिलें तो अर्थ की दृष्टि से समान तथा शब्द की दृष्टि से लगभग समान मुहावरों की खोज की जानी चाहिए। अनेक भाषाओं में ऐसे मुहावरे मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए :—

हिन्दी—आँखों में धूल झोंकना
गुजराती—आंखमा धूल नाखवी
अंग्रेजी—To add fuel to flame.
हिन्दी—आग में घी डालना
गुजराती—अंगूठो बतावबो (अंगूठा बताना)
हिन्दी—अंगूठा दिखाना
पंजाबी—नेडे ना लगण देणा
हिन्दी—पास न फटकने देना
गुजराती—डोळा काढवा
हिन्दी—आँखें निकालना
हिन्दी—गला भर आना

मराठी—तोंड टाकून देणें

यों मराठी में 'गळा भरून येणें (भरना)' भी होता है।

हिन्दी—उंगली पकड़कर पहुँचा पकड़ना

गुजराती—आंगळी आपता पोंचों पकड़वो (उंगली देते हुए पहुँचा पकड़ना

मराठी—नाक तोंड मुरडणें (नाक मुंह मोड़ना)

हिन्दी—नाक-भौं सिकोड़ना

हिन्दी—जान हथेली पर लेना

मराठी—तळ हातावर शिर घेणें

मराठी—साता समुद्रापलीकडे (सात समुद्र के पल्ली ओर)

हिन्दी—सात समुन्दर पार

बंगला—अमावस्यार चांद

हिन्दी—ईद का चांद

(मूलतः इन दोनों में अन्तर है किन्तु प्रयोगतः ये अर्थ की दृष्टि से समान हैं)

अनुवादक को यदि उपर्युक्त प्रकार के शाब्दिक एवं आर्थिक समानता वाले मुहावरे न मिलें तो शाब्दिक समानता को छोड़, केवल आर्थिक समानता पर ध्यान देने के अतिरिक्त उसके पास कोई और चारा नहीं रह जाता। उदाहरण के लिए हिन्दी में अर्थ-विशेष में 'छठी का दूध याद आना' मुहावरा चलता है। मान लीजिए पंजाबी में कोई व्यक्ति अनुवाद कर रहा है। पंजाबी में यह मुहावरा नहीं है। इस अर्थ में वहाँ 'नान्नी याद आणा' चलता है। इस का अर्थ यह हुआ कि पंजाबी में अनुवाद करने वाले को 'छठी का दूध याद आना' के स्थान पर पंजाबी में 'नान्नी याद आणा' रखना पड़ेगा। हिन्दी में 'नानी याद आना' भी चलता है, अतः पंजाबी से हिन्दी अनुवाद में इस मुहावरे में दोनों स्तरों पर समानता उपलब्ध है। इस प्रकार के आर्थिक समानता वाले मुहावरे काफी भाषाओं में मिल जाते हैं।

हिन्दी—ऊल-जलूल बातें करना

मराठी—अघळ-पघळ बोलणें

हिन्दी—मूसलाधार बरसना

मराठी—आभाळास भोंक पडणें

(आकाश में सेंध पड़ना)

अंग्रेज़ी—*To rain cats and dogs*

मराठी—जीभ मोकळी सोडणें

(जीभ स्वतन्त्र छोड़ना)

हिन्दी—जीभ की लगाम ढीली करना
अंग्रेज़ी—Cock and bull story
हिन्दी—बे सिर-पैर की बात
हिन्दी—अपनी आँख से पूछना
अंग्रेज़ी—To take the evidence of one's eyes
अंग्रेज़ी—apple of discard
हिन्दी—झगडे की जड़
हिन्दी—भगीरथ प्रयत्न
अंग्रेज़ी Herculean effort
उड़िया—आखि रे आखि मिशिबा (आंख से आंख मिलना)
हिन्दी—आँखें चार होना
हिन्दी—आँखें पथराना
उड़िया—आखिरु पाणि मरिबा
(आँख से पानी मरना)
हिन्दी—काला अक्षर भेंस बराबर होना
मराठी—अक्षर शत्रु असणें
अंग्रेज़ी—cast in the same mould
हिन्दी—एक ही थैली के चट्टे-बट्टे होना
हिन्दी—ऊँट के मुँह मे ज़ीरा
अंग्रेज़ी—A drop in the ocean
अंग्रेज़ी—To have on the brain
हिन्दी—......का भूत सवार होना
—...की धुन सवार होना
......की सनक सवार होना
हिन्दी—मन में चोर होना
अंग्रेज़ी—To have no arriere-pensee

यदि स्रोत भाषा के किसी मुहावरे का शाब्दिक और आर्थिक दोनों दृष्टियो से कोई समान मुहावरा लक्ष्य भाषा में न मिले तथा केवल आर्थिक या भाव की समानता वाले मुहावरे की खोज में भी निराश होना पड़े तो अनुवादक स्रोत भाषा के मुहावरे का लक्ष्य भाषा में शाब्दिक अनुवाद करने की बात सोच सकता है, किंतु इसके साथ एक ही शर्त है। उस अनूदित मुहावरे को लक्ष्य भाषा में वही भाव या अर्थ व्यक्त करना चाहिए जो मूल

मुहावरा स्रोत भाषा में कर रहा हो। यदि ऐसा नहीं है तो अनुवाद नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए अंग्रेजी का एक मुहावरा है To put the cart before the horse. इसमे युक्त किसी अंग्रेजी सामग्री का हिन्दी अनुवाद करते समय इसे 'घोड़े के आगे गाड़ी रखना' रूप में अनूदित किया जा सकता है या मराठी 'जिभेचा पट्टा चालू करणें' को हिन्दी 'जीभ का पट्टा चालू करना' या अंग्रेजी Not to know the a b c of को हिन्दी में···'क ख ग घ न जानना' या···'क ख ग न जानना', A fish out of water' का 'जल के बाहर मछली', To lick the boots of···' को किसी के 'जूते चाटना' (यद्यपि इसके लिए तलवे चाटना या सहलाना चलता है) कहा जा सकता है, किंतु To beat about the bush का हिन्दी अनुवाद 'झाड़ी के आस-पास पीटना' नहीं किया जा सकता, और न To find oneself in hot water को हिन्दी मे 'अपने को गर्म पानी में पाना' या हिन्दी 'पानी पानी होना' या 'नौ दो ग्यारह होना' को अंग्रेजी में Nine and two make eleven या To become water water ही किया जा सकता है। इसका आशय यह हुआ कि किसी मुहावरा का शाब्दिक अनुवाद करने के पूर्व इस बात पर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए कि लक्ष्य भाषा में वह हास्यास्पद तो नही होगा और वही भाव दे सकेगा या नहीं जो मूल मुहावरा स्रोत भाषा मे दे रहा है।

स्रोत भाषा में शब्द-अर्थ या केवल अर्थ की समानता वाले मुहावरे न मिलने पर तथा ऊपर कथित कारणों से मुहावरे के शाब्दिक अनुवाद के योग्य न होने पर, अनुवादक के सामने दो ही रास्ते रह जाते हैं : या तो वह मुहावरे मे अनुवाद न कर, सीधी-साधी भाषा में उनका भावार्थ व्यक्त कर दे या फिर उक्त मुहावरे के भाव वाला कोई नया मुहावरा लक्ष्य भाषा मे स्वय गढ ले। इन दोनो मे पहला रास्ता ही अधिक सरल और निरापद होता है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी का एक मुहावरा है जो मूलतः उपमा अलंकार पर आधारित है : dead like a dodo। 'डोडो' एक प्राचीन जतु है जो अब विलुप्त हो चुका है। इस मुहावरे का अर्थ है 'ऐसा मरा हुआ कि फिर जीने की संभावना न हो।' हिन्दी मे इसके समान कोई मुहावरेदार अभिव्यक्ति कम से कम मुझे नही याद आ रही है। 'डोडो की तरह मृत' हिन्दी में नही चल सकता। ऐसी स्थिति मे इसे सीधे शब्दों में 'बिल्कुल ही मर चुका है' या कुछ इसी प्रकार कहना पड़ेगा। अर्थात् अनुवाद मुहावरे में न करके सीधे शब्दों मे करना पडता है। कुछ अंग्रेजी और हिन्दी मुहावरों के हिन्दी

और अंग्रेजी मे इस प्रकार के भावानुवाद यों किए जा सकते हैं :

| | |
|---|---|
| To beat about the bush | विषय से हटकर बोलना या लिखना<br>मुख्य प्रश्न या बात पर न आना |
| To beat black and blue | मारते-मारते नील डाल देना<br>बड़ी बुरी तरह मारना |
| To go to the dogs | बर्बाद हो जाना |
| To pay back in the same coins | जैसे को तैसा देना, जैसे के साथ तैसा व्यवहार करना |

(ईंट का जवाब पत्थर से देना' इसके समान लगता है किंतु वस्तुतः इसमें जवाब 'समान' न होकर 'अधिक' है।)

| | |
|---|---|
| आँख का पानी उतर जाना | To become shameless |
| गधे को बाप बनाना | To flatter a fool for expediency |
| दाँत खट्टे करना | To give a tught fight |
| गाठ का पूरा आंख का अंधा | having a full purse and an empty head |
| पत्थर पर दूब जमना | An impossible phenomenon to occur |
| पानी न मांगना | To die instantly |
| आँखें बिछाना | To give a very cordial welcome |
| पानी से पहले पुल बाँधना | To make preparation to counter an unseen crisis |
| सिर पड़े का सौदा | a matter with no alternative |

अनुवाद मे सबमे अधिक मुहावरों के साथ प्रायः यही करना पड़ता है। कुछ अन्य उदाहरण हैं—

मराठी—उम्बरास फूल येणें
(गूलर का फूल लाना; गूलर के पेड़ में फूल नही लगते)
हिन्दी—असभव कार्य करना
मराठी—पासंगास न पुरणें
(पासग को भी न पूरा करना)
हिन्दी—बहुत कम होना
(ऊँट के मुँह में जीरा होना भी कुछ सदर्भों मे हो सकता है।)

मराठी—रत्नापोटी गारगोटी होणें
(रत्न के पेट में कीचड की गोटी होना)
हिन्दी—अच्छे के घर बुरी सतान होना
पजाबी—रसोई दी इट्ट मोरी लाणा
हिन्दी—अच्छी चीज बुरी जगह लगाना, उच्च कुल के या गुणी के लड़के (या लडकी) से निम्न कुल या दुर्गुणी की लड़की (या लड़के) का सबध करना।
मराठी—अक्काबाईचा फेरा येणें
(अक्काबाई—बुराई की अभिष्ठात्री देवी)
हिन्दी—बहुत बुरी स्थिति आना
अग्रेजी—To have at one's fingers ends
हिन्दी—कठस्थ होना
अग्रेजी—Tooth and nail
हिन्दी—जी-जान से, पूरी शक्ति से
अग्रेजी—To give a blank cheque
हिन्दी—खुली छूट देना

किन्तु, जैसा कि ऊपर सकेतित है, एक दूसरा रास्ता भी, जहाँ सम्भव हो, अनुवादक द्वारा अपनाया जाना चाहिए। अनुवाद का कार्य creative कार्य है और किसी मुहावरे का अनुवाद मुहावरे मे न करके सीधे-साधे शब्दो मे उसे व्यक्त करना उस creativity को क्षति पहुँचाना है। मुहावरे से युक्त अभिव्यक्ति में अर्थ की गहराई, ध्वन्यात्मकता के कारण सामान्य शब्दों की अभिव्यक्ति से अधिक होती है। इसीलिए जब हम अनुवाद में किसी मुहावरे के स्थान पर सीधे-साधे शब्दों का प्रयोग करते हैं तो वह अनुवाद प्राय: मात्र कामचलाऊ होता है। मूल की पूरी अर्थवत्ता अपनी ध्वन्यात्मकता के साथ लक्ष्य भाषा में नही उतर पाती। इस तरह अनुवाद मूल की गहराई तक नही पहुँच पाता। कम से कम मेरे विचार में इसीलिए कुशल अनुवादक को पूरा अधिकार है कि कोई और रास्ता न होने पर स्रोत भाषा के मुहावरे के लिए लक्ष्य भाषा में यदि संभव हो तो व्यजक, सटीक तथा लक्ष्य भाषा की प्रवृत्ति के अनुकूल कोई मुहावरा गढ़ ले। उदाहरण के लिए मान लीजिए हिन्दी मे किसी सामग्री मे मुहावरा आया 'जिस पत्तल मे खाना उसी में छेद करना'। अनुवाद अग्रेजी में किया जा रहा है। अग्रेजी में इसके समान मुहावरा कम से कम मेरी जानकारी मे कोई नहीं है। अनुवादक चाहे तो इसके भाव को

सीधे-साधे अंग्रेजी शब्दों में व्यक्त कर सकता है, किन्तु कदाचित् अधिक अच्छा यह होगा कि वह To blow off a roof that provides shelter या To cut off the hand that feeds जैसा कोई मुहावरा गढ़ ले। ऐसा करने से मूल अभिव्यक्ति की गहराई प्रायः अक्षुण्ण रह जाती है, उसको क्षति नहीं पहुँचती। इसी तरह 'पानी मे रहकर मगर से बैर करना' को अंग्रेजी में To live in Rome and strife with Pope रूप में मुहावरा गढ़ कर व्यक्त किया जा सकता है।

मुहावरों के अनुवाद में एक यह बात विशेष रूप से उल्लेख्य है कि कभी-कभी मुहावरों को अनुवादक पहचान नही पाता और वैसी स्थिति में उनके शब्दों को सामान्य शब्द समझ कर वह सीधे अनुवाद कर देने की गलती कर बैठता है, जिससे अर्थ का अनर्थ हो जाता है, या कभी-कभी अपेक्षित अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। उदाहरण के लिए एक वाक्य है 'कल को वह शैतान मुझे मार बैठे तो कौन जिम्मेदार होगा ?' इसमे 'कल को' वस्तुतः 'भविष्य में' के अर्थ का मुहावरा है। इस बात को न पकड़ सकने के कारण अंग्रेजी मे अनुवाद करने वाला इसे tomorrow रूप में अनूदित करने की गलती कर सकता है। इसी तरह *blod-faced* 'निर्भीक मुख' या 'धृष्टमुखी' या निर्भीक' या 'ढीठ' नहीं है, अपितु 'निर्लज्ज' या 'बेशर्म है'; blue blood 'नीले खून वाला' न होकर 'कुलीन' या 'अभिजात' है, तथा blue book 'नीली पुस्तक' न होकर 'अधिकृत रिपोर्ट' है। वस्तुतः होता यह है कि लोकोक्तियाँ तो प्रायः पानी मे तेल की बूँद की तरह अभिव्यक्ति में अलग रहती हैं, अतः उन्हे अनुवादक सरलता से पहचान लेता है, अतः अनुवाद मे गलती होने की सम्भावना अपेक्षाकृत बहुत कम रह जाती है, किन्तु मुहावरे अभिव्यक्ति मे दूध-पानी की तरह घुले-मिले रहते हैं, अतः उन्हें पहचानना अपेक्षाकृत कठिन होता है। इसीलिए उनके अनुवाद मे गलती होने की सम्भावना अधिक रहती है।

एक बात और। पूरे मुहावरे को एक भाषिक इकाई मानकर अनुवाद करना चाहिए। उदाहरण के लिए *He fell in love with her* का 'वह प्रेम में गिरा उसके साथ' या 'वह उसके साथ प्रेम मे गिरा' अनुवाद नहीं हो सकता। fall in love with एक भाषिक इकाई है, अतः पूरे को एक साथ लेना पड़ेगा, शब्द-शब्द नही, वरना वह शाब्दिक अनुवाद हो जाएगा, जो निरर्थक और हास्यास्पद होगा। इसी प्रकार 'मेरा सर चक्कर खा रहा है' मे 'सर चक्कर खाना' को एक भाषिक इकाई मानकर अनुवाद करना चाहिए। यदि इस वाक्य मे 'सर' 'चक्कर' 'खाना' तीनों को तीन स्वतन्त्र भाषिक इकाइयाँ मानने की गलती कोई अनुवादक कर बैठे तो My head is eating circle जैसा हास्यास्पद और निरर्थक अनुवाद हो जाएगा।

## १८

# लोकोक्तियों के अनुवाद की समस्या

लोकोक्तियाँ प्रायः सभी भाषाओं में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती हैं। किन्तु ये अभिव्यंजना की दृष्टि से जितनी ही सशक्त होती हैं, कुछ थोड़े अपवादों को छोड़कर, अनुवाद करने की दृष्टि से उतनी ही अधिक कठिन होती हैं। अच्छे से अच्छा अनुवादक भी जहाँ सामान्य शब्दों द्वारा की गई अभिव्यक्तियों का किसी भाषा में बड़ी सरलता से अनुवाद कर लेता है, वहाँ लोकोक्तियुक्त अभिव्यक्ति उसके लिए प्रायः टेढ़ी खीर बन जाती है। इसके कई कारण हैं। सबसे बड़ा कारण तो यह है कि एक से अधिक भाषाओं की सामान्य शब्द-आधारित अभिव्यक्ति पर अधिकार पाना (यह अधिकार चाहे अभिव्यक्ति को समझने का हो या अपने भावों को अभिव्यक्त करने का) अपेक्षाकृत सरल होता है, किन्तु लोकोक्ति-आधारित अभिव्यक्ति पर अधिकार काफी कठिन होता है। इन पंक्तियों के लेखक ने प्रयोग करके देखा कि काफी सुशिक्षित व्यक्ति भी पूरी गहराई के साथ केवल अपनी मातृभाषा की लोकोक्तियों को ही समझ पाते हैं तथा केवल उन्हीं का पूरी सार्थकता के साथ प्रयोग कर पाते हैं। इस प्रकार का प्रयोग मैंने उच्चतम कक्षाओं को अंग्रेजी पढ़ाने वाले हिन्दी तथा पंजाबी-भाषी प्राध्यापकों, अहिन्दी प्रदेशों में उच्चतम कक्षाओं को हिंदी पढ़ाने वाले अहिन्दी भाषी प्राध्यापकों, तथा रूस में हिन्दी पढ़ाने वाले उजबेक एवं रूसी-भाषी अध्यापकों के साथ किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि कुछ बहुप्रचलित-लोकोक्तियों को छोड़कर शेष अनेक लोकोक्तियों का ज्ञान सम्बद्ध अध्यापकों को या तो था ही नहीं, या था भी तो बहुत सही या गलत। केवल ऐसे कुछ लोगों को अपवादतः मैंने अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा की लोकोक्तियों से पूरी गहराई के साथ परिचित पाया जो उस भाषा के क्षेत्र में काफी दिनों तक रहते रहे हैं तथा उस भाषा के भाषियों का जीवन ही वे भाषा, समाज, संस्कृति आदि सभी दृष्टियों से जीते रहे हैं। वस्तुतः लोकोक्तियों की जड़ें भाषाविशेष के जीवन और संस्कृति में बहुत गहरी होती हैं। यह कहना असंगत न होगी कि कुछ विशेष शब्दों को छोड़ दें तो भाषा के सामान्य शब्दों की जड़ें लोकोक्तियों की

तुलना में कम गहरी होती हैं। यही कारण है कि अपनी मातृभाषा को छोड़ कर किसी अन्य भाषा के सामान्य शब्दों पर अधिकार पाना जितना सरल है, उसकी लोकोक्तियों पर अधिकार पाना प्रायः उतना ही कठिन है। किसी भी भाषा के मातृभाषियों के जीवन को पूरी तरह जिए बिना उनकी परंपराओं से परिचित हुए बिना उनकी अनेक लोकोक्तियों को ठीक से समझा नहीं जा सकता। हाँ, दो या तीन भाषाओं के क्षेत्रों की सीमा पर रहने वाले व्यक्ति दो या तीन भाषाओं पर प्रायः मातृभाषा जैसा अधिकार रखते हैं, अतः वे अपवादतः उन दोनों या तीनों भाषाओं की लोकोक्तियों से काफी परिचित होते हैं।

इसके साथ-साथ एक काफी बड़ी कठिनाई यह भी है कि एक भाषा से दूसरी भाषा के शब्दकोश तो काफी मिल जाते हैं किन्तु एक भाषा से दूसरी भाषा के लोकोक्तिकोश एकाध अपवादों को छोड़कर प्रायः नहीं हैं, और शब्द-कोशों में, चाहे वे कितने भी बड़े क्यों न हों, लोकोक्तियाँ या तो होती ही नहीं या होती भी हैं तो बहुत कम। ऐसी स्थिति में शब्दों पर आधारित अभिव्यक्तियों के अनुवाद में आवश्यकता पड़ने पर कोशों से सहायता ली जा सकती है, और ली जाती है, किन्तु लोकोक्ति के क्षेत्र में यह द्वार भी प्रायः बंद है।

एक बात और। द्विभाषिक लोकोक्ति कोश बनाना भी कोई सरल कार्य नहीं। इसका प्रमुख कारण यह है कि जहाँ तक शब्दों का प्रश्न है, दो भाषाओं में सत्तर, अस्सी या कभी-कभी नब्बे प्रतिशत तक समानार्थी (एकार्थी न सही निकटार्थी) शब्द मिल जाते हैं, अतः शब्दकोश बनाना सरल है। किन्तु दो भाषाओं की लोकोक्तियों में समानार्थी लोकोक्तियाँ शायद बीस-पच्चीस प्रतिशत से ज्यादा न होंगी। और समानार्थी लोकोक्ति न मिलने पर, किसी अन्य भाषा में शब्दों के माध्यम से किसी अन्य भाषा की लोकोक्तियों को समझा पाना काफी कठिन है—कम-से-कम उन लोकोक्तियों का जो अपनी अर्थवत्ता में बहुत सतही नहीं हैं। 'नौ की लकड़ी नब्बे खर्च' स्तर की लोकोक्तियों को सरलता से समझाया जा सकता है, 'बूढ़ा के मरने का डर नहीं, डर है जमराज के परकने का' स्तर की लोकोक्तियों को भी किसी प्रकार समझा लिया जा सकता है, किन्तु 'करवा कुम्हार का, घी जजमान का, पंडित बोले स्वाहा' स्तर की लोकोक्तियों का तो भाव ही समझाया जा सकता है। ऐसी लोकोक्तियाँ अपनी पूरी अर्थवत्ता के साथ बहुत मुश्किल से समझाई जा सकती हैं। वस्तुतः इस स्तर की लोकोक्तियाँ जीवन में घुल-मिलकर समझी जा सकती हैं, शब्दों के माध्यम से इनका पूरा व्यंग्य समझा पाना कठिन है।

इन्हीं कारणों से लोकोक्तियों का अनुवाद कर पाना काफी कठिन है।

यदि कोई स्रोत भाषा से पूरी तरह परिचित हो तो भी स्रोत भाषा की केवल कुछ प्रतिशत लोकोक्तियों की ही समान लोकोक्तियाँ लक्ष्य भाषा में खोज पाएगा, क्योंकि कुछ प्रतिशत ही समान हो सकती हैं।

इस प्रसंग में यह भी उल्लेख्य है कि लोकोक्तियों के 'वास्तविक अनुवाद' का अर्थ यदि उनके द्वारा व्यक्त सामान्य भाव या विचार को लक्ष्य भाषा में रखना लिया जाय, तो काफी लोकोक्तियों को अनूदित किया जा सकता है, किन्तु सच पूछा जाय, तो लोकोक्तियों की प्रसंग-विशेष में अर्थवत्ता मात्र सामान्य शब्दों द्वारा व्यक्त भाव या विचार से कहीं अधिक गहरी होती है, और वह गहराई लोकोक्ति में ही निहित होती है। यदि हम अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद कर रहे हों और 'Grapes are sour' को 'अंगूर खट्टे हैं' रूप में अनूदित करें तो स्रोत भाषा की लोकोक्ति का अर्थ-बिम्ब बिना बिखरे या खंडित हुए लक्ष्य भाषा में उतर आता है, किंतु Rome was not built in a day को 'उकताए गूलर नहीं पकती' द्वारा पूरी तरह व्यक्त नहीं किया जा सकता। Can the Ethopian change his skin का समानार्थी अनेक स्थानों पर 'कहीं गधा भी घोड़ा बन सकता है' दिया गया है किन्तु इन दोनों का अर्थ-बिम्ब काफी भिन्न है। यह अंग्रेजी लोकोक्ति काफी सतही है, किन्तु 'कहीं गधा······' हिन्दी लोकोक्ति की अर्थवत्ता काफी गहरी है। इसी प्रकार 'Near the church further from heaven' तथा 'चिराग तले अँधेरा' यद्यपि समान समझी जाती हैं और दोनों में व्यक्त विचार भी एक सीमा तक समान है, किन्तु दोनों का सम्पूर्ण प्रभाव एक नहीं है। अंग्रेजी भाषी इस अंग्रेजी लोकोक्ति से जो अर्थबिम्ब ग्रहण करता है, वह ठीक वही नहीं है जो हिन्दी भाषी 'चिराग तले अँधेरा' से ग्रहण करता है।

इन सारी कठिनाइयों के बावजूद अनुवादक को इस समस्या से जूझना ही पड़ता है। उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति प्रेमचन्द का अंग्रेजी या रूसी या किसी अन्य भाषा में अनुवाद कर रहा हो तो इन सारी कठिनाइयों के होते हुए भी प्रेमचन्द द्वारा प्रयुक्त लोकोक्तियों के अनुवाद से उसका पिंड नहीं छूट सकता।

अनुवादक के सामने जब लोकोक्ति के अनुवाद की समस्या आए तो उस का प्रयास सबसे पहले स्रोत भाषा की लोकोक्ति के समान (पूरी अर्थवत्ता या पूरे अर्थबिम्ब की दृष्टि से) लोकोक्ति लक्ष्य भाषा में खोजनी चाहिए। यदि लोकोक्ति अपने भाषा-भाषियों की किसी विशिष्ट सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, भौगोलिक या सामाजिक बात या तथ्य आदि से

सम्बद्ध नहीं है, तथा समान अनुभव या प्रभाव आदि किसी भी कारण से एक से अधिक भाषाओं की सम्पत्ति बन चुकी है, तो बहुत सम्भव है कि स्रोत भाषा में उसी या कुछ अन्य रूप में मिल जाए। जल्दी मे कामचलाऊ अनुवाद करके अनुवाद को आगे नहीं बढ जाना चाहिए। इस प्रकार की समान लोकोक्तियाँ पूरे लोकोक्ति-भंडार की तो कुछ ही प्रतिशत होती हैं, किन्तु बहु-प्रयुक्त लोकोक्तियो मे ऐसी काफी हो सकती हैं।

लोकोक्तियों की यह समानता कई कारणों से हो सकती है :

**(१) आपसी प्रभाव या समान स्रोत के कारण**

ऐसा प्राय: होता है कि विभिन्न भाषा-भाषियों के आपसी सम्पर्क के कारण जब हमारा परिचय भाषा और साहित्य तक बढ़ता है, तो अनेक शब्द, मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ एक भाषा से दूसरी भाषा में चली जाती हैं। उदाहरण के लिए मध्य युग मे फ़ारसी भाषा मुसलमानों के साथ भारत में आई और उससे अनेक लोकोक्तियाँ मूल या अनूदित रूप में भारतीय भाषाओं में आ गईं। इससे एक तरफ तो फारसी और भारतीय भाषाओं मे अनेक लोकोक्तियाँ समान हो गईं, जैसे फारसी-हिन्दी—

फ़ारसी—कोह कन्दन व मूश बरावुर्दन।

हिन्दी—खोदा पहाड़, निकली चुहिया।

फारसी—ब अदाज़े गलीम पा दराज़ कुन।

हिन्दी—तेतो पाँव पसारिए जेती लाबी सौर।

अनेक फ़ारसी लोकोक्तियाँ तो ऐसी हैं जो प्राय: अपने मूल रूप में ही भारतीय भाषाओं में ग्रहण करली गई हैं—

माले मुफ्त दिले बे रहम।

देर आयद दुरुस्त आयद।

तंदुरुस्ती हज़ार नेमत।

इस फारसी प्रभाव से भारतीय भाषाओं, मे आपस में भी, कई समान लोकोक्तियाँ प्रयुक्त होने लगी हैं। उदाहरणार्थ—

फारसी—नीम हकीम खतर-ए-जान।

उर्दू—नीम हकीम खतर-ए-जान।

कश्मीरी—नीम हकीम गव खतरे जान।

हिन्दी—नीम हकीम खतरे जान।

या

फ़ारसी—अक़्लमदारा इशारा काफ़ी अस्त।

हिन्दी—अक्लमद के लिए इशारा काफी।

राजस्थानी—चतर नै इसारा घणो।

या

फारसी—सदा-ए मुल्ला ता मस्जिद।

हिन्दी—मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक।

बगला—मोलार दौड मस्जिद तक।

या

मराठी—स्वतः भिकारी, दाराशी भुभा दरवेश।

हिन्दी—खुद मियां मगन द्वार दरवेश।

आधुनिक काल मे इसी प्रकार अग्रेज़ी का भी भारतीय भाषाओ पर प्रभाव पड़ा है, जिसके कारण एक तरफ तो अग्रेज़ी और भारतीय भाषाओ मे तथा दूसरी तरफ भारतीय भाषाओ मे आपस मे समान लोकोक्तियाँ प्रयुक्त होने लगी हैं। जैसे—

अग्रेज़ी—An empty mind is devil's workship.

हिन्दी—खाली दिमाग शैतान का घर।

अग्रेज़ी—Necessity is the mother of invention.

हिन्दी—आवश्यकता आविष्कार की जननी है।

अग्रेज़ी—One fish infects the whole watar.

हिन्दी—एक मछली सारे तालाब को गन्दा करती है।

अग्रेज़ी—All well that ends well.

हिन्दी—अन्त भला सो भला।

अग्रेज़ी—Forsed labour is better than idlenss.

कश्मीरी—वेहनम्र खोतम्र बेगमरुय जान।

(बैठने से बेगार अच्छी)

हिन्दी—बेकार से बेगार भली।

अग्रेज़ी—It requires two hands to clap.

हिन्दी—एक हाथ से ताली नहीं बजती।

कश्मीरी—अकि अथम्र छ नम्र वज़ान चमर।

अग्रेज़ी—As you sow, so shall you reap.

कन्नड़—बित्तिद्दन्ने बेळे दुको।

हिन्दी—जैसा बोएगा, वैसा काटेगा।

फ़ारसी तथा अग्रेज़ी की तरह सस्कृत भी भारतीय भाषाओं के लिए

लोकोक्तियों का स्रोत रही है, और आज भी हैं—

संस्कृत—अर्धो घटो घोषमुपैति नूनम् ।
हिन्दी—अधजल गगरी छलकत जाय ।
बंगला—आध गगरी जल करे छल-छल ।
तेलगू—निंड कुंड तोणकदु ।
(भरी गगरी छलकती नहीं)
कश्मीरी—छरअय मग्रट छि वजान ।
(खाली मटकी अधिक आवाज़ करती है)
कन्नड़—तुंबिद कोड़ तुकुकुवदिल्ल ।
यह आश्चर्यजनक है कि अंग्रेज़ी में भी ठीक यही लोकोक्ति मिलती है—
Empty vessal makes much noise.
संस्कृत—अति दर्पे हता लंका अति दर्पे च कौरवा:
असमी—अति दर्पे हत लंका
हिन्दी—बहुत घमंड लंका नासे
उड़िया—गतस्य शोचना नास्ति
हिन्दी—बीते का क्या सोचना
संस्कृत—यथा राजा तथा प्रजा
मलयालम—यथा राजा तथा प्रजा
हिन्दी—जैसा राजा वैसी प्रजा

संस्कृत की कुछ लोकोक्तियाँ तो प्रायः अपने मूल रूप में ही भारतीय भाषाओं में मिलती है—

संस्कृत—अल्पविद्या भयंकरी
असमी—अल्पविद्या भयकरी
हिन्दी—अल्पविद्या भयकरी
संस्कृत—यथा राजा तथा प्रजा
हिन्दी—यथा राजा तथा प्रजा
मलयालम—यथा राजा तथा प्रजा

आधुनिक भारतीय भाषाओं ने भी एक दूसरे को लोकोक्ति के क्षेत्र में प्रभावित किया है। विशेषतः हिन्दी का प्रचार-प्रसार अधिक है, अतः उसका अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। हिन्दी की अनेक लोकोक्तियाँ प्राय. अपने मूल रूप में या थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ बंगला, गुजराती,

उड़िया, मराठी, पजाबी आदि अनेक आधुनिक भारतीय भाषाओ मे मिलती हैं। कुछ उदाहरण हैं—

हिन्दी—नाम बडा दर्शन थोडा
बगला—नाम बडा दर्शन थोड़ा
हिन्दी—छोटा मुह वडी बात
बगला—छोटे मुह बडी बात
हिन्दी—घर की मुर्गी दाल बराबर
बगला—घरेर मुर्गी दाल बराबर
हिन्दी—जहाँ न पहुँचे रवि, तहाँ पहुँचे कवि
उड़िया—जहिं न पहचे रबि, तहिं बि पहचे कबि
हिन्दी—अपना हाथ जगन्नाथ।
असमी—आपोन हाथ जगन्नाथ।
असमी—अस्सी की आमदनी चौरासी का खर्च
मराठी—अंशीची प्राप्ति चौऱ्यायशीचा खर्च
हिन्दी—एक और एक ग्यारह होते है।
कश्मीरी—अख ते अख गव काह
(एक और एक ग्यारह होते हैं।)
हिन्दी—दमडी की बुढिया टका सिरमुडाई
तेलगू—दम्मिडी मुश्कु एगानि क्षोरमु।
(दमडी की बुढिया टका सिरमुडाई)
हिन्दी—ऊँट के मुँह मे जीरा
उड़िया—उट मुंह रे जीरा।

इसी प्रकार अन्य भारतीय भाषाओं ने भी हिन्दी तथा दूसरी भाषाओं को प्रभावित किया है। इस तरह भी इस क्षेत्र में समानताएँ बढी हैं। उदाहरण के लिए हिंदी 'कुत्ते की दुम सौ बरस गाड़ो टेढी की टेढी' मूलतः कदाचित् तेलगू की लोकोक्ति 'कुक्क तोक वकर' (कुत्ते की दुम टेढी) पर आधारित है।

अब तक हम लोग विभिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभावों के कारण लोकोक्ति के क्षेत्र में समानता की बात कर रहे थे। देश-विदेश की विभिन्न भाषाओं मे लोकोक्तियो की अनेक समानताएँ ऐसी भी मिलती हैं, जिनके कारण के बारे मे कुछ कहना कठिन है। ये समानताएँ प्रभाव, समान चिंतन या सयोग आदि किसी से भी उद्भूत हो सकती हैं। कुछ उदाहरण हैं—

सस्कृत—अति परिचयादवज्ञा।

अंग्रेजी—Familiarity breeds contempt.
हिन्दी—आप भला तो जग भला
अंग्रेजी—Good mind good find.
कन्नड—ता ओळ्ळेव निददरे जगत्ते ओळ्ळेयु
अंग्रेजी—Every man's house is his castle.
हिन्दी—अपना मकान कोट समान
अंग्रेजी—Pride goeth before a fall.
हिन्दी—घमंडी का सिर नीचा
फारसी—अक्लमदरा इशारा काफी अस्त
अंग्रेज़ी—To the wise a word may suffice.
राजस्थानी—तैरूरी पहली राड
(तैराक की स्त्री पहले विधवा होती है)
मराठी—पोहणाराच बुडतो।
अंग्रेज़ी—Good swimmers are often drowned.
बंगला—कोथाय राजा भोज कोथाय गगाराम तेली
हिन्दी—कहाँ राजा भोज कहाँ गंगुवा तेली
हिन्दी—जल में रहे मगर से वैर।
बगला—जले वास करे कुमीरेर सगे वाद
असमी—नाचिव नाजाने चोताल वेका।
हिन्दी—नाच न जाने आँगन टेढा।
बंगला—'नाच न जानले उठानेर दोष' अथवा 'नाच न जानले उठान बाँका।'

हिन्दी—अधो मे काना राजा।
कश्मीरी—अन्यन मज कोन्य सोदर।
(अधो में काना सुदर)
संस्कृत—दूरतः पर्वताः रम्याः।
तेलगू—दूरपु कोंडलु नुनुपु
(दूर के पहाड़ चिकने होते हैं)
हिन्दी—जाको राखे साइयाँ मार सके ना कोय
कश्मीरी—यसरधि दय, तस क्या परि भय।
संस्कृत—बहुजन गताः तेन पंथा

कन्नड—एदुजन नडेवदु राजपथ

(पाँच व्यक्ति जिस रास्ते पर हैं वही राजपथ है)

तेलगू—कोडि कुपटि लेक पोते तेल्लवारदा ?

(क्या मुर्गे और अगीठी के बिना पौ नही फटती)

हिन्दी—क्या मुर्गा नही बोलेगा तो सवेरा नही होगा ?

हिन्दी—सुनिए सबकी करिए मन की।

असमी—पररपरा शुना, किन्तु निजर मते करा।

हिन्दी—चोर की दाढी मे तिनका।

कश्मीरी—फरि चूरस दारि कोड।

(भूनी मछली के चोर की दाढी मे तिनका)

एक भाषा से दूसरी भाषा मे अनुवाद करते समय स्रोत और लक्ष्य भाषा मे इस प्रकार की समान लोकोक्तियो की खोज की जानी चाहिए।

इस प्रसंग मे अनुवादक के लिए एक अन्य बात का भी ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि शाब्दिक समानता के बावजूद लोकोक्तियो के अर्थ मे अतर होना है। यह ऐसा ही है जैसे हिन्दी-बगला तथा दक्षिण की कई भाषाओ मे 'उपन्यास' शब्द है। किन्तु हिन्दी-बगला मे इसका अर्थ 'उपन्यास' है, जबकि दक्षिण भारत की भाषाओ मे इस का अर्थ है 'भाषण'। ध्वन्यात्मक समानता देखकर अनुवादक ने यदि हिन्दी से कन्नड़ मे अनुवाद करते समय हिन्दी 'उपन्यास' का अनुवाद कन्नड़ मे 'उपन्यास' कर दिया तो अर्थ का अनर्थ हो जाएगा। इसी तरह की गड़बड़ी की सभावना लोकोक्तियों के क्षेत्र में भी होती है। उदाहरण के लिए भोजपुरी की एक लोकोक्ति है 'टेर गिहथिन मॉठा पातर', अर्थात् 'मट्ठा बनाने में यदि कई गृहस्थिनें लग जाएँ तो वह पतला हो जाता है, ठीक नही होता।' तेलगू में कहते हैं 'मदि एक्कुवैते मज्जिग पलुचन' अर्थात् 'आदमी ज्यादा हों तो मट्ठा पतला होता है।' इन दोनो लोकोक्तियों मे ऊपरी स्तर पर काफी साम्य लगता है, किन्तु अर्थतः दोनो भिन्न हैं। भोजपुरी लोकोक्ति का अर्थ है 'ढेर जोगी मठ का उजाड़' जब कि तेलगू लोकोक्ति का अर्थ है 'तीन बुलाए तेरह आए दे दाल मे पानी'। अनुवादक को इन ऊपरी समानताओं से सतर्क रहना चाहिए।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जल्दी में समान लोकोक्ति न मिलने पर अनुवादक उसी भाव की दोतक दूसरी लोकोक्ति से काम चला लेता है। ऐसा तभी करना चाहिए जब यह पूर्ण निश्चय हो जाय कि समान लोकोक्ति लक्ष्य

भाषा में नही है। उदाहरण के लिए मान लें अंग्रेज़ी से हिन्दी में अनुवाद कर रहे हैं और अंग्रेज़ी में Empty vessel makes much noise का प्रयोग है। अनुवादक समान भाव देखकर इसके स्थान पर 'थोथा चना बाजे घना' का प्रयोग कर सकता है, किन्तु वस्तुत 'अधजल गगरी छलकत जाय' लोकोक्ति अधिक उपयुक्त है। यों कुछ क्षेत्रों में 'अधजल ......'लोकोक्ति का प्रयोग 'अयोग्य या अज्ञानी बहुत ज्ञान बघारता है' के लिए भी होता है। इसी प्रकार संस्कृत 'अर्धो घटो घोषमुपैति नूनम्' का अंग्रेज़ी में Shollow brooks are more noisey रूप में भी अनुवाद हो सकता है किन्तु अधिक उपयुक्त होगा Empty vessal makes much noise. तेलगू 'निंडु कुंड तोणकदु' (भरी गगरी छलकती नही) का भी अंग्रेज़ी मे, 'Empty vessal—' तथा हिन्दी में 'अधजल गगरी......'ही उपयुक्त अनुवाद होगा, 'Shallow brooks —' या 'थोथा चना —' नही। कहने का आशय यह है कि 'भाव और शब्द' दोनों की समानतावाली लोकोक्ति केवल भाव की समानतावाली लोकोक्ति की तुलना मे अनुवाद के लिए अधिक उपयुक्त होती है।

अनुवाद की दृष्टि से अगला प्रश्न यह उठता है कि यदि उपर्युक्त प्रकार की समान लोकक्तियाँ स्रोत तथा लक्ष्य भाषा मे न मिलें तो अनुवादक क्या करे ? स्पष्ट ही शब्द और भाव दोनों की समानता वाली लोकोक्ति न मिलने अनुवादक को अपना ध्यान समान भाव वाली लोकोक्ति पर केन्द्रित करना पड़ेगा, यद्यपि इस प्रकार की लोकोक्तियों का अर्थ-बिम्ब स्रोत तथा लक्ष्य भाषा में सर्वदा एक-सा नहीं होता। किन्तु इनके प्रयोग के अतिरिक्त अनुवादक के लिए कोई ग्रोर चारा नहीं होता। इस प्रकार की लोकोक्तियाँ विभिन्न भाषाओं मे काफी मिल जाती हैं। कुछ उदाहरण लिए जा सकते हैं—

अंग्रेज़ी—A bad carpenter quarrels with his tools.
हिन्दी—नाच न जाने आँगन टेढ़ा
अंग्रेज़ी—Traitors are the worst enemies
हिन्दी—घर का भेदी लंका ढावे
अंग्रेज़ी—killing two birds with one stone.
हिन्दी—एक पथ दो काज
हिन्दी—अन्धे के आगे रोए, अपना दीदा खोए
अंग्रेज़ी—Throwing pearl before a swine.
अंग्रेज़ी—Out of sight, out of mind.
हिन्दी—आँख ओट पहाड़ ओट

अंग्रेज़ी—Every dog has his day.
हिन्दी—कूड़े के दिन भी फिरते हैं।
हिन्दी—कहीं बूढ़े भी तोते पढ़ते हैं ?
अंग्रेज़ी—Can you teach on old woman to dance ?
अंग्रेज़ी—Let us see which way the wind blows ?
हिन्दी—देखें किस करवट ऊँट बैठता है ?
संस्कृत—दूरतः पर्वताः रम्याः
फारसी—आवाज़े दुहुल अज़ दूर खुश मी नुमायद
तमिल—समयक्कोदु मातु साविरक्कायितु
हिन्दी—नौ नकद न तेरह उधार
अंग्रेज़ी—One bird in hand is better than three in the bush.
राजस्थानी—सात मामाँ रो भाणजो भूखो मरै।
भोजपुरी—दू घर क पहुना कि खात-खात मरे कि भुक्खन मरे।
पंजाबी—दुनियाँ मनदी ज़ोरा नूँ।
हिंदी—जाकी लाठी वाकी भैंस।
हिन्दी—ढाक के तीन पात।
तेलगू—गोर्रे तोक बेत्तेड़े। (भेड़ की पूँछ हमेशा एक बित्ते की होती है)
हिन्दी—साच को आंच कहाँ ?
कश्मीरी—पजिस छु ने ज़वाल। (सत्य का पतन नहीं होता)
हिन्दी—आँख का अंधा नाम नयनसुख।
गुजराती—पेटमा पावरू पाणी नहि ने नाम दरियावखा।
मराठी—नाम सोनुबाई हाती कथलाचा वाला नाही।
असमी—चकुटो फुटा, नाम है छैं पद्मलोचन।
तेलगू—कूचुटे लेव लेडु पेरु बलरामुडु (बैठ जाने पर स्वयं उठ नहीं
सकता, किंतु नाम है बलराम)
अंग्रेज़ी—It is no use crying over spilt milk.
हिन्दी—अब पछताए होत क्या, जब चिड़ियाँ चुग गई खेत।
अंग्रेज़ी—Like father like son
Like tree like fruit.
भोजपुरी—जइसन माई ओइसन धीया।
जइसन कोहर ओइसन पीया।

राजस्थानी—ईस ज्या पाया, रांड जिसा जाया

(जैसी पट्टी (पलग के) वैसे पाए, जैसी स्त्री वैसी संतान)

अंग्रेजी—Everybody's business is nobody's business.

हिन्दी—साझे की हांडी चौराहे पर फूटे।

हिन्दी—कभी घी घना, कभी मुट्ठी चना, कभी वह भी मना।

बगला—एक दिन रूटि, एक दिन दाँत चिरकुटि।

संस्कृत—बह्वरभे लघुक्रिया।

अंग्रेजी—Barking dogs seldom bite.

असमी—यत गर्जे तत न बर्षे।

अंग्रेजी—A drop in the ocean.

हिन्दी—ऊँट के मुंह में जीरा।

असमी—एक थाली आजात एटा जालुक।

(एक हंडा कढी मे एक दाना मिर्च)

तेलगू—कुक्कनु पिलिचे दानि कटे एत्ति
वेयुट मचिदि (कुत्ते को बुलाने की अपेक्षा स्वय मल को साफ़ कर लेना अच्छा है।)

हिन्दी—आप काज महाकाज।

उड़िया—जेहि पद्म तहिं भ्रमर

हिन्दी—जहां गुड़ होगा, वही चीटे होंगे।

कश्मीरी—चूठिस वुछिथ चूठ रग रटान।

(सेब को देखकर सेब रग पकड़ता है)

हिन्दी—खरबूजे को देखकर खरबूजा रग बदलता (या पकड़ता) है।

अंग्रेजी—Boys make boys.

फ़ारसी—जबान-ए खल्क नक्कारए खुदा।

कश्मीरी—यि लूख वनन तिय छु पोज।

(जो लोग कहे वही सच है)

अंग्रेजी—Health is wealth.

हिन्दी—एक तदुरुस्ती हज़ार न्यामत।

हिन्दी—आप भला तो जग भला।

तेलगू—नोरू भचिदेते उरु मचिदि।

(यदि मुह अच्छा हो तो गाँव अच्छा)

हिन्दी—बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद।

कश्मीरी—गर मसाह् ज़ानि वान्दगानुक स्वाद ।
(गधा क्या जाने केसर का स्वाद)
कन्नड़—बेंढदुव सिरि मोळकदल्ले काणुते ।
हिन्दी—होनहार बिरवान के होत चीकने पात ।
पूत के पाँव पालने में पहचाने जाते हैं ।
तेलगू—पुत्तु पुट्टगाने परिमलिस्तुदि ।
(फूल जन्म के साथ ही महकने लगता है)
अंग्रेज़ी—A figure among cyphers.
हिन्दी—अन्धों में काना राजा ।
कन्नड़—कुरुडरल्लि मेल्लु कण्णे श्रेष्ठ ।
तेलगू—काकि पिल्ल काकिकि मुद्दु ।
(कौवे का बच्चा कौवे को लाड़ला)
हिन्दी—अपना पूत सबको प्यारा ।
अंग्रेज़ी—Union is strength
हिन्दी—एक और एक ग्यारह होते हैं ।
हिन्दी—नया मुल्ला दिनभर नमाज़ पढ़ता है ।
तेलगू—नडुमतरपु वैष्णवानिकि नामालु मेंडु ।
(नया वैष्णव खूब तिलक लगाता है)
अंग्रेज़ी—Cut your coat according to your cloth.
कन्नड़—हासिगे इद्दष्टे कालु चाचु ।
हिन्दी—तेतो पाँव पसारिए जेती लाँबी सौर ।
हिन्दी—कोई भी अपने दही को खट्टा नहीं कहता ।
अंग्रेज़ी—Every potter praises his own pot.
असमी—उल्टा चोरे गिरिक बान्धे । (उल्टा चोर गृहस्वामी को बाँधे)
हिन्दी—उलटा चोर कोतवाल को डाँटे ।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि स्रोत भाषा की किसी एक लोकोक्ति के भाव को लक्ष्य भाषा में एक से अधिक अभिव्यक्तियाँ होती हैं । ऐसी स्थिति में अनुवादक को सावधानी से चयन करना चाहिए । उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी Bringing coal to Newcastle के लिए हिन्दी में 'उल्टी गंगा बहाना' की तुलना 'उल्टे बाँस बरेली को' लोकोक्ति अधिक उपयुक्त होगी । इसी प्रकार कश्मीरी 'मागि शीन केतुन' (माघ में बर्फ बेचना) के लिए 'उल्टे बाँस बरेली को' की तुलना में 'उल्टी गंगा बहाना' अधिक उपयुक्त होगी । (यों इन

का सामान्यतः प्रयोग मुहावरे के रूप में होता है) ऐसे ही अंग्रेजी Familiarity breeds contempt के भाव की अभिव्यक्ति हिन्दी में 'घर की मुर्गी दाल बराबर' लोकोक्ति भी करती है किन्तु 'घर का जोगी जोगना आन गाँव का सिद्ध' में 'जोगना' contempt के अधिक समीप है, अतः यह दूसरी लोकोक्ति अनुवाद के लिए अधिक उपयुक्त है। यों यदि संस्कृत की लेना चाहे तो 'अति परिचयादवज्ञा' और भी उपयुक्त होगी। अंग्रेजी में Too many cooks spoil the broth. के लिए 'ढेर जोगी मठ का उजाड' हिन्दी में चलती है, किन्तु भोजपुरी लोकोक्ति 'ढेर गिहथिन मंठा पातर' खान पान के सम्बद्ध (समान वातावरण) होने के कारण उसके अधिक निकट है। राजस्थानी मे 'घणी दायाँ जापै रो नाम करै' (बहुत दाइयाँ जच्चे का नाश करती हैं) लोकोक्ति चलती है, जो समान भाव की होने पर भी वातावरण की दृष्टि से केवल कामचलाऊ ही मानी जा सकती है।

अनुवादक के सामने सबसे कठिन समस्या तब आती है जब उसे स्रोत भाषा की किसी लोकोक्ति के लिए लक्ष्य भाषा में न तो शब्द और भाव की समानतावाली लोकोक्ति मिलती है, और न केवल भाव की समानता वाली। अर्थात् ऊपर उल्लिखित दोनों वर्गों में किसी प्रकार की नहीं मिलती। ऐसी स्थिति में उसके सामने तीन ही रास्ते रह जाते हैं: (१) लोकोक्ति का शब्दानुवाद करदे, (२) लोकोक्ति का भावानुवाद कर दे, अथवा (३) लोकोक्ति के अथवा भाव को व्यक्त करने वाली कोई लोकोक्ति गढ़ लें। इन तीनों को आगे अलग-अलग लिया जा रहा है।

शब्दानुवाद

स्रोत भाषा की लोकोक्ति का शब्दानुवाद केवल वही किया जा सकता है, जहाँ उस अनुवाद से लक्ष्य भाषा-भाषी वही अर्थ ग्रहण करे जो स्रोत भाषा-भाषी स्रोत भाषा की लोकोक्ति से ग्रहण करते हैं। उदाहरण के लिऐ मान लीजिए मराठी से हिन्दी अनुवाद किया जा रहा है। अनूद्य सामग्री में मराठी लोकोक्ति आई 'जो चढ़ेल तोच पडेल' और हिन्दी में समान अर्थ वाली लोकोक्ति नहीं मिली, तो 'जो चढ़ता है सो गिरता है' रूप में अनुवाद कर देने में हानि नहीं है। हाँ अच्छा यह हो कि जो अनुवाद किया जाय वह लोकोक्ति-सा लगे। असमी में एक कहावत है 'अजात गछर विजात फल'। इसका अर्थ है 'जो पेड़ अच्छी जाति का न होगा, उसका फल भी बुरा होगा।' हिन्दी में इसकी समानार्थी लोकोक्ति नहीं है। इसका सरलता से लोकोक्ति-अनुवाद

किया जा सकता है 'जैसा पेड़ वैसा फल'।

एक बार मैं रूसी से अनुवाद कर रहा था। रूसी सामग्री में एक लोकोक्ति मिली 'बेस बोगा शीरे दरोगा' (अर्थात् बिना भगवान् के रास्ता चौड़ा होता है। इसका आशय यह है कि भगवान् मे विश्वास न रखने पर जीवन का रास्ता आसान हो जाता है) हिन्दी मे इसके समानातर कोई लोकोक्ति मिलने का प्रश्न ही नही उठता। अन्त मे मैंने इसका लोकोक्तिवत् अनुवाद—जो प्रायः शब्दानुवाद ही है—किया : 'बिना भगवान् रास्ता आसान'। अग्रेजी की एक लोकोक्ति है A man is known by the company he keeps. हिन्दी में इसे 'मनुष्य अपनी सगत से पहचाना जाता है' रूप मे रखा जा सकता है। हिन्दी मे कुछ अन्य भाषाओं की लोकोक्तियो के लोकोक्तिवत् शब्दानुवाद इस प्रकार हो सकते है—

असमी—थान हराले मान हराय।
(स्थान खो देने पर मान भी समाप्त हो जाता है)
हिन्दी—स्थान से गिरा, मान से गिरा।
असमी—आकाशलै थुइ पेलाले मुखत परे।
हिन्दी—आकाश पर थूके, मुँह पर पड़े।
असमी—रामर खाय, रावणर गीत गाय।
हिन्दी—राम का खाए, रावण का गीत गाए।
सस्कृत—कान्ता रूपवती शत्रु।
हिन्दी—सुन्दर पत्नी जी का जजाल।
असमी—विडाली चाले बाघ चाब नालागे।
(बिल्ली को देख लो तो बाघ को देखने की आवश्यकता नही)
हिन्दी—बिल्ली को देखा तो बाघ को भी देख लिया।
अग्रेज़ी—Do evil and look for like.
हिन्दी—कर बुरा, पा बुरा।
फ़ारसी—हर जा के गुलस्त खारस्त।
हिन्दी—जहाँ फूल, तहाँ काँटा।
फारसी—अज़ दीदा दूर, अज़ दिल दूर।
हिन्दी—आँख से दूर दिल से दूर।
अंग्रेजी—No living man, all thigs can.
हिन्दी—दुनियाँ के सब काम, किसने किया तमाम।
अग्रेजी—All that glitters is not gold.

हिन्दी—हर चमकती चीज सोना नहीं होती ।
अंग्रेज़ी—Angry man is seldom at ease.
हिन्दी—क्रोधी को चैन कहाँ ?
अंग्रेज़ी—Who looks not before finds himself behind.
हिन्दी—जो न देखे अगाडी, सदा रहे पिछाड़ी ।
अंग्रेज़ी—Chains of gold are stronger than chains of iron.
हिन्दी—सोने की जंजीर लोहे की जंजीर से मजबूत होती है ।
अंग्रेज़ी—The coin most current is flattery.
हिन्दी—सबसे चलता सिक्का खुशामद है ।

भावानुवाद

शब्दानुवाद ठीक न बैठने पर अनुवादक को भावानुवाद करना पड़ता है। सच पूछा जाय तो अनुवाद करने में सबसे अधिक लोकोक्तियों के साथ प्रायः यही करना पडता है, क्योंकि बहुत कम लोकोक्तियों का भाषांतर उपर्युक्त पद्धतियों में किसी एक द्वारा किया जा सकता है। अनुवादक यदि भाव को गद्यात्मक शब्दावली में न रखकर लोकोक्ति रूप में रख सके तो अधिक उपयुक्त होता है। असमी की एक लोकोक्ति है—

कमारे कि जाने दुखितर लो,
यमे कि जाने एकेटि पो ।

अर्थात् न तो लुहार गरीब के लोहे की परवा करता है और न मौत विधवा के अकेले पुत्र की । हिन्दी में—

एक का दुख, दूसरा क्या जाने ।

रूप में इसे रूपांतरित किया जा सकता है । कुछ अन्य उदाहरण हैं—
संस्कृत—लोभः पापस्य कारणम् ।
हिन्दी—शब्दानुवाद : लोभ पाप का कारण है ।
भावानुवाद : लोभ पाप का बाप (लोकोक्तिवत्) ।
अंग्रेज़ी—Diet cures more than the Doctors.
हिन्दी—पथ्य सबसे बड़ा डाक्टर है ।
अंग्रेज़ी—Abstinence is the best regimen.
हिन्दी—परहेज सबसे अच्छा नुस्खा है ।
अंग्रेज़ी—Adversity flatters no man.

हिन्दी—भाग्य गई, दोस्त गए।

अंग्रेजी—When a thing is done, advice comes too late.

हिन्दी—होनी थी सो हो चुकी, सोच करे अब क्या ?

अंग्रेजी—Bare words buy no barley.

हिन्दी—सिर्फ़ बातों से काम नहीं चलता।

अंग्रेजी—Beads along the neck and the devil in the heart.

हिन्दी—गले में माला, दिल में काला।

अंग्रेजी—Business is the salt of life.

हिन्दी—काम, जीवन की जान।

**लोकोक्ति के भाव को व्यक्त करनेवाली नई लोकोक्ति**

अनुवादक को इस पद्धति का अनुसरण बहुत ही कम, कोई अन्य रास्ता बिल्कुल ही न मिलने पर, करना चाहिए। उदाहरण के लिए अंग्रेजी की एक लोकोक्ति है—

Blood is thicker than water.

इसकी सामानान्तर लोकोक्ति हिन्दी मे है या नही कहना कठिन है। कम से कम मुझे इस समय स्मरण नही आ रहा है। इसका अनुवाद 'खून पानी से गाढ़ा होता है' हिन्दी-भाषी जनता के मन मे स्रोत भाषा का अर्थ-बिम्ब उभारने मे असमर्थ है। इसका अर्थ देने वाली हिन्दी मे नई लोकोक्ति बनाई जा सकती है 'अपने अपने, गैर गैर' या 'अपने और गैर में बड़ा फर्क है।' हिन्दी लोकोक्ति 'टके की हँडिया गई कुत्ते की जाति पहचानी गई' की अंग्रेजी में कोई समानान्तर लोकोक्ति नही हैं। इन्ही शब्दो को अंग्रेजी मे अनूदित करने से भी बात नही बनेगी। ऐसी स्थिति मे अंग्रेजी मे अनुवाद करनेवाला समान भाव की नई लोकोक्ति बना सकता है। अंग्रेजी मे 'Close sits my shirt, but closer my skin' या 'Hope is a good breakfast but is a bad supper' आदि सैकड़ों ऐसी लोकोक्तियाँ हैं, जिनके लिए हिन्दी अनुवादक को शायद यही रास्ता अपनाना पड़ेगा। इसी प्रकार हिन्दी की 'दान की बछिया के दाँत नही देखे जाते' या 'तीन कनौजिया तेरह चूल्हे' आदि अनेक लोकोक्तियो के अंग्रेजी आदि यूरोपीय भाषाओ मे अनुवादक को भी कदाचित् इसी पद्धति का सहारा लेना पड़ सकता है।

हर भाषा में कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी भी होती हैं, जिनमें सामान्य लोकोक्तियों की व्यजना या उनका चुटीलापन नही होता। वे सामान्य कथन होती हैं। हिन्दी में खेती, मौसम, शकुन तथा जाति सम्बन्धी ऐसी अनेक लोकोक्तियाँ

हैं। घाघ और भड्डरी की काफी कहावतें इस श्रेणी की हैं। इनमें कुछ का किसी भी रूप में सीधे अनुवाद (जो लक्ष्य भाषा में बोधगम्य हो) असम्भव है। इन को केवल विस्तार से अनूद्य सामग्री के मूल पाठ में, पादटिप्पणी में या परिशिष्ट मे समझाया जा सकता है। उदाहरण के लिए हिन्दी की

अद्रा चौथ, मघा पंचक।

(आर्द्रा नक्षत्र बरसता है, तो आर्द्रा, पुनर्वस, पुष्य और श्लेषा ये चारों नक्षत्र बरसते हैं। यदि मघा बरसता है तो मघा, पूर्वा, उत्तरा, हस्त और चित्रा ये पाँचो नक्षत्र बरसते हैं।)

*सिंह गरजे, हथिया लरजे।*

(सिंह नक्षत्र मे गरजने से हस्त से वर्षा धीमी होती है।)

मघा, भूमि अघा।

(मघा की वृष्टि से पृथ्वी अघा जाती है।)

आदि इसी वर्ग की हैं।

१६

# काव्यानुवाद

यों तो काव्य में उपन्यास, कहानी, नाटक आदि भी समाहित है, किन्तु यहाँ 'काव्य' शब्द का प्रयोग 'कविता' अर्थ में किया जा रहा है।

कविता के अनुवाद को लेकर काफी विवाद रहा है। बहुतों की धारणा यह रही है कि कविता का अनुवाद हो ही नही सकता। मुख्यत: काव्यानुवाद को ही दृष्टि मे रखकर इस प्रकार की बाते कही गई है—

(१) All translations seems to me simply an attempt to solve an unsolvable problem. —Humboldt

(२) It is useless to read Greek in translations. Translators can but offer us a vague equivalent. —Virginia Woolf.

(३) There is no such thing as translation. —May

(४) Traduttori traditori (अनुवादक वचक होते हैं)

—एक इतालवी कहावत

(५) The flowering moments of the mind drop half their petals in speech and 3/4 in translation.

(६) Nothing which is harmonised by the bond of Muses can be changed from one language to another without destroying its sweetness—Dante.

(७) Translation of a literary work is as tasteless as a stewed strawberry—H. de Forest Smith.

(८) Translaion is meddling with inspiration—Showerman,

(९) Ideas can be translated but not the words and their associatians—Sydney.

वस्तुत: कविता का अनुवाद करना बहुत कठिन तो है, किन्तु वह असभव है, यह नही कहा जा सकता। विश्व में अब तक कई हजार कविताओं के अनुवाद हुए हैं। इन अनुवादों को एकदम अनधिकृत अथवा अग्राह्य मानकर अस्वीकार नहीं कर सकते। इस समय भी ऐसे अनुवाद हो रहे हैं, और आगे

भी होते रहेंगे। ऐसी स्थिति में, जो हो चुका है, हो रहा है, भविष्य में भी होता रहेगा, उसे कैसे कह दें कि नहीं हो सकता।

हाँ, यह अवश्य है कि कविताओं के बहुत कम ही अनुवाद मूल का पूरी तरह—कथ्य और कथन-शैली दोनों दृष्टियों से—प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु हम यह कब कहते हैं कि मूल कविता और उसका अनुवाद दोनों एक हैं, या दोनों में अभिव्यक्ति और कथ्य की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। अन्तर तो होता ही है। आखिर एक मूल और दूसरा अनुवाद जो ठहरा। और अगर हम यह मानकर चले कि मूल मूल है और अनुवाद अनुवाद, अतः दोनों पूर्णतः समान नहीं हो सकते, तो फिर यह मानने का प्रश्न ही नहीं उठता कि काव्यानुवाद सम्भव नहीं है। जो लोग काव्यानुवाद की असंभाव्यता के प्रति विश्वासी हैं, वे कदाचित् यह देखकर असमव होने की बात करते हैं कि प्रायः अनुवाद मूल की बराबरी नहीं कर पाता। यदि ऐसा है तो वह तो सचमुच ही नहीं कर पाता, और कर भी नहीं सकता। आखिर एक मूल है और दूसरा उसका रूपांतर।

*गर्ज यह कि काव्यानुवाद—जो किसी कविता का यथासंभव निकटतम* समतुल्य होता है, ठीक मूल हो नहीं होता—हो सकता है, किया जा सकता है। यह बात दूसरी है कि कभी तो वह मूल के काफी निकट पहुँच जाता है, कभी दूर रह जाता है, और कभी काफी दूर। वैसे तो किसी भी रचना का अनुवाद सरल नहीं होता, किन्तु कविता का इसलिए और भी कठिन होता है कि कई बातों मे कविता अन्य रचनाओं से अलग होती है, इनमे से कुछ वे तत्त्व होते हैं जो अन्य में नहीं होते, और जिन्हें अनुवाद मे ला पाना काफी कठिन होता है। यहाँ कुछ इस प्रकार के तत्त्वों पर विचार किया जा रहा है।

इस प्रसग मे सबसे बड़ी बात यह है कि कविता जो कुछ प्रभाव पाठक या श्रोता पर डालती है वह न तो अकेले कथ्य (content) का होता है, न अकेले कथन या अभिव्यक्ति (expression) का। वह दोनों का ही योग होता है। और ये दोनों भी एक सीमा तक एक दूसरे पर आश्रित होते हैं—गद्यानुवाद की तुलना में बहुत अधिक। कथ्य की विशिष्टता विशिष्ट अभिव्यक्ति पर और अभिव्यक्ति की विशिष्टता विशिष्ट कथ्य पर निर्भर करती है। किन्तु, हर भाषा में कथ्य और अभिव्यक्ति का यह तालमेल उसी अनुपात मे नहीं बैठाया जा सकता और न तो हर भाषा में कथ्य और अभिव्यक्ति के योग से एक-सा प्रभाव ही उत्पन्न किया जा सकता है। यही कारण है कि काव्यानुवाद में प्रायः मूल प्रभाव का, या वह प्रभाव उत्पन्न करने वाले मूल काव्य-

तत्त्वों का कुछ अंश छूट जाता है, और कुछ ऐसा अंश कभी-कभी जुड भी जाता है जो मूल मे नही होता। अनेक लोग इस जुड़ने को इस आधार पर आवश्यक भी मानते हैं कि इससे वह कमी, एक सीमा तक पूरी हो जाती है, जो 'कुछ' छूट जाने से उद्भूत होती है, किन्तु वास्तविकता यह है कि यह जोड़ने से अनुवाद में जान तो आ जाती है, किन्तु वह मूल से और अधिक हट जाता है, क्योकि जो तत्त्व जुडते हैं, वे प्रायः वही नही होते जो छूट जाते हैं, वे प्राय. किसी-न किसी रूप मे उससे भिन्न होते हैं। इस 'और अधिक हट जाने' को गणितीय रूप मे यों दिखाया जा सकता है : क=मूल कविता, ख=अनुवाद मे छूटे तत्त्व; ग=अनुवादक द्वारा जोड़े गए नए तत्त्व। स्पष्ट ही 'क-ख' 'क' के अधिक निकट है बनिस्बत '(क—ख)+ग' के। फिट्जजेराल्ड ने उमरखय्याम के अनुवाद में अपनी ओर से काफी जोड़ा है। उन्होने स्पष्ट कहा है '''' अनुवादक को अपनी रुचि के अनुसार मूल को फिर से ढालना चाहिए—भूसा भरे गीध की अपेक्षा मैं जीवित गौरैया चाहूँगा।' इस तरह वे इस जोड़ने या संस्कार करने के पक्षपाती थे। जो भी हो, यह स्पष्ट है कि इस छूट जाने से अनुवाद मूल से दूर पड जाता है, और जोडने या सस्कार करने से और भी दूर पड जाता हैं, अतः वह अनुवाद से अधिक, मूल पर आधारित नई रचना सा हो जाता है।

बोरिस पास्तरनाक की कविता The Wind का धर्मवीर भारती द्वारा किया गया अनुवाद जोड़ने-छोड़ने का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है—

This is the end of me but you live on.
The wind, crying and complaining,
Rocks the house and the forest,
Not each pine-tree seperately
With the whole boundless distance,
Like the hulls of sailling-ships
Ridding as anchor in a bay
It shakes them not out of mischief,
And not in aimless fury,
But to find for you, out of its grief,
The words of a lullaby.

मैं व्यतीत हुआ, पर तुम अभी हो, रहो।
हवा, चीखती चिल्लाती हुई हवा—झकझोर रही है
मकानो को, जगलों को

चीड़ के अलग-अलग पेड़ों को नहीं
वरन सबों को एक साथ—तमाम सीमाहीन दूरियों को—
किसी खाड़ी में लंगर डाले हुए, लहरों पर उठते-गिरते हुए
तमाम जहाजों की तरह
और हवा उन्हें झकझोर रही है
केवल चंचलतावश नहीं
न निष्प्रयोजन क्रोध से अन्धी होकर
वरन अपनी चरम पीड़ा में से
मन्थन में से,
तुम्हारी लोरी के लिए उपयुक्त शब्द
खोजते हुए।

काव्यानुवाद की मुख्य कठिनाइयाँ निम्नांकित हैं—

(क) स्रोत भाषा के सभी शब्दों के लिए लक्ष्यभाषा मे प्राप्त शब्द आंतरिक, बाह्य तथा प्रभाव की दृष्टि सर्वदा समान नहीं होते।

(ख) अलंकारों का अनुवाद काफ़ी कठिन है, और कभी-कभी तो असंभव सा हो जाता है।

(ग) काव्यानुवाद में छन्दों की स्थिति भी अलकारो से कम जटिल नहीं है।

(घ) काव्यानुवादक कवि होता है, और वह अपने व्यक्तित्व को मूल रचना और अनुवाद के बीच में लाने से अपने को रोक नहीं पाता—शायद पा भी नहीं सकता।

(ङ) काव्य की अर्थ-रचना और अभिव्यंजना की जटिलताएँ प्राय: अनूद्य नहीं होती, या बहुत कम ही होती हैं।

(च) विशिष्ट कविता का अनुवाद विशिष्ट व्यक्तिनिष्ठ तथा विशिष्ट मूडनिष्ठ होता है।

(छ) तत्त्वत: एक भाषा की काव्य-रचना अर्थत:, अभिव्यक्तित: और प्रभावत: केवल उसी भाषा मे हो सकती है, किसी अन्य मे नहीं।

आगे संक्षेप में इन पर विचार जा रहा है।

साहित्यकार साहित्य में शब्दों का प्रयोग चुन कर करता है। कवि कविता लिखने में और भी अधिक चयन करता है। उसमे वह जिन शब्दों का प्रयोग करता है, वे शब्द प्राय: अपने कोशीय अर्थ या सामान्य अर्थ के अतिरिक्त अपनी ध्वनि से कुछ और अर्थ भी देते हैं। ध्वनि और अर्थ का यह सम्बन्ध

उन चुने हुए शब्दों की विशेषता होती है, और इनके कारण कविता में एक विशेष जीवंतता आ जाती है। अनुवाद में प्रायः उस शब्द का प्रतिशब्द कोशीय अर्थ ही दे पाता है। इसे यों भी कह सकते हैं कि प्रायः कविता का अनुवादक कोशार्थ स्तर का ही अनुवाद कर पाता है, ध्वनि या वर्णमैत्री आदि के स्तर का अनुवाद इस लिए सम्भव नहीं हो पाता कि हर भाषा में इस प्रकार के शब्द होते ही नहीं जिनमें अर्थ और ध्वनि का यह सम्बन्ध हो। मान लें किसी हिन्दी कविता में 'बिजली' शब्द आया है। स्पष्ट ही बिजली में 'तेजी' और 'तरलता' की भी ध्वनि है। उसके स्थान पर अंग्रेजी में thunder या thunderbolt रखें तो इनमें 'कड़क' है और lighting रखें तो 'चकाचौंध' है। इस तरह काव्यभाषा में ये शब्द बिजली के पर्याय नहीं हैं। यद्यपि सामान्य भाषा में हैं। इसका आशय यह हुआ कि इन शब्दों के द्वारा अनुवाद करने में मूल की 'तेजी' और 'तरलता' चली गई, और नये तत्व 'कड़क' या 'चकाचौंध' की वृद्धि हो गई। अर्थात् कुछ घट गया और कुछ बढ़ गया।

एक बात और। हर भाषा के हर शब्द का अपना अर्थबिम्ब होता है, जो सांस्कृतिक, भौगोलिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि से सम्बद्ध होता है। दूसरी भाषा का उसी का समानार्थी शब्द उस पृष्ठभूमि से युक्त न होने के कारण वैसा अर्थ-बिम्ब नहीं उभार सकता। किसी अंग्रेजी कवि की कविता में प्रयुक्त Spring शब्द का ठीक प्रतिशब्द हिन्दी में 'वसन्त' इसलिए नहीं हो सकता कि अंग्रेजी-भाषी के मन में 'स्प्रिंग' शब्द से इंग्लैंड के 'स्प्रिंग' का चित्र है, जो भारतीय वसंत के चित्र से सर्वथा भिन्न है। अतः उस कविता के हिन्दी के अनुवाद को पढ़नेवाले पाठक के मन में जो अर्थबिम्ब उभरेगा वह भारतीय वसंत का होगा जबकि होना चाहिए इंग्लैंड के स्प्रिंग का। ऐसे ही रूस का 'जाड़ा' और अरब का 'जाड़ा' एक नहीं हो सकता, न भारत की 'गर्मी' और फ्रांस की 'गर्मी'। काव्यभाषा में प्रयुक्त इन शब्दों का प्रतिनिधित्व इसीलिए किसी भी दूसरी भाषा के समानार्थी शब्दों द्वारा कदापि नहीं किया जा सकता।

काव्य की भाषा प्रायः अलंकार-प्रधान होती है, किन्तु एक भाषा के अलंकारों को दूसरी भाषा में ठीक-ठीक उतार पाना कठिन और कभी-कभी तो असम्भव हो जाता है। यों तो अर्थालंकार भी उपमानों की असमानता के कारण कभी-कभी अनुवाद में कठिनाई उत्पन्न करते हैं (जैसे 'वह उल्लू जैसा है' में 'उल्लू' मूर्खता का प्रतीक है, किन्तु इसका अंग्रेजी अनुवाद करना हो और उल्लू के स्थान पर owl रख दें तो काम नहीं चलेगा, क्योंकि अंग्रेजी में उल्लू 'बुद्धिमान' माना जाता है), किन्तु अनुप्रास आदि शब्दालंकारों में तो यह कठिनाई

और भी बढ़ जाती है। 'कनक कनक ते सौगुनी……' का किसी भाषा में में तब तक अनुवाद नहीं हो सकता, जब तक उस भाषा में भी कोई ऐसा शब्द न हो जिसका अर्थ 'सोना' तथा 'धतूरा' दोनों हो। यही स्थिति—

रहिमन पानी राखिए बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे मोती मानुस चून।

की भी है। 'चमक', 'इज्जत', 'पानी' तीन-तीन अर्थ वाला एक शब्द हो तब कहीं इसका अनुवाद हो सकेगा। और 'देवः पतिर्विदुषि ! नैषधराजगत्या' के अनुवाद में तो नल, इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण इन पाँच अर्थों वाला एक शब्द चाहिए। (आगे अलंकारों पर अलग से भी विचार किया गया है।)

कविता छंद-बद्ध होती है और हर छंद की अपनी गति होती है, अतः उसका अपना प्रभाव भी होता है। साथ ही उसका एक सीमा तक कविता के भाव से सम्बन्ध भी होता है। फिर अनुवादक क्या करे? भारतीय भाषाओं में एक प्रकार के छन्द हैं, तो फारसी आदि में दूसरी तरह के हैं और यूरोपीय भाषाओं में तीसरी तरह के। ऐसी स्थिति में दो ही रास्ते अनुवादक के सामने हैं। या तो वह लक्ष्य भाषा में प्राप्त उपयुक्त छन्द में अनुवाद कर दे, पर ऐसा करने से मूल छन्द का सारा प्रभाव समाप्त हो जाएगा, या फिर वह स्रोत सामग्री के छन्द में ही अनुवाद करे। किन्तु इसमें भी बात नहीं बनेगी। एक तो उस छन्द को उस भाषा में उतार पाना हमेशा आसान नहीं होगा, दूसरे यदि उतार भी लें तो स्रोत सामग्री का छन्द, स्रोत भाषा-भाषियों पर परम्परागत रूप जो प्रभाव डालता आ रहा है, लक्ष्य भाषा-भाषी पर अनभ्यस्त होने के कारण वह प्रभाव नहीं डाल पाएगा। इस तरह अनुवादक के एक तरफ कुआँ है तो दूसरी तरफ खाई। वह असमर्थ है। मूल छन्द का जो प्रभाव मूल भाषा-भाषियों पर पड़ता है अनुवादक किसी भी तरह से लक्ष्य भाषा-भाषी पर नहीं डाल सकता।

कविता का अनुवाद प्रायः कवि ही करते हैं। वस्तुतः कवि-हृदय ही काव्यानुवाद के साथ न्याय कर सकता है, क्योंकि कविता का अनुवाद अन्य अनुवादों से इस बात में भिन्न होता है कि एक वह प्रकार से पुनर्रचना होता है। कविता का अनुवाद मूल कविता का एक नया संस्करण होता है। अनुवादक मूल काव्य को हृदयगम करके पुनर्रचना करता है। विज्ञान, वाणिज्य या यहाँ तक कि कहानी, उपन्यास, नाटक आदि के अनुवाद में भी हम देखते हैं कि एक सामग्री का अनुवाद दो या चार अनुवादक अलग-अलग करें तो उनके अनुवादों में आपस में बहुत अधिक अन्तर नहीं होता, किन्तु कविता में ऐसा

नही होता । एक ही कविता के कई व्यक्तियों द्वारा किए गए अनुवादों को देखे तो उनमें काफी अन्तर मिलेगा। ऐसा केवल इसीलिए होता है कि काव्यानुवाद पुनर्रचना है, अतः उसमे अनुवादक कवि का अपना व्यक्तित्व बडा प्रभावी होता है। इसी कारण एक व्यक्ति द्वारा किया गया काव्यानुवाद दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है। दूसरे शब्दों मे हर अनुवादक उस मूल का अपने-अपने ढग से सस्करण प्रस्तुत करता है। उदाहरण के लिए उमर खय्याम की एक रुबाई अपने कुछ अनुवादो के साथ यहाँ देखी जा सकती है—

आमद सहरे निदा ज़े मयखान-ए-मा।
के रिन्द खराबाती व दीवान-ए-मा।
बरखेज कि पुरकुनेम पैमाना ज़े मय,
जाँ पेश कि पुरकुनद पैमान-ए-मा।

(सुबह होते ही मदिरालय से आवाज आई कि ऐ पीनेवाले व मेरे दीवाने ! उठ और शराब से अपने प्याले को भर ले। कब्ल इसके कि हमारे शरीर की मिट्टी से बने प्याले भरे अर्थात् हम मर जाएँ)

—उमर खय्याम

Dreaming when Dawn's left hand was in the sky
I heard a voice within the tavern cry,
"Awake, my little ones, and fill the cup
"Before Life's Liquor in its cup be dry".

—Fitsgerald (Rubaiyat of Omar Khayyam, 2)

अँगड़ाता था अरुण खड़ा, जब बढ़ा वाम कर अम्बर मे
मुझे सुन पड़ा स्वप्न-राज्य मे तब यह स्वर मदिरा-घर मे
व्यर्थ सूखने के पहले ही जीवन-प्यालो मे हाला
जाग जाग, अय मेरे शिशु-दल, ढाल ढाल मधु पी प्याला।

—केशव प्रसाद पाठक (रुबाइयात उमर खय्याम, २)

वाम-अनन्त-कर ने उषा के
जब पहला प्रकाश डाला,
सुना स्वप्न में मैंने सहसा
गूँज उठी यों मधुशाला—
उठो, उठो, ओ मेरे बच्चो,
पात्र भरो, न विलम्ब करो,
सूख न जावे जीवन-हाला,

रह जावे रीता प्याला।

—मैथिलीशरण गुप्त (रुबाइयात उमर खय्याम, २)

उषा ने ले अँगड़ाई, हाथ
दिए जब नभ की ओर पसार,
स्वप्न में मदिरालय के बीच
सुनी तब मैंने एक पुकार—
उठो, मेरे शिशुओ नादान,
बुझा लो पी-पी मदिरा भूख,
नहीं तो तन-प्याली की शीघ्र
जायगी जीवन-मदिरा सूख।"

—बच्चन (खैयाम की मधुशाला, २)

पौ फटते ही मधुशाला में, गूँजा शब्द निराला एक,
मधुबाला से हँस-हँस कर यों कहता था मतवाला एक—
"स्वाग बहुत है रात रही पर थोड़ी, ढालो ढालो शीघ्र
जीवन ढल जाने के पहले ढालो मधु का प्याला एक।

—रघुवंश लाल गुप्त (उमर खय्याम की रुबाइयाँ, २)

खोलकर मदिरालय का द्वार
प्रात ही कोई उठा पुकार
मुग्ध श्रवणों में मधु रव घोल,
जाग उन्मद मदिरा के छात्र!
ढुलक कर यौवन मधु अनमोल
शेष रह जाए नहीं मृदु मात्र,
ढाल जीवन मदिरा जी खोल
लबालब भर ले उर का पात्र।

—सुमित्रानन्दन पन्त (मधुज्वाल, २)

मूल और अनुवादों की तुलना से यह स्पष्ट है कि हर अनुवादक ने मूल बात को अपने ढंग से कहा है। काव्यानुवाद में यह बहुत बड़ी बाधा है, कि अन्य अनुवादों की तुलना में इसमें अनुवादक का व्यक्तित्व मूल और अनुवाद के बीच में अधिक आ जाता है, अतः मूल और अनुवाद में अन्तर पड़ जाता है, और यह अन्तर वैज्ञानिक साहित्य, सूचना साहित्य, या उपन्यास, कहानी, नाटक आदि के अनुवादों की तुलना में बहुत ज्यादा होता है।

निष्कर्षतः सफल काव्यानुवाद बहुत ही कठिन कार्य है, किन्तु वह असंभव नहीं है। अगर उसे असम्भव कहें तो 'कविता का अनुवाद असम्भव है' का अर्थ केवल यह हुआ कि *अनुवाद मूल कविता से प्रायः अभिव्यक्ति में, तथा* कभी-कभी कथ्य मे भी हट जाता है, अतः उसे सैद्धान्तिक स्तर पर पूर्ण अनुवाद नहीं कर सकते। किन्तु वास्तविकता यह है कि अनुवाद में इतना तो मानकर ही चलना पड़ेगा, और मुख्यतः कविता के अनुवाद मे, कि वह मूल नही होगा, *मूल का अनुवाद ही होगा और अनुवाद अपवादो को छोड दें तो, मूल के निकट* ही होता है मूल नही होता, हो भी नही सकता—न तो कथ्य में न कथन में और न इन दोनों के सम्मिलित प्रभाव में।

× × ×

काव्यानुवाद की असभाव्यता मे विश्वास रखनेवालों का ध्यान एक बात की ओर प्रायः नही जाता कि ऊपर जिन कठिनाइयो का सकेत किया गया है, वे सभी प्रकार के काव्यानुवादों मे नही मिलती। यदि स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा मे सास्कृतिक, भाषा-पारिवारिक और कालिक अन्तर हो तो तब तो ये मिलती हैं, किन्तु यदि अन्तर न हो तो ये काफी कम हो जाती हैं, और कभी-कभी तो समाप्त भी हो जाती हैं। उदाहरण के लिए फ्रासीसी से हिन्दी मे अनुवाद करने मे जो कठिनाई होगी, उसकी तुलना मे अग्रेजी मे अनुवाद करने मे बहुत कम होगी। ऐसे ही सस्कृत से प्राकृत या प्राकृत से सस्कृत मे या बँगला से हिन्दी या हिन्दी से बँगला मे अनुवाद करने मे उपर्युक्त कठिनाइयाँ बहुत कम होती हैं। कभी-कभी तो केवल सामान्य शाब्दिक और व्याकरणिक परिवर्तन से ही काम चल जाता है :

सस्कृत—ललित लवग लता परिशीलन कोमल मलय समीरे।
मधुकर निकर करबित कोकिल कूजित कुज कुटीरे।

हिन्दी—ललित लवग लताएँ छूकर बहता मलय समीर।
अलि सकुल पिक के कूजन से मुखरित कुज कुटीर।

× × ×

सामान्य भाषा मे कही गई बात का अनुवाद अपेक्षाकृत बहुत सरल होता है, किंतु काव्य भाषा अपनी अर्थ-रचना मे बहुत जटिल होती है। यह जटिलता ही काव्य के सौन्दर्य की जननी है, किन्तु साथ ही, यही जटिलता काव्यानुवाद में सबसे अधिक बाधक भी होती है। इसीलिए, जिन पक्तियो की काव्यभाषा अर्थ-रचना के स्तर पर जितनी ही जटिल होती है, उनका अनुवाद उतना ही

कठिन होता है, तथा उनके अनुवाद के, मूल से उतना ही दूर चले जाने की आशंका भी उतनी ही अधिक होती है। इसी तरह जिस साहित्यिक रचना का अभिव्यंजना-पक्ष जितना ही स्थूल और सपाट होगा, उसका अनुवाद उतनी ही सरलता से किया जा सकेगा, किन्तु इसके विपरीत जिसका अभिव्यजना-पक्ष जितना ही सूक्ष्म और जटिल होगा, उसको भाषांतरित करना उतना ही कठिन होगा तथा उस के, मूल से, उतना ही दूर हट जाने की आशका होगी। यही कारण है कि 'सूक्ष्म और जटिल अभिव्यंजना-प्रधान' तथा 'अर्थ-जटिल' रचना का अनुवाद सभी के वश का नहीं, उसको छन्दबद्ध कर पाना तो और भी कठिन है, और इसी कारण कम ही अनुवादक इसमें समर्थ होते हैं। इसके अतिरिक्त, यदि किसी में ऐसी क्षमता है, तो भी वह ऐसी रचना का अनुवाद अन्य अनुवादों की तरह, जब भी चाहे, नहीं कर सकता। किसी मौलिक रचना के लेखक की तरह ही, ऐसा अनुवाद भी बहुत कुछ विशिष्ट 'मूड' या 'मानसिक स्थिति' पर निर्भर करता है। यही नहीं, समर्थ काव्यानुवादक, उपयुक्त 'मूड' के होने पर भी किसी कवि की कुछ ही रचनाओं का अनुवाद सफलतापूर्वक कर सकता है। सभी का नहीं। और जब, एक कवि की भी सभी कविताओं का कोई एक काव्यानुवादक सफल अनुवाद नहीं कर सकता, तो फिर, सभी प्रकार के कवियों की सभी प्रकार की रचनाओं के एक व्यक्ति द्वारा अनुवाद किए जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसके विपरीत अन्य किसी प्रकार के अनुवादों में ऐसी कठिनाई नहीं होती। इस रूप में, विशिष्ट काव्य-रचना का अनुवाद भी, विशिष्ट काव्य-रचना की तरह ही, विशिष्ट मूड-निष्ठ होता है।

इस बात को यों भी समझा जा सकता है कि कविता अनुभूति है और सच्ची अनुभूति अनूद्य नहीं हो सकती। साथ ही कोई कवि अपने जिन क्षणों को कविता में उतारता है, उसके अपने होते हैं। किसी भी कवि के सारे क्षणों को कोई भी दूसरा कवि-अनुवादक जी नहीं सकता, जिए भी नहीं हो सकता, चाहे वह मूल कवि की तुलना में कितना भी बड़ा कवि क्यों न हो। इसी लिए किसी छोटे-से-छोटे कवि की भी सारी कविताओं का अच्छा अनुवाद कोई एक अनुवादक चाहे वह कितना भी बड़ा कवि क्यों न हो, नहीं कर सकता, उसे करना भी नहीं चाहिए। अनुवादक यदि अच्छा अनुवाद करना चाहता है—मूल के साथ पूरा न्याय तो वह कदाचित् नहीं कर सकता, किंतु कम-से-कम वह यदि चाहता है कि मूल के साथ अन्याय न हो—तो उसे किसी कवि की कविताओं से केवल कुछ अपनी रुचि और अनुभूति के अनुकूल चुन

लेनी चाहिए, और उन्ही का अनुवाद करना चाहिए। हिन्दी में ऐसा करने वाले धर्मवीर भारती अपने काव्यानुवादों में उन लोगो (मैं नाम नही लेना चाहता) की तुलना में बहुत अधिक सफल हैं, जिन्होंने किसी एक कवि को लेकर उसकी बहुत सारी कविताओं का अनुवाद कर डाला है। इन पक्तियों के लेखक ने भी काव्यानुवाद किए हैं और मेरी यह निश्चित मान्यता है कि अन्य प्रकार के अनुवादो की तरह काव्यानुवाद थोक का धन्धा नहीं हो सकता।

× × ×

हर कवि भाषा विशेष का ही होता है, वह जो कुछ कहता है, वह केवल उसी भाषा में कहा जा सकता है, और उसी रूप मे कहा जा सकता है। उस की महानता मूल रचना मे होती है, और मूल को पढकर ही हमें उसकी महानता के दर्शन हो सकते हैं। अनुवाद के द्वारा हमें कवि को छाया ही मिल सकती है, कवि नही, इसीलिए काव्यानुवाद का काम उन लोगों को मूल रचयिता या रचना का परिचय मात्र देना होता है, जो भाषा की कठिनाई के कारण उसका परिचय पाने मे असमर्थ होते हैं। काव्यानुवाद का काम यह कभी नही होता, हो भी नही सकता कि वह रचयिता या रचना को उसके कथन और कथ्य को पूरी गरिमा के साथ लक्ष्य भाषा में ला दे।

× × ×

पश्चिम में यह भी एक विवाद रहा है कि कविता का अनुवाद पद्य में करें या गद्य मे। वस्तुतः इन दोनो के पक्ष-विपक्ष मे बहुत कुछ कहा जा सकता है।

कविता का अनुवाद पद्य मे होना चाहिए, इसके पक्ष मे निम्नांकित बातें हैं : (१) 'कविता' और 'कविता से इतर' साहित्यिक रचना में सबसे स्पष्ट भेद यह रहा है कि कविता छन्दबद्ध होती है, चाहे वह मुक्त छन्द ही क्यों न हो। अतः छन्द से कविता का अनादिकाल से सम्बन्ध है। ऐसी स्थिति में उसका अनुवाद छन्दबद्ध होना चाहिए। (२) मूल रचना छन्दबद्ध है, अतः उसके गद्यानुवाद में उसका एक यह अत्यन्त आकर्षक तत्त्व छूट जाता है, और अनुवाद अन्य बातों के अतिरिक्त इस एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व की दृष्टि से भी मूल से अलग हट जाता है तथा घटकर रह जाता है। (३) *कविता काव्य-आनन्द के लिए पढ़ी जाती है, केवल भाव या विचार के लिए* नही, और यह काव्यानंद अन्य बातों के अतिरिक्त छन्दबद्धता या उसके कारण आए संगीतात्मक तत्त्व, लय, ध्वनि आदि में भी होता है। ऐसी स्थिति मे गद्यानुवाद पाठक को वह काव्यानन्द नही दे सकता जो पद्यानुवाद या छन्दानुवाद दे सकता है। (४) अनुवाद का अर्थ ही है कि वह अधिक से अधिक

मूल के समान या समीप हो। मूल कविता है, अतः अनुवाद भी कविता ही होना चाहिए। (५) काव्य का काव्यत्व काव्योचित भाषा-संरचना तथा शब्द-क्रम आदि ऐसी बातों में भी होता है जो गद्यानुवाद में नहीं आ पाती, अतः गद्यानुवाद काव्यानुवाद के लिए उपयुक्त नहीं है।

इसके विपरीत निम्नांकित बातें गद्यानुवाद के पक्ष में जाती हैं: (१) हर अनुवादक छंद मे अनुवाद नही कर सकता। छन्दानुवाद सहज प्रतिभा, श्रम तथा अभ्यास के बिना सम्भव नहीं। (२) पद्य मे छन्द, तुक, गति आदि के बन्धन होते हैं, अतः अनुवाद को मूल के समीप नही रखा जा सकता। यही कारण है कि विश्व मे जितने भी पद्यानुवाद हुए हैं वे अनेक दृष्टियों से मूल से दूर हैं। जैसे कही कोई शब्द छोड़ दिया गया है तो कही कोई शब्द जोड़ दिया गया है और कही कुछ परिवर्तन करके संक्षेप या विस्तार कर दिया गया है। (३) कविता मे शब्दो का चयन होता है। छन्दानुवाद में मूल के चयन को ला पाना कठिन होता है। इसीलिए छन्दानुवाद सटीक नही हो पाता। लक्ष्य भाषा मे चयन की गुंजाइश होने पर भी छन्दानुवाद में उसका लाभ नहीं उठाया जा सकता।

इस प्रसंग में क्षतिपूरक सिद्धांत (Theory of Compensation) की बात भी कुछ लोग करते हैं। अर्थात् पद्यानुवाद या छन्दानुवाद ही करना चाहिए। इससे कुछ छूटने के साथ कुछ जुड़ भी जाता है, अतः क्षतिपूर्ति (Compensation) हो जाती है। मेरी आपत्ति यह है कि क्षतिपूर्ति तो हो जाती है, किन्तु अनुवाद 'अ' के छूटने से तथा 'ब' के जुड़ने से मूल से दूर चला जाता है।

अंत मे, मेरी अपनी राय यह है कि कविता का अनुवाद पहले तो पद्य रूप में ही करने का प्रयास करें, यदि ठीक अनुवाद न हो पा रहा हो तो मुक्त छन्द मे अनुवाद करें। और यदि उसमें भी कठिनाई हो रही हो, तब गद्य मे अनुवाद करें।

२०

# नाटक का अनुवाद

यों तो सभी प्रकार के सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद कठिन होता है, किन्तु सभी की कठिनाइयाँ समान नहीं होतीं। नाटक के अनुवाद की कठिनाइयाँ काव्य आदि के अनुवाद से कई बातों में भिन्न हैं। समानताएँ केवल दो हैं। एक तो यह कि दोनों ही सृजनात्मक अतः शैली-प्रधान या अभिव्यंजना-प्रधान हैं, अतः अनुवादक को कथ्य के अतिरिक्त कथन-पद्धति पर भी पर्याप्त ध्यान देना पड़ता है; दूसरे नाटक कविताओं या छन्दों से युक्त होते हैं, या कभी-कभी अपवादतः कुछ स्थलों को छोड़कर पूरे-के-पूरे काव्यमय या कविता मे होते हैं, अतः नाटक के ऐसे स्थलों का अनुवाद तत्त्वतः काव्यानुवाद ही होता है, *नाटकानुवाद नहीं।*

नाटक दो प्रकार के होते हैं : 'मात्र पठनीय', 'अभिनेय'। ठीक इसी प्रकार नाटक के अनुवाद भी दो प्रकार के हो सकते हैं : 'मात्र पठनीय', 'अभिनेय'। मूल नाटक 'मात्र पठनीय' हो या 'अभिनेय', यदि अनुवादक अपने अनुवाद को 'मात्र पठनीय' बनाना चाहता है तो कोई खास ऐसी परेशानी नहीं होती, जैसी केवल नाटक के अनुवाद तक सीमित हो। वह अनुवाद प्रायः वैसे ही किया जाएगा, जैसे उपन्यास या कहानी आदि का होता है। उसकी भाषा आवश्यकतानुसार मूल नाटक की भाषा के अनुरूप, या विशिष्ट पाठक वर्ग की दृष्टि से जो उपयुक्त हो, रखी जा सकती है। वास्तविक समस्या वहाँ आती है, जहाँ अनुवादक अपने अनुवाद को अभिनेय भी बनाना चाहता है।

*नाटक के अनुवादक के लिए सबसे आवश्यक शर्त यह है कि उसे रंगमंच* का ज्ञान होना चाहिए : मूल नाटक की मंच-परम्परा का तथा जिस काल की जिस भाषा में अनुवाद किया जा रहा है, उसकी मंच-परम्परा का। मूल की परम्परा को जाने बिना अनुवादक नाटक के उन प्रतीकात्मक संकेतों को नहीं पकड़ पाएगा तथा लक्ष्य भाषा की रंग-परम्परा के ज्ञान के बिना वह उन्हें

अपने अनुवाद मे नाटकोचित या रंगोचित दृष्टि से नही उतार पाएगा। उसे मूल की मंचीय साज-सज्जा, प्रकाश-प्रभाव, ध्वनि-संयोजन आदि के प्रति संवेदनशील होकर मूल को समझना होगा तथा लक्ष्य भाषा की मंचीय साज-सज्जा, प्रकाश-प्रभाव, ध्वनि-संयोजन आदि के अनुकूल नाटक को रूपायित करना होगा—मात्र भाषांतरित नही। हिन्दी मे शेक्सपियर के कुछ नाटकों के बच्चन जी ने तथा रागेय राघव ने अनुवाद किए हैं। इन अनुवादों में काव्यात्मकता तो है किन्तु इन दोनो ही अनुवादकों की रंगमंचीय क्षेत्र मे गति न होने के कारण अनुवादो मे नाटकोचित प्रभाव का सर्वथा अभाव है, तथा वे ग्रंथ अनुवाद होकर भी सफल नाट्यानुवाद नहीं हैं।

भाषा-शैली की दृष्टि से नाटक के अनुवादक के सामने कई प्रकार की समस्याएँ आती हैं। मात्र पठनीय साहित्य की भाषा कैसी भी हो, कोई बहुत अन्तर नही पड़ता। हर पाठक अपनी योग्यता या सुविधानुसार, व्यक्ति, शब्द-कोश या किसी ज्ञात भाषा मे अनुवाद की सहायता से उसे धीरे-धीरे या तेजी से पढ और समझ सकता है। कोई नाटक ही क्यों न हो, हर पाठक अपने अपने ढग से उसे पढता जाएगा। किन्तु अभिनेय नाटक मे ऐसा नहीं हो सकता, इसीलिए उसके अनुवादक को एक साथ कई समस्याओं से जूझना पड़ता है। पहली बात तो यह है कि नाटक संवादात्मक होता है, अतः भाषा सवादोचित होनी चाहिए : छोटे-छोटे वाक्य, सरल और सहज शब्दावली, ताकि सुशिक्षित, अल्प शिक्षित, अशिक्षित सभी सुनते ही समझ जाएँ। मात्र शब्दार्थ और भावार्थ ही नही, ध्वनि या व्यजना भी। नाटक पढ़ने वाला तो अपनी योग्यतानुसार धीरे-धीरे समझते हुए पढ़ सकता है, शब्दकोष की सहायता ले सकता है, किसी से पूछ सकता है, किन्तु नाटक देखने वाले के लिए यह सब संभव नही। एक वाक्य के अर्थ पर सोचने के लिए वह रुका कि दो-चार वाक्य पात्र के मुंह मे निकल गए। किसी से पूछने, शब्दकोश देखने या किसी दूसरी भाषा मे किए गए अनुवाद से सहायता लेने का तो प्रश्न ही नही। दूसरे, सवादो की भाषा प्रसाद के नाट्य पात्रों की तरह न होकर मुहावरे और लोकोक्तियों से युक्त होनी चाहिए। मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ बोल-चाल की भाषा की शक्ति भी है, उनका सौंदर्य भी है और उसमे सहजता भरने के साधन भी हैं। तीसरे नाटक के पात्र अनेकानेक स्तरों के होते हैं : मोची, मजदूर, किसान, वकील, डॉक्टर, विद्यार्थी, या सुशिक्षित, अर्धशिक्षित, अल्पशिक्षित, अशिक्षित, या विशिष्ट क्षेत्रीय या प्रातीय (जैसे बगाली, पंजाबी, राजस्थानी, हरियाणवी, सिन्धी आदि) या विशिष्ट वित्तीय स्थिति के, विशिष्ट

आयु के, विशिष्ट परिवार के या विशिष्ट परम्परा आदि के। इन सभी की भाषा-शैली एक-सी नहीं हो सकती। डॉ० रघुवीर जैसा शुद्धतावादी और संस्कृत-प्रेमी व्यक्ति सडक को 'रथ्या' कहेगा, तो प० सुन्दरलाल जैसा मिश्रण-वादी और हिन्दुस्तानी-प्रेमी 'राजकुमारी देवसेना' को 'शहजादी देवसेना' कहेगा। वकील, डॉक्टर या विश्वविद्यालय के विद्यार्थी की भाषा मे काफी शब्द अग्रेज़ी के होगे, बगाली 'स' को 'श' (सब-शब) बोलेगा तो बिहारी या हरियाणी 'श' को भी 'स' (शहर-सहर) उच्चरित करेगा तथा मैथिल या सिंधी 'ड' को 'र' (घोड़ा-घोरा)। पंजाबी के प्रकृत उच्चारण मे 'गाडी' 'गड्डी' हो जाएगी और 'राजेन्द्र' 'रजिन्दर'। मानक (standerd), अवमानक (substa-ndarad), विशिष्ट भाषा (jrogn), अपभाषा (slang) का भी अन्तर पड़ेगा. मुझे-मेरे को, किया-करा, कीजिए-करिए, जुल्म-जुलुम, स्टेशन-इस्टेसन, मैंने खाया—मैं खाया, हाथी आया—हाथी आई आदि। इस तरह ध्वनि, शब्द, रूप-रचना तथा वाक्य-रचना सभी दृष्टियो से पात्रो मे कुछ-न-कुछ अन्तर पड़ेगा। अनुवादक को लक्ष्य भाषा से ऐसे प्रयोगों को चुन-चुनकर पात्र के अनुकूल भाषा-शैली का प्रयोग करना पड़ता है। सभी पात्रों की भाषा एक-रस, सपाट तथा विशिष्टता-रहित रखने से सवाद की सहजता और जीवतता नष्ट हो जाती है।

नाटक के सवाद अभिनय से सम्बद्ध होते है। अत अनुवादक को केवल मूल सवाद ही नही देखना चाहिए, बल्कि मूल में सवाद और अभिनय मे जिस ताल-मेल की समावना है, अनुवाद मे भी वह लाने का यत्न करना चाहिए। यह तालमेल अलग-अलग क्षेत्रों मे अलग-अलग प्रकार का हो सकता है। इसी-लिए अनुवादक को मूल नाटक और स्रोत भाषा की ऐसी परम्पराओ तथा रूढ़ियो आदि से परिचित होना चाहिए।

हर सस्कृति मे नाटक या मंच की दृष्टि से कुछ बातें वर्जित होती हैं, और कुछ आवश्यक होती हैं। यह आवश्यक नही कि कोई नाटक जिस सस्कृति मे लिखा गया हो, वह उन दृष्टियों से उस सस्कृति के पूर्णतः समान हो जो लक्ष्य भाषा की है। इस तरह अनुवादक को इन तथाकथित वर्जनाओ तथा अनिवार्यताओ का भी ध्यान रखना चाहिए।

नाटक सवादात्मक कहानी, कार्यव्यापार और अभिनय का समन्वित रूप होता है। अनुवादक का ध्यान इन तीनो पर पूरा-पूरा होना चाहिए।

## २१

# वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद

वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद की समस्या काव्यानुवाद आदि से काफ़ी अलग है। विभिन्न देशों में जैसे-जैसे वैज्ञानिक प्रगति हो रही है, और विज्ञान विषयक वाङ्मय का सृजन हो रहा है, वैज्ञानिक अनुवाद की आवश्यकता बढ़ती जा रही है, किन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि साहित्यिक पुस्तकों की तुलना मे वैज्ञानिक पुस्तकों के अनुवाद बहुत कम हुए हैं या हो रहे हैं। इस दिशा मे अग्रणी केवल अंग्रेज़ी, जर्मन, रूसी तथा जापानी भाषाएँ ही हैं, जिनमें वैज्ञानिक वाङ्मय के भी काफी अनुवाद होते रहते हैं। भारतीय भाषाओं में भी कुछ अनुवाद हो रहे हैं, किन्तु उनकी सख्या नगण्य है। हिन्दी मे तो फिर भी पुस्तक अनूदित होकर आई हैं, अन्य भारतीय भाषाओं मे तो यह काम और भी कम हुआ है।

पीछे इस बात की ओर सकेत किया जा चुका है कि हमारे वाङ्मय में रचनाएँ मोटे रूप मे दो प्रकार की होती हैं : (१) अभिव्यक्ति या शैली-प्रधान (२) तथ्य या कथ्य-प्रधान। इसका यह अर्थ नही है कि पहले वर्ग में दूसरे के तत्त्व नही होते या दूसरे में पहले के तत्त्व नही होते। होते हैं, किन्तु एक मे एक मुख्य होता है तो दूसरे में दूसरा। पहले वर्ग मे कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, ललित निबन्ध आदि आते हैं तो दूसरे मे वैज्ञानिक साहित्य। वैज्ञानिक साहित्य चूँकि तथ्य या कथ्य या सूचना-प्रधान होता है, अतः उसके अनुवाद में शैली का विशेष प्रश्न नहीं उठता। इसीलिए वैज्ञानिक वाङ्मय का अनुवाद करना अभिव्यक्ति-प्रधान साहित्य की तुलना मे सरल होता है। उसमे अभिव्यक्ति या आर्थिक संरचना की वह जटिलता नही होती जिसका अनुवाद कठिन या असभव-सा हो। वैज्ञानिक साहित्य की शैली अपवादो को छोड़कर प्रायः सपाट होती है, अतः अनुवादक को शैली पर अपना ध्यान केन्द्रित करने की विशेष आवश्यकता नहीं होती।

वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद में मुख्य समस्या पारिभाषिक शब्दों की

होती है । पीछे 'अनुवाद और शब्दविज्ञान' में हम चुके हैं कि शब्द प्रयोग की दृष्टि से तीन प्रकार के होते हैं : सामान्य, अर्धपारिभाषिक, पारिभाषिक। विश्व मे अंग्रेजी, रूसी, जर्मन, फ्रेंच आदि कई भाषाएँ ऐसी हैं, जिनमें पारिभाषिक शब्दो का अभाव प्रायः नही है । इसके मुख्य कारण दो हैं : एक तो इन भाषाओ के वैज्ञानिक ही विश्व मे अग्रणी हैं, अतः प्रायः नई चीजें ये ही बनाते हैं, खोजते हैं तथा नई संकल्पनाओं को जन्म देते हैं और इन सभी के लिए नए शब्द भी बनाते चलते हैं । दूसरे इन भाषाओं मे आधुनिक काल में वैज्ञानिक ग्रन्थ-लेखन तथा अनुवाद की सुदीर्घ परम्परा है । इस तरह परपरागत विज्ञान तथा आधुनिक आविष्कारो एवं खोजो के संदर्भ में ये भाषाएँ पारिभाषिक शब्दो की दृष्टि से सम्पन्न हैं, और इसीलिए इनके यहाँ अनुवाद मे पारिभाषिक शब्दावली कोई समस्या नही है । दूसरी ओर हिन्दी, बँगला, मराठी, पश्तो, ईरानी, अरबी आदि अपेक्षाकृत अविकसित देशों की भाषाएँ है, जिनको उपर्युक्त दोनों ही सुविधाएँ प्राप्त नहीं रही हैं । इसी कारण उनके सामने वैज्ञानिक अनुवाद मे पारिभाषिक शब्दो की समस्या है । भारत या अरब आदि मे प्राचीनकाल मे कुछ विज्ञानो का विकास हुआ था तथा अरबी, सस्कृत आदि मे अपने काल की आवश्यकताओ की दृष्टि से पर्याप्त पारिभाषिक शब्द थे, किंतु वे शब्द चिकित्सा दर्शन, ज्योतिष, गणित तथा प्रारंभिक रसायन आदि कुछ ही विषयों के थे । आधुनिककाल मे एक तो विज्ञान के अनेकानेक नए विषय विकसित हो गए हैं, दूसरे, पुराने विषयो मे इतना विकास हो गया है कि पुरानी शब्दावली से काम नही चलाया जा सकता । इसीलिए अरबी या सस्कृत से शब्द ग्रहण करने वाली भाषाओं के सामने भी शब्दावली की समस्या है ।

जिस भाषा मे वैज्ञानिक अनुवाद करना हो उसे पारिभाषिक शब्दावली की दृष्टि से सम्पन्न होना चाहिए । यदि ऐसा नही है तो अनुवादक को या तो स्रोत भाषा के पारिभाषिक शब्द का अपनी भाषा की प्रकृति के अनुसार अनुकूलन (जैसे अकादमी, अतरिम) कर लेना या तथाकथित अतर्राष्ट्रीय शब्दावली से या किसी अन्य नई या पुरानी भाषा से शब्द ले लेना चाहिए या अपनी भाषा के शब्दों, धातुओं, उपसर्गों, प्रत्ययो आदि के आधार पर नए शब्द बना लेने चाहिए ।

वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद मे दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है विषय का ज्ञान । अभिव्यक्ति-प्रधान शैली-प्रधान या सृजनात्मक साहित्य (जैसे कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, ललित निबन्ध आदि) मे विषय-जैसी कोई खास

चीज नहीं होती। अनुवादक को यदि स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा का समुचित ज्ञान है तो वह अनुवाद कर लेता है। किन्तु इसके विपरीत वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद में विषय का ज्ञान अनिवार्यतः आवश्यक है। विषय का ज्ञान न होने से अनुवादक अनेक प्रकार की गलतियाँ कर सकता है। उदाहरणत —

गणित मे—

(१) A finite point set has no limit points. इस वाक्य में अगर has का अनुवाद 'में' कर दिया जाय तो एकदम गलत होगा। यहाँ has का अनुवाद 'के' करना होगा—'परिमित समुच्चय के सीमा-बिन्दु नही होते।' इसी तरह Since P has limit points, P must be infinite. में भी has का रूपांतर 'के' होगा, 'में' नहीं। विषय का अजानकार 'में' अनुवाद कर देगा जो गलत होगा।

(२) Let {sn} be a sequence containing all rationals. इस का अनुवाद होगा—'मान लीजिए {sn} सब परिमेय संख्याओं का अनुक्रम है।' यहाँ containing का यह अर्थ नहीं है कि परिमेय संख्याएँ शामिल हैं और उनके अलावा भी कुछ और संख्याएँ हैं।

(३) Hence closed neighbourhoods are closed. इसका अनुवाद होगा—'अतः संवृत प्रतिवेश संवृत समुच्चय होते हैं।' यहाँ 'समुच्चय' अपनी तरफ से जोड़ना पड़ेगा। यदि अनुवाद 'अतः संवृत प्रतिवेश संवृत होते हैं' करें तो इसका कोई मतलब नहीं होगा। स्पष्ट ही विषय से अपरिचित अनुवादक यह निरर्थक अनुवाद ही कर सकेगा।

(४) We can write

$$\Phi Q - \Phi_P = PQ\left(\frac{\partial \Phi}{\partial s}\right)PQ$$

where $\left(\frac{\partial \Phi}{\partial s}\right)$ PQ denotes the distance rate of chang of $\phi$ for displacement in the direction of PQ. यहाँ distance rate का अर्थ है *'दूरी के सापेक्ष' यानी with* respect to distance जो विषय का जानकार ही समझ सकता है।

(५) Consideer Vortias k at A, $z_1$, and-k at B, $z_2$, outside the circular cylinder $/z/=a$. गणित न जानने वाला इसका

अनुवाद तो कर ही नहीं कर सकता।

(६) Show that f(p)=o precisely on A and f(p)=1 precisely on B. यहाँ precisely का मतलब "ठीक-ठीक', 'परिशुद्ध रूप से' 'सही-सही' आदि नहीं है बल्कि "A और केवल A" "B और केवल B" है। अत. अनुवाद होगा सिद्ध कीजिए कि f (p)=o, A और केवल A पर होगा और f (p)=1, B और केवल B पर होगा।

जीवविज्ञान से—

(१) In the preparation of plant material for human consumption, we eliminate most of the cellulose in the woody portions. विषय से अपरिचित अनुवादक woody portion का अर्थ 'काष्ठमय भाग' कर देगा जब कि वस्तुत यहाँ woody portion का अर्थ है साग, सब्जी, फसल आदि के ठंठल, छिलके आदि कड़े भाग।

(२) We can follow the development through the transparent egg-sholl until an Indian file of unhatched larva is formed यहाँ Indian file का अर्थ 'भारतीय पंक्ति' नहीं है, अपितु एक ऐसी पंक्ति है जिसमें अंडे एक के बाद एक, एक पंक्ति में क्रमबद्ध होते चले जाते हैं।

(3) Similarly bees wake up very quickly in the light. इसमें सामान्य अनुवादक wake up का अर्थ 'जाग जाती हैं' करेगा किन्तु विषय का जानकार 'सक्रिय हो जाती हैं।'

(4) ---The insects always go to the side with the sound ocellus इसमें sound ocellus 'ध्वनि-नेत्रक' नहीं है, बल्कि 'प्रधान नेत्रक' है।

इस तरह वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद के लिए विषय का ज्ञान अनिवार्य आवश्यक है। इसका आशय यह हुआ कि वैज्ञानिक साहित्य के अनुवादक को विषय का तथा दोनों भाषाओं का जानकार होना चाहिए। यदि ऐसा व्यक्ति न मिले तो पहले विषय के जानकार (जो विषय तथा स्रोत भाषा को ठीक से जानता हो) से उसका अनुवाद कराकर, लक्ष्य भाषा के अच्छे जानकार से अनुवाद का पुनरीक्षण (वेटिंग) करा लेना चाहिए। इस प्रकार वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद विषय के जानकार तथा लक्ष्यभाषा के जानकार के सहयोग से अच्छा हो सकता है। हिन्दी में ऐसे काफी सहयोगित अनुवाद हुए हैं।

वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद की तीसरी महत्वपूर्ण बात है उसकी भाषा शैली की स्पष्टता, पूर्णता, सटीकता, सरलता और असंदिग्धता। सच पूछा

जाय तो 'ये गुण' वैज्ञानिक लेखन में होने चाहिए, अतः वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद में भी इनकी अनिवार्यता स्वतःसिद्ध है।

इस बात को यहाँ थोड़े विस्तार से देखा जा सकता है—

वैज्ञानिक अनुवाद बहुत स्पष्ट तथा पूर्ण होना चाहिए। सृजनात्मक साहित्य में तो अस्पष्टता भी कभी-कभी गुण होती है, किन्तु वैज्ञानिक साहित्य में यह सबसे बड़ा दुर्गुण है। इसी तरह सृजनात्मक साहित्य में बहुत कुछ पाठक की कल्पना के लिए अनकहा भी छोड़ देते हैं। आनन्द के उद्देश्य से पढ़नेवाला पाठक उसे जानने के लिए कल्पना के घोड़े दौड़ाकर आनंदित होता है। किन्तु वैज्ञानिक साहित्य में ऐसा नहीं होना चाहिए। वैज्ञानिक साहित्य के अनुवादक को अपना अनुवाद इतना स्पष्ट और पूर्ण करना चाहिए कि पाठक को मूल सामग्री में दी गई सूचना अपरिवर्तित तथा पूर्णरूप से बिना किसी कठिनाई के प्राप्त हो सके।

वैज्ञानिक अनुवाद को स्पष्ट तथा सटीक बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि अनुवादक न तो अपनी साहित्यिक शैली का उसमें कौशल दिखाए, न मूल और अनुवाद के बीच में अपनी रुचि और अपने व्यक्तित्व को आने दे, और न आकर्षक अभिव्यंजना के लोभ में शब्द-जाल में उसे बोझिल या कठिन बना दे।

वैज्ञानिक अनुवाद की भाषा अत्यन्त सरल तथा अभिधा-प्रधान होनी चाहिए। यदि अनुवादक ने लक्षणा या व्यंजना लाने का यत्न किया तो उस में दुरूहता और संदिग्धता आ जाएगी।

पुराने ज़माने में भारत, अरब, तथा यूरोप में वैज्ञानिक साहित्य पद्य में भी लिखा जाता था। हिन्दी में मध्यकाल की अनेक पांडुलिपियाँ ऐसी हैं जो ज्योतिष, चिकित्सा आदि का विवेचन छन्दों में करती हैं। आधुनिक काल में लोगों का ध्यान छन्दबद्धता या साहित्यिक शैली की असुविधा की ओर गया, और रॉयल सोसायटी ने इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई और इस बात को बल के साथ प्रचारित किया कि वैज्ञानिक साहित्य की भाषा सरल, स्पष्ट तथा असंदिग्ध होनी चाहिए तथा उसे गद्य में लिखा जाना चाहिए।

वैज्ञानिक साहित्य के अनुवादक को शब्द-चयन विशेष तो नहीं करना पड़ता, किन्तु यदि पड़े तो उसे ऐसे शब्दों को ही चुनना चाहिए जिनका अर्थ पूर्णतः निश्चित हो। अर्थ में किसी भी प्रकार की द्वयर्थता की गुंजाइश न हो। साथ ही पूरे अनुवाद में एक शब्द का भरसक एक ही अर्थ में प्रयोग करना चाहिए।

प्रतीकचिन्ह (सिम्बल) वही रखने चाहिए जिससे लक्ष्य भाषा-भाषी परिचित हों। यदि कोई नया सिम्बल हो तो यथास्थान उसे स्पष्ट कर देना चाहिए।

यदि किसी पारिभाषिक शब्द या सिम्बल का प्रयोग कोई अनुवादक किसी नए अर्थ मे करने के लिए बाध्य है तो यथा स्थान इसका स्पष्ट सकेत करके ही उसे ऐसा करना चाहिए।

वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद कुछ अपवादों को छोड़कर पूर्ण अनुवाद होता है—मूल का सच्चा प्रतिनिधि। उसमे न तो कुछ छूटता है और न कुछ जुड़ता है।

२२

# शीर्षकों का अनुवाद

कविताओं, लेखों या वार्ताओं के शीर्षक तथा पुस्तकों के नामों के अनुवाद की समस्या अलग ही है। किसी भी शीर्षक या नाम में ये गुण होने चाहिए : (क) विषय से सम्बद्ध हो तथा सम्बद्ध कविता, लेख, वार्ता या पुस्तक आदि का अच्छा प्रतिनिधित्व करता हो। (ख) छोटा हो। बहुत बड़ा नाम या शीर्षक प्रयोग करने (लिखने में या बोलने में) की दृष्टि से अच्छा नहीं होता। (ग) आकर्षक हो। शीर्षक या नाम के आकर्षण का मानदंड समय के साथ-साथ बदलता रहता है। ऋग्वेद, महाभारत, रघुवंश, धम्मपद, पृथ्वीराज रासो, रामचरितमानस, नीरजा, नदी के द्वीप, अन्धा युग, आग का दरिया जैसे नामों में उस परिवर्तन का अच्छा इतिहास झलकता है। (घ) जिस भाषा में वह हो, उसके भाषिक मुहावरे के अनुकूल हो। सामान्यतः तो यह ठीक है किन्तु आधुनिक काल में शीर्षक को आकर्षक बनाने के लिए इसका उल्लंघन भी किया जाने लगा है। जैसे 'मन वृन्दावन' 'दुल्हन एक रात की'। पहले में दो संज्ञा शब्द आए हैं। वस्तुतः बिना जोड़े दो संज्ञा शब्द हिन्दी में किसी पदबन्ध में साथ नहीं आ सकते। दूसरे में सामान्य परम्परा 'एक रात की दुल्हन' कहने की है। ऐसे ही 'सात रंग सपने', 'पानी बर्फ़' आदि भी।

उपर्युक्त बातें मूल लेखक की दृष्टि से कही गईं, किन्तु अनुवादक को भी ये ध्यान में रखने की है। इनके अतिरिक्त अनुवादक के लिए कुछ और बातें भी उल्लेख्य हैं : (क) अनुवादक यदि मूलकृति के नाम का भी अनुवाद करना चाहता हो तो वह अनुवाद लक्ष्य भाषा के भाषिक मुहावरे के अनुकूल होना चाहिए। Readings in Linguistics का 'भाषाविज्ञान में पठनिका' या 'भाषाविज्ञान की पठनिका' जैसा नहीं। (ख) यदि अनुवादक अनुवाद का भी नाम वही रखना चाहे जो मूल का हो तो उसे लक्ष्य भाषा में उस नाम की उच्चारणीयता तथा उससे लक्ष्य भाषा-भाषी के मन पर पड़ने वाले प्रभाव का ध्यान रखना चाहिए। अर्थात् लक्ष्य भाषा-भाषी उसका सुविधापूर्वक उच्चा-

रण कर सकें तथा उसके सुनने से उस पर जो प्रतिक्रिया हो वह सार्थक और विषय से सम्बद्ध हो, ऐसा न हो कि लक्ष्य भाषा उसे सुनकर कुछ न समझ सके। (ग) अनुवादक यदि न तो मूल नाम अनुवाद को देना चाहता है, न तो मूल नाम का अनुवाद ही करना चाहता है तो उसे मूल लेखक की तरह विषय, आकर्षण, संक्षेप आदि उन बातों को दृष्टि में रखते हुए, जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, नए सिरे से नाम के बारे में सोचना चाहिए। उदाहरणार्थ माइका वाल्तारी के प्रसिद्ध उपन्यास Egyption के हिन्दी अनुवाद का नाम है 'वे देवता मर गए'।

अनूदित पुस्तकों या कविताओं आदि के नाम या शीर्षक प्राय चार प्रकार के मिलते हैं: (१) मूल नाम ही अनुवाद का भी, (२) मूल नाम का ज्यों-का त्यों अनुवाद; (३) मूल नाम का भावानुवाद; (४) नया नाम। मेरे विचार में अनुवादक को नाम या शीर्षक के लिए चुनाव इसी क्रम से करना चाहिए। पहला सम्भव न हो तो दूसरा, दूसरा सम्भव न हो तो तीसरा, और वह भी सम्भव न हो तो चौथा। इस सम्बन्ध में कोई ऐसा निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता, अनुवादक जिसका आँख मूँदकर अनुसरण कर सके।

कुछ उदाहरणों के द्वारा इस दिशा में कुछ और बातें भी कही जा सकती हैं। एक फिल्म आई थी Around the world हिंदी में उसका शब्दानुवाद होता 'दुनिया के इर्द-गिर्द' किन्तु यह नाम अच्छा नहीं होता अतः अनुवाद किया गया था 'दुनिया की सैर' जो निश्चित रूप से बहुत अच्छा अनुवाद था। बार्कर की राजनीति शास्त्र की एक प्रसिद्ध पुस्तक है Principles of the Social and Political theory। इसका सीधा अनुवाद होगा 'सामाजिक और राजनीतिक सिद्धांत के सिद्धांत' क्योंकि Principle तथा theory दोनों को हिन्दी में प्राय सिद्धांत ही कहते हैं, किन्तु यह शीर्षक अच्छा नहीं लगेगा अत '...के मूलभूत सिद्धांत' या कुछ ऐसा ही नाम रखना उचित होगा। एक दूसरी पुस्तक है Age and Image। इस नाम में ध्वनि-मैत्री का सौंदर्य है जो इसके सीधे अनुवाद में सम्भव नहीं था। हिन्दी अनुवादक ने इसका नाम रखा है 'काल और कला'। कहना न होगा कि इस नाम में ध्वनि-सौंदर्य है और यह आकर्षक, छोटा तथा अच्छा है। नेहरू जी की पुस्तक Discovery of India का सीधा अनुवाद होता 'भारत की खोज', किन्तु नेहरू जी के सुझाव पर नाम रखा गया 'भारत की कहानी'।

यह पीछे कहा जा चुका है कि अनुवाद की भाषा लेखक, विषय, पाठक

आदि की दृष्टि से रखते हुए रखनी चाहिए, और पुस्तक के नाम की भाषा पुस्तक की भाषा के अनुकूल होनी चाहिए। मौलाना आज़ाद की पुस्तक है India wins freedom और उसका हिन्दी अनुवाद है 'आज़ादी की कहानी'। इस नाम मे 'स्वतन्त्रता' शब्द उतना अच्छा न होता जितना अच्छा 'आज़ादी' है।

एक पुस्तक है A Guide to Diplomatic Practice। इसके अनुवाद में guide शब्द को 'दर्शिका' या 'मार्गदर्शिका' रूप में रखें तो नाम मे एक प्रकार का सस्तापन आ जाएगा अतः 'राजनयिक व्यवहार की रूपरेखा' या इस प्रकार का कोई नाम अच्छा रहेगा। काव्यशास्त्र की एक प्रसिद्ध पुस्तक है On Sublime। हिन्दी में इसके दो अनुवाद है 'उदात्त के विषय मे' तथा 'काव्य में उदात्त तत्त्व'। कहना न होगा कि पहले नाम मे अंग्रेज़ी की छाया है अतः दूसरा नाम अपेक्षाकृत अच्छा माना जाएगा।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने Light of Asia का अनुवाद 'बुद्धचरित' तथा Riddle of the Universe का 'विश्व-प्रपच' नाम मे किया है। उन का अनुवाद जितना अच्छा बन पड़ा है नामो के शीर्षक कदाचित् उतने ही खराब हैं। 'एशिया-ज्योति' तथा 'विश्व की पहेली' शायद अधिक अच्छे नाम होते।

वस्तुत नाम ज्यो-का-त्यो यदि न रखना हो, तथा उसका शब्दानुवाद या भावानुवाद भी न सम्भव हो तो अनुवादक मे सर्जन-प्रतिभा तथा कल्पना जितनी उर्वर होगी, वह उतना ही अच्छा नाम रख सकेगा। ऐसा 'नामकरण' न तो अनुवादविज्ञान के क्षेत्र मे है और न अनुवादशिल्प के। यह अनुवादकला के क्षेत्र मे है और इसीलिए अनुवादक की सृजन-शक्ति पर निर्भर करता है।

# २३

# अलंकारों का अनुवाद

अनुवाद मे अलकारों के अनुवाद की समस्या अलग ही है। अलंकार दो प्रकार के होते हैं : शब्दालकार, अर्थालकार। शब्दालंकार के आधार दो हैं : 'ध्वनि-समानता' तथा 'एक शब्द के एकाधिक अर्थ'। जहाँ तक ध्वनि-समानता वाले अनुप्रास के विविध भेदों का प्रश्न है, इनके अनुवाद के लिए लक्ष्यभाषा मे स्रोत के शब्दो के ऐसे प्रतिशब्दों की खोज आवश्यक है, जिनमे ध्वनि-साम्य हो। यह खोज काफी कठिन है—कभी-कभी असम्भव भी। उदाहरण के लिए 'सत्य सनेह सील सुख सागर' के किसी भी भाषा मे अनुवादक को इन पाँचो शब्दो के लिए ऐसे प्रतिशब्द खोजने पड़ेंगे जिनमे आरभिक ध्वनि समान हो। किन्तु स्पष्ट ही यह बहुत कठिन है। अग्रेज़ी की ही बात लें, अग्रेजी मे कम से कम इनके ऐसे पर्याय नही हैं। 'मोहनी मूरत साँवरी सूरति', 'कंकण किंकिनि नूपुर धुनि सुनि', 'विरति विवेक विनय बिज्ञाना' अग्रेज़ी *How high His Highness holds his haughty head* (शेक्सपियर) या ऐसी किसी भी भाषा की आनुप्रासिक सौंदर्ययुक्त पक्ति का दूसरी भाषा में ऐसा अनुवाद कर पाना, जिसमे मूल अलकार अक्षुण्ण रहे, बहुत कठिन है। दूसरे प्रकार के शब्दालकार में यमक और श्लेष हैं। इनका अनुवाद और भी कठिन है। एक-एक उदाहरण पर्याप्त होगे—

यमक—तो पर वारो उरवसी सुनु राधिके सुजान।
तू मोहन के उरबसी ह्वै उरवसी समान।
श्लेष—अजौं तर्यौना ही रह्यो श्रुति सेवक इक अंग।
नाक बास बेसरि लह्यो बसि मुकतन के संग।

स्पष्ट ही किसी भी भाषा में अनुवादक इन अलंकारो को अनुवाद में नहीं ला सकता, क्योंकि इनके इन अर्थों वाले पर्याय दूसरी भाषा में असंभव हैं—

वस्तुत: केवल ऐसी भाषाओं के स्रोत और लक्ष्य भाषा होने पर ही यमक

ग्रौर श्लेष के ग्रनुवाद सभव हैं जिनके शब्द-भडार मे समानता हो। जैसे संस्कृत-हिन्दी, हिन्दी-पंजाबी, बँगला-उडिया। किन्तु इनमें भी इन ग्रलंकारों को ग्रनुवाद मे उतारना तभी संभव होता है, जब ये सज्ञा या विशेषण शब्दों पर ग्राधारित हो। सर्वनाम या क्रिया शब्द पर ग्राधारित होने पर इन्हे उतार पाना संभव नही, क्योंकि प्रायः दो भाषाग्रों मे सर्वनाम ग्रौर क्रिया रूप की समानता नहीं होती। भाशाग्रों का ग्रलग ग्रस्तित्व मूलतः इन्ही के ग्रन्तर पर ग्राधृत होता है।

ग्रर्थालंकारो (ग्रागे इन्हे केवल ग्रलकार कहा जाएगा) की समस्या कुछ दूसरे प्रकार की है। इसमे दो स्थितियाँ सभव हैं—

(क) जब स्रोत भाषा ग्रौर लक्ष्य भाषा में ग्रलकारों (ग्रर्थालकारों) के स्तर पर समानता हो।

(ख) जब समानता न हो।

दोनों मे समानता कई प्रकार की हो सकती है। उदाहरणार्थ—(१) जिन ग्रलकारो का प्रयोग स्रोत भाषा के साहित्य मे होता हो, उन्ही का प्रयोग लक्ष्य भाषा मे भी होता हो। (२) दोनों मे वे प्रयोग समान स्थितियों में होते हों। (३) दोनों में समान उपमानों का प्रयोग होता हो। (४) दोनों में उपमान समान भाव व्यक्त करते हों।

यदि ये चारो समानताएँ हैं तो ग्रनुवादक के सामने कोई जटिल समस्या नही ग्राती। वह, जैसे ग्रन्य वाक्यो के ग्रनुवाद करता है, उसी प्रकार ग्रलकार-युक्त वाक्यों के भी कर देता है, ग्रौर किसी प्रकार की कोई गड़बड़ी नही होती। संस्कृत से हिन्दी में ग्रनुवाद करते समय इन समानताग्रो के कारण ही ग्रनु-ग्रनुवादक को ग्रलकारो के ग्रनुवादो मे कोई विशेष परीशानी प्रायः नही होती। इन चारो में यदि १ तथा २ में समानता नही है या ग्रसमानता है तो भी विशेष परेशानी की बात नही है। लक्ष्य भाषा का पाठक ग्रनुवाद को पढ़कर गुमराह नहीं होता ग्रौर न उसकी रसानुभूति में कोई विशेष व्यवधान उपस्थित होता है, या रसाभास की स्थिति ग्राती है।

३ तथा ४ की ग्रसमानता ग्रनुवादक के लिए टेढ़ी खीर बन जाती है। मान लीजिए स्रोत भाषा में स्त्री के जंघे की उपमा केले के चिकने स्तम्भ से दी गई है, किन्तु लक्ष्य भाषा ऐसे क्षेत्र की है जहाँ केले होते ही नहीं, ग्रतःउस के सौन्दर्य से वे लोग ग्रपरिचित हैं, परिणामतः उनकी भाषा में स्रोत भाषा की उपमा का कोई विशेष ग्रर्थ नहीं है। ग्रनुवादक यदि उसका उसी रूप में

अनुवाद कर दे तो वह उपमान लक्ष्य भाषा-भाषी को अपेक्षित सौन्दर्य-बोध नहीं करा सकता।

वस्तुतः यहाँ भी स्थिति दो प्रकार की हो सकती है। एक तो वह जब स्रोत सामग्री मे प्रयुक्त उपमान से लक्ष्य भाषा-भाषी बिल्कुल अपरिचित हैं, और दूसरी वह जब लक्ष्य भाषा-भाषी उस चीज से परिचित हैं, यद्यपि उस उपमान के रूप मे उससे उनका परिचय नहीं है। पहली स्थिति मे अनुवादक के आगे दो रास्ते हो सकते हैं। वह अलकार को छोडकर उसके भाव को ले ले। जैसे 'जाँघें कदली के खभे की तरह हैं' के स्थान पर 'जाँघे सुडौल, चिकनी, लोमरहित, स्वच्छ तथा कांतियुक्त हैं' या फिर वह जाँघों को कदली के खभे जैसा ही कहे और पाद-टिप्पणी मे या अन्यत्र यह समझा दे कि उस भाषा या साहित्य मे सुन्दर जाँघो की उपमा कदली-स्तंभ से दी जाती हैं, क्यों कि वह सुडौल, चिकना, लोमरहित, स्वच्छ होता है। दूसरी स्थिति मे बिना परिवर्तन के, या पाद-टिप्पणी आदि मे व्याख्या किए, अनुवादक उसका अनुवाद कर सकता है। जैसे 'चाँद सा सुन्दर मुखडा' ऐसे भी लोगो के लिए सौन्दर्य-बोध करा देगा, जिनके साहित्य मे सौन्दर्य के लिए चांद से उपमा देने की परपरा नही है।

अनुवादक के सामने सबसे जटिल समस्या अन्तिम स्थिति में आती है, जब कोई उपमान स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा दोनों मे हो किन्तु दोनो मे उसके द्वारा व्यक्त भाव या विचार असमान या विरोधी हों। उदाहरण के लिए 'उल्लू' हिन्दी मे मूर्खताद्योतक उपमान है, जबकि अंग्रेजी मे वह बुद्धिमता-द्योतक है। हिन्दी मे 'वह मूर्ख है' के लिए प्रायः कहते हैं 'वह उल्लू है' जबकि अंग्रेजी मे कहते हैं—वह उल्लू जैसा बुद्धिमान है (He is as wise as an owl.या He is wise as an owl.)। अब यदि हिन्दी से कोई व्यक्ति अंग्रेजी में या अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद कर रहा हो तो क्या उसे इस उपमान का स्रोत भाषा के अर्थ में प्रयोग करना चाहिए। स्पष्ट ही ऐसा करना न केवल हास्यास्पद होगा अपितु वह भाव-बोध में भी बाधक होगा। ऐसी स्थिति मे अनुवादक के सामने दो ही रास्ते मे। या तो वह अलंकार को छोडकर अलकार द्वारा व्यक्त बात को सीधे शब्दों में (जैसे वह बहुत बुद्धिमान है) कह दे या फिर लक्ष्य भाषा मे उस अर्थ में जिस उपमान का प्रयोग होता हो, उसका प्रयोग करे।

हिन्दी मे सौन्दर्य के लिए कामदेव से उपमा दी जाती है : 'वह कामदेव जैसा सुन्दर है।' मान लीजिए इसका अनुवाद अंग्रेजी में करना है। अंग्रेजी में

रोमियों का प्रेम-देवता क्यूपिड कामदेव का पर्याय है, किंतु वह कामदेव की तरह सौन्दर्य का उपमान नही है। पहले क्यूपिड स्वरूप की दृष्टि से बड़ा ही भयावह माना जाता था। अर्थात् कामदेव का ठीक उलट था, अब वह बालक रूप में माना जाता है। इस प्रकार सौन्दर्य-बोध की दृष्टि से अग्रेज़ी मे उपमान रूप में उस का प्रयोग बिल्कुल भी सार्थक नही है। ग्रीक पौराणिक कथा मे अपोलो (Apollo) सूर्यदेवता हैं, जो काव्य, सगीत, औषधि तथा धनुर्विद्या आदि अधिष्ठाता माने जाते हैं, और जो सुन्दर भी कहे जाते हैं। उन्हे कामदेव के स्थान पर रखा जा सकता है या फिर as handsome as a god भी कहने की परम्परा है, अतः उसका प्रयोग भी किया जा सकता है।

मान लीजिए किसी की अत्यधिक कोमलता को लक्ष्य करके किसी ने कहा है 'वह छुई मुई है'। इसे अग्रेज़ी मे उतारना है। 'छुई मुई' को अग्रेज़ी में tuch-me-not, mosa या mimosa pudica कहते हैं। किन्तु इनमें किसी को भी कोमलता के प्रतीक के रूप मे अंग्रेज़ी परम्परा मे नही माना गया है। ऐसी स्थिति में यदि अनुवादक इनमे किसी का प्रयोग करेगा तो अंग्रेज़ी पाठक तक उसका कथ्य नही पहुँच सकेगा। उसे शायद she is delicate as a flower. या इसी तरह कुछ कहना पड़ेगा।

ढालना पड़ता है।[१] उमर खय्याम के प्रसिद्ध अनुवादक फिट्जजेराल्ड तथा अनेक अन्य काव्यानुवादकों ने ऐसा ही किया है। यदि कोई व्यक्ति मूल रूबाइयो को अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ रखे तो कभी-कभी तो यह कहना भी कठिन हो जाता है कि वह अनुवाद भी है। ऐसे ही अनुवादों को देखकर इटली में कहावत प्रचलित हुई होगी—अनुवादक वचक होते हैं (त्रादुतोरे त्रादुतोर), क्योंकि माना जाता है कि अनुवादक किसी और की बात को अपने शब्दो में कह रहा है, किन्तु वह मूल को आधार मानकर कभी-कभी अपनी बात—जैसा कि फिट्जजेराल्ड ने किया था—कहने लगता है, और इस तरह वह एक प्रकार का धोखा देता है।

अनुवादक की यह वचकता अनुवाद को कभी-कभी मूल से काफी अलग खीच ले जाती है। पिछले युद्ध के जमाने मे गेहूँ के आटे की कमी हो गई थी अत. शकरकद का आटा दूकानों पर बिकता था। शकरकद के लिए अंग्रेज़ी में 'स्वीट पोटैटो' शब्द है। अंग्रेज़ी के इस शब्द का अनुवाद करके अनेक दुकानो पर हिन्दी में बोर्ड लगा था 'मीठे आलू का आटा'। अनुवादो से ऐसे हजारो उदाहरण खोजे जा सकते हैं।

एक बार अनुवादन की इस विडबना या इस वंचकता की सीमा देखने के लिए मैंने शातिप्रिय द्विवेदी के कुछ लेखो के कुछ सुदर अशो का अंग्रेज़ी, फ्रासीसी, जर्मन, रूसी, तमिल, चीनी तथा जापानी मे अनुवाद करवाया। इन भाषाओं से उन अशो का फिर हिन्दी में दूसरे अनुवादकों से अनुवाद कराया, और फिर अन्य अनुवादको से उनका पुनः इन भाषाओं में अनुवाद करवाया गया तथा फिर इन भाषाओं से इन्हे कुछ अन्य अनुवादको से हिन्दी मे लाया गया। अन्त में इनकी आपस मे, तथा मूल सामग्री से तुलना पर यह पता चला कि मूल एकता का लगभग ५० प्रतिशत अश भिन्नता मे परिवर्तित हो चुका था। यह है अनुवादक की वचकता और अनुवादन की विडबना।

किन्तु इन सब बुराइयो एव कठिनाइयों के बावजूद अनुवाद अनेक दृष्टियों मे विश्व को एक-सूत्र मे बांधे हुए है, उसके सहारे ही भिन्न भाषा-भाषी न केवल कधे से कधा मिलाकर विश्व को आगे बढ़ा रहे हैं अपितु एक दूसरे के सुख-दुख को अपना मानकर तादात्म्य का भी अनुभव कर रहे हैं। अत. सारी विडंबनाओ के बावजूद अनुवाद आज के युग की अनिवार्य आवश्यकता बन चुका है, और उसे लाख गाली देकर भी हम उससे पीछा नहीं छुड़ा सकते।

१. I am persuaded that—the translator must recast the original into his own likeness—better a live sparrow than a stuffed eagle.—Fitzgerald.

२५

# असफल साहित्यकार अनुवादक हो जाता है !

साहित्य-जगत मे प्राचीन काल से ही इस प्रकार की अनेक मान्यताएँ प्रचलित रही हैं जो इक्के-दुक्के आधारो पर ही ग्रन्थिवाले लोगो द्वारा व्यक्त की गई हैं तथा जिनमें कोई तत्व की बात नही है। हिन्दी जगत में जब आलोचना का प्रचार हुआ तथा अनेक आलोचक इस क्षेत्र में आने लगे और कवियो और कथा-नाटक लेखकों के गुण-दोषो का विवेचन होने लगा तो साहित्यकार अपने दोषो को देखकर बहुत खीझा और उसने कहना शुरू किया 'असफल साहित्यकार आलोचक बन जाता है'। पश्चिम मे भी इस प्रकार की बातें समय-समय पर कही जाती रही हैं। हिन्दी का ही दूसरा उदाहरण ले तो अनेक तथाकथित साहित्यकार यह कहते रहे हैं कि जो साहित्य के क्षेत्र मे सफल नहीं हो सका, भाषाशास्त्री बन बैठा। अनुवाद को लेकर भी इस प्रकार की अनेक बातें यूरोप मे तथा अन्यत्र कही जाती रही हैं। डेनहम ने लिखा है—

Such is our pride, our folly, or our fate,
The few, but such as can not write, translate.

फ्रैंकलिन ने भी लगभग इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए थे—

......hands impure dispense
The sacred steams of ancient eloquence,
Pedants assume the tasks for scholars fit,
And blockheads rise interpreters of wit.

इसमे कोई भी सन्देह नही कि अन्य अनेक क्षेत्रों की भाँति अनुवाद के क्षेत्र मे भी ऐसे लोग हैं जो प्रतिभाशाली नहीं हैं, या जिन्हें कोई और काम में *सफलता नहीं मिली तो अनुवादक बन बैठे,* किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि सारे के सारे अनुवादक ऐसे ही हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द तथा बच्चन जैसे उच्च कोटि के साहित्यकारो ने भी अनुवाद किए हैं, और

अच्छे अनुवाद किए हैं। वस्तुतः कोई आवश्यक नहीं कि असफल साहित्यकार बढ़िया अनुवादक हो या सफल साहित्यकार घटिया अनुवादक हो। चारों बातें देखने में आती हैं. बहुत से लोग साहित्य-रचना में सफल नहीं होते किन्तु अनुवाद में बहुत सफल होते हैं, बहुत से लोग साहित्य-रचना तथा अनुवाद दोनों में सफल होते हैं, बहुत से लोग साहित्य-रचना तथा अनुवाद दोनों में असफल होते हैं और बहुत से लोग साहित्य-रचना में सफल होते हैं किन्तु अनुवाद में असफल रहते हैं। वस्तुतः मौलिक साहित्य-लेखन तथा अनुवाद के लिए हर दृष्टि से समान गुणों की आवश्यकता नहीं है, इसीलिए दोनों क्षेत्रों में सफलता-असफलता प्रायः एक-दूसरे से बहुत अधिक सम्बद्ध नहीं है।

## २६

# अनुवाद और अनुवाद-चिंतन की परम्परा

भाषा का जन्म व्यक्तियों में आपसी विचार-विनिमय के प्रयत्न से हुआ तो अनुवाद का जन्म दो भाषा-भाषी व्यक्तियों या समुदायों में विचार-विनिमय सम्भव बनाने के लिए। इसका प्रारम्भ कदाचित् ऐसे व्यक्तियों मे हुआ होगा जो भाषा-क्षेत्रों की सीमा पर रहने के कारण दो या अधिक भाषाओं के जानकार रहे होंगे तथा आवश्यकता पड़ने पर उन विभिन्न भाषाओं के व्यक्तियों के बीच दुभाषिए का काम करते रहे होंगे। प्राचीनतम दुभाषिए ऐसे लोग भी हो सकते हैं, जो मूलतः किसी अन्य भाषा के भाषी रहे होंगे, किंतु किसी अन्य भाषा के क्षेत्र में रहने के कारण वहाँ की भी भाषा सीख गए होंगे। इस बात का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि अनुवाद की प्राचीनतम परम्परा का प्रारम्भ भाषा के जन्म के कुछ ही समय बाद हो गया होगा। अनुवाद की यह परम्परा बहुत दिनों तक मौखिक रही होगी। बाद में लिपि के प्रचार के बाद लिखित अनुवाद की परम्परा चली होगी। किंतु यह मात्र अनुमान है। उतनी पुरानी परम्परा के किसी प्रमाण के मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता।

ईसा से लगभग तीन हज़ार वर्ष पूर्व असीरिया का राजा सैरगोन (Sargon) अपने बहुभाषा-भाषी साम्राज्य में अपने वीरतापूर्ण कार्यों की घोषणा विभिन्न भाषाओं में कराया करता था। ये घोषणाएँ मूलतः वहाँ की राजभाषा असीरियन में लिखी जाती थीं और फिर विभिन्न भाषाओं में अनूदित होती थीं। विश्व में अनुवाद का अब तक ज्ञात यह प्राचीनतम उल्लेख है। इसी प्रकार लगभग इक्कीस सौ वर्ष ईसवी पूर्व हम्मूरबी (Hammurobi) के शासनकाल में बेबीलोन एक बहुभाषा-भाषी नगर था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि वहाँ भी राज्यादेशों के अनुवाद जनता के लाभार्थ विभिन्न भाषाओं में कराए जाते थे। पुराने अनुवादकों के उपयोग के लिए कुछ कोशकारों ने विभिन्न भाषाओं के तुलनात्मक कोश भी बनाए थे, जिनमें से कुछ क्यूनीफार्म लिपि में ठीकरों पर मिले भी हैं। चौथी-पाँचवीं सदी ई० पू० में यहूदियों में सामूहिक रूप से

धर्मशास्त्र सुनाने की परम्परा थी। सुनने वालों में कभी-कभी ऐसे लोग भी होते थे जो हिब्रू अच्छी तरह नही समझ पाते थे। उन्हें दुभाषिये आर्मेइक भाषा में अनुवाद करके समझाते थे।

ये अनुवाद के बारे मे सूचनाएँ मात्र थी। वास्तविक अनुवाद अभी तक बहुत पुराना नहीं मिला है। विश्व का प्राचीनतम प्राप्त अनुवाद दूसरी सदी ई० पू० का है जो रोजेटा प्रस्तर (Rosetta stone) पर है। इसमें हीरोग्लाइफिक तथा देमॉतिक (मिस्र की दो प्राचीन) लिपियों मे मिली इतिहास तथा सस्कृति सम्बन्धी मूल सामग्री है तथा साथ ही उसका यूनानी भाषा मे अनुवाद भी है।

यूनान

फुटकर उदाहरणों की बात छोड दें तो पश्चिम मे अनुवाद की व्यवस्थित परम्परा बाइबिल के अनुवादो से चली। बाइबिल की पुरानी पोथी (Old Testament) की भाषा हिब्रू है। मिस्र तथा एलेक्जेंड्रिया में ऐसे काफी यहूदी थे जो यूनानी भाषा-भाषी थे, तथा जिन्हे हिब्रू नही आती थी। इनके लिए यूनानी में पुरानी पोथी के अनुवाद की आवश्यकता प्रतीत हुई। परिणामतः तीसरी-दूसरी सदी ई० पू० मे इसके कई यूनानी अनुवाद किए गए। ऐसे अनुवादो मे सेप्तुआगिंत (Saptuagint) नामक अनुवाद प्राचीनतम है। कहा जाता है कि बहत्तर अनुवादको ने इसे बहत्तर दिन मे पूरा किया था। यह अनुवाद बहुत ही शाब्दिक है। इसीलिए इस अनुवाद की शैली यूनानी भाषा की प्रकृत शैली से भिन्न है तथा सेमिटिक शैली के अपेक्षाकृत अधिक अनुरूप है। ऐसे ही पुरानी पोथी का दूसरी सदी मे अक्विला (Aquila) ने यूनानी मे अनुवाद किया था जो इतना शब्द-प्रति-शब्द है कि शैली बहुत अटपटी हो गई है, अनेक स्थल बिल्कुल ही अबोधगम्य हैं, तथा कभी-कभी तो अनुवाद मे मूल भाव आ ही नहीं सका है।

प्राचीन यूनानियों मे बाइबिल के अनुवाद को लेकर दो सिद्धान्तो का भी उल्लेख किया जाता है. अनुवाद का भाषावैज्ञानिक सिद्धान्त (Philological theory of translation तथा अनुवाद का प्रेरणात्मक सिद्धान्त (Inspirational theory of Translation)। पहले के अनुसार अनुवादक को दोनों भाषाओं का अधिकारी विद्वान होना चाहिए, ताकि वह सहज भाषांतर कर सके, दूसरे के अनुसार बाइबिल का ठीक अनुवाद केवल भाषा-ज्ञान तथा विषय-ज्ञान से नहीं हो सकता। उसके लिए यह भी आवश्यक है कि अनुवादक

ईश्वर की प्रेरणा के वशीभूत हो। यह पुनीत कार्य दैवी प्रेरणा के बिना सम्भव नहीं है।

प्राचीन यूनानियों में (तथा रोमियों में भी) बाइबिल के अनुवाद को लेकर एक अन्य दृष्टि से भी दो मान्यताओं का उल्लेख मिलता है। धर्म के अंधभक्त धार्मिक मंत्र की तरह बाइबिल के शब्दों तथा उसके क्रम को महत्व-पूर्ण मानते थे। इसीलिए वे शब्दानुवाद के पक्षपाती थे—ऐसा शब्दानुवाद जिसमें शब्द के लिए शब्द हो, साथ ही यथासाध्य शब्दों का क्रम भी प्रायः मूल के समान ही हो। अर्थात् शब्दों तथा शब्द-क्रमों के परिवर्तन से बाइबिल के पाठ को धार्मिक दृष्टि से क्षति पहुँचने की उन्हें आशंका थी। एक अन्य दृष्टि से भी कुछ लोग बाइबिल के शब्दानुवाद के पक्षपाती थे। उनका विश्वास था कि भावानुवाद से बाइबिल को समझना सरल हो जाएगा अतः गैरईसाई भी उसे पढ सकेंगे। किन्तु ऐसा होना नहीं चाहिए। बाइबिल धार्मिक ग्रन्थ है और उसका मंत्र की तरह महत्व है अतः गोपनीयता की रक्षा के लिए उस के अनुवाद को कुछ असरल तथा अटपटा होना ही चाहिए, ताकि ईसाइयों को छोड़कर अन्य लोग उसे कम से कम पढ और समझ सकें। इसके विपरीत कुछ लोग ऐसे थे जिनका बल इस बात पर था कि मूल सामग्री का भाव अनुवाद में आना चाहिए और इसके लिए लक्ष्य भाषा की प्रकृति को देखते हुए शब्दों तथा शब्द-क्रमों आदि में परिवर्तन आवश्यकतानुसार किया जा सकता है।

यूनानी के प्राप्त प्राचीन सहित्य में और कोई अनूदित कृति नहीं है। वस्तुतः विश्व में विभिन्न क्षेत्रों में यूनानी उस जमाने में अग्रणी थे, अतः उस समय तक उन्हें कदाचित् किसी अन्य भाषा से कुछ लेने या अनुवाद करने की कोई खास आवश्यकता नहीं पडी थी।

## रोम

अनुवाद की परम्परा में यूनानियों के बाद रोमियों का नाम आता है। रोमियों द्वारा अनूदित ग्रन्थों को मुख्यतः दो वर्गों में रखा जा सकता है: (क) धार्मिक; (ख) अन्य

पहले 'अन्य' को लिया जा रहा है। इसमें काव्य, नाटक आदि साहित्यिक ग्रन्थ तथा तत्वदर्शन एवं समाजदर्शन आदि के चिंतन-प्रधान ग्रन्थ आते हैं। इन क्षेत्रों में यूनानी अपने समय के अग्रणी थे, अतः मुख्यतः उन्हीं के ग्रन्थों के लैटिन में अनुवाद हुए। उदाहरण के लिए लगभग २४० ई० पू० में लिवि-

अस ऐन्ड्रोनिकस (Livius Andronicus) ने होमर की ऑदिसी (Odyssey) का लैटिन छन्दों मे अनुवाद किया, नएविअस (Naevius) तथा एनिअस (Ennius) ने कई यूनानी नाटकों के अनुवाद किए, तथा सिसरो (पहली सदी ई० पू०) ने प्लेटो के प्रोतागोरस (Protagoras) तथा कुछ यूनानी कृतियों को लैटिन से भाषांतरित किया। रोमियों ने अनुवाद तो किए ही, इसके साथ-साथ अनुवाद विषयक विभिन्न समस्याओं का गम्भीर अध्ययन भी किया। इस दृष्टि से मुख्यतः क्विन्तिलियन, होरेस, सिसरो, तथा कैतुलस आदि के नाम लिए जा सकते हैं। इनमें सिसरो का नाम विशेष रूप से उल्लेख्य है। वह अनुवाद की कठिनाइयों से तथा अपने पूर्ववर्ती लोगों द्वारा किए गए शब्दानुवाद की कमज़ोरियों से भली-भाँति परिचित था। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा है 'आप जैसे लोग······अनुवाद मे जिसे मूलनिष्ठता कहते हैं, विद्वान् उसे घातक बारीकी मानते हैं। स्रोत भाषा की अभिव्यक्ति के लालित्य को अनुवाद मे सुरक्षित रख पाना प्रायः सम्भव नही हो पाता······यदि मैं शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद करूँ तो अनुवाद अटपटा होगा और यदि आवश्यकता से विवश होकर मैं पदक्रम या शब्दों में परिवर्तन करूँ तो ऐसा लगेगा कि मैंने अनुवादक का धर्म नहीं निभाया।'[1] इस तरह अनुवादक के रास्ते मे इधर कुँआ उधर खाई' वाली स्थिति से वह भली-भाँति परिचित था।

जहाँ तक धार्मिक ग्रन्थों के अनुवाद का प्रश्न है ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ लैटिन मे भी बाइबिल की माँग होने लगी थी। इस माँग की पूर्ति के लिए रोमियो ने लैटिन मे अनेक अनुवाद किए, जिनमें सबसे प्रसिद्ध चौथी सदी के सेंट जेरोम (Jerome) द्वारा किया गया अनुवाद है। उस समय तक बाइबिल के पूर्ण या अपूर्ण कई अनुवाद जॉर्जिअन, इथिया-पिअन, कॉप्टिक, गॉथिक तथा आर्मीनियन आदि मे हो चुके थे। जेरोम ने बाईबिल-अनुवाद की परम्परागत शाब्दिक अनुवाद वाली शैली छोड़ भाव-के लिए-भाव या अर्थ-के लिए-अर्थ वाली शैली अपनायी (Sense for sense and

---

1 What men like you · call fidelity in translation, the learned term pestilent minuteness·· it is hard to preserve in a translation the charm of expression which in another language are most felicitous · ··If I render word for word, the result will sound uncouth, and if compelled by necessity I alter anything in order or wording, I shall seem to have departed from the function of a translator.

not word for word)। जैसा कि स्वाभाविक था धर्मांध लोगों ने उसे धर्मद्रोही कहा तथा उसके पूरे जीवन उसका विरोध करते रहे। जेरोम विश्व का प्रथम ज्ञात व्यवस्थित और वैज्ञानिक अनुवादक है। उसे अनुवाद का मसीहा कहें तो अत्युक्ति न होगी। जेरोम ने अनुवाद तो किया ही, साथ ही अनुवाद-विषयक समस्याओं पर विचार भी किया।

जेरोम का समकालीन एक दूसरा प्रसिद्ध अनुवादक तथा अनुवादविज्ञान-वेत्ता रुफिनस (Rufinus) था, जो अनुवाद में जेरोम से भी अधिक स्वच्छंदता का पक्षधर था। जेरोम ने कुछ बातों को लेकर इसकी आलोचना भी की है।

इस तरह अनुवाद की परम्परा का प्रारम्भिक विकास यूनानियों तथा रोमियों ने किया। इस दिशा में अग्रणी यद्यपि यूनानी थे, किन्तु रोमियों ने अपना रास्ता स्वयं बनाया और उनकी अनुवाद-कला तथा सम्बद्ध समस्याओं का चिन्तन यूनानियों से कहीं आगे था। इसका मुख्य कारण कदाचित् यह था कि यूनानियों ने केवल बाइबिल की पुरानी पोथी के अनुवाद किए, जबकि रोमियों ने विभिन्न विषयों की अनेक पुस्तकों के अनुवाद किए, अतः उन्हें अधिक अनुभव करने का अवसर मिला। दोनों में मुख्य अन्तर यह है कि यूनानियों के अधिकांश अनुवाद शब्द-के लिए-शब्द पद्धति के हैं, जब कि रोमियों के अर्थ-के लिए-अर्थ पद्धति के। रोमियों के अनुवादों में भी बाइबिल के अनुवाद उतने अच्छे नहीं हैं, जितने अन्य ग्रन्थों के। इसका कारण यह है कि अन्य ग्रन्थों के अनुवाद में धार्मिक बन्धन नहीं थे, अतः मुक्त होकर अच्छा अनुवाद किया जा सकता था।

### अरब

अरब में भी प्राचीन काल में अनुवादों की बड़ी समृद्ध परम्परा मिलती है। वस्तुतः प्राचीन अरब, ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में बहुत रुचि लेते थे इसी कारण जहाँ भी उन्हें कुछ नया मिला उन्होंने अनुवादों के द्वारा उससे अपने वाङ्मय को समृद्ध बनाने का यत्न किया। सबसे अधिक अनुवाद उन्होंने भारतीय तथा यूनानी कृतियों के किए।

भारत से अरब का सम्बन्ध बहुत प्राचीन है। सिंध पर तो उनका अधिकार भी था। अरबों को ज्यों ही संस्कृत वाङ्मय की समृद्धि का पता चला उन्होंने सिंधी ब्राह्मणों की सहायता से उनके अनुवाद करवाने शुरू कर दिए। ये अनुवाद मुख्यतः ८वीं-९वीं-१०वीं सदियों में हुए। अनूदित ग्रन्थ अंकगणित, रेखागणित, खगोलविज्ञान, ज्योतिष, चिकित्सा, सर्पशास्त्र, संगीत, रसायन-

शास्त्र, तर्कशास्त्र, जादू, भाषणकला, नीति-कथा आदि के थे, जिनमें से मुख्य बृहस्पति सिद्धान्त, सुश्रुत, चरक, विषविद्या, महाभारत (अंशत), अर्थशास्त्र तथा पचतन्त्र आदि हैं।

९वीं १०वीं सदी में यूनानी वाङ्मय के प्लेटो, अरस्तू आदि सभी कृती लेखकों की महत्वपूर्ण कृतियों के बगदाद मे अरबी अनुवाद किए गए।

अरबी अनुवाद के सम्बन्ध मे दो-तीन बातें उल्लेख्य हैं। एक तो यह कि सारे-के-सारे अनुवाद भावानुवाद हैं। प्रयास केवल बात, तथ्य तथा कथा आदि को स्वच्छन्द रूप से धारा-प्रवाह अरबी मे उतारने का है। शब्द-प्रति-शब्द का आग्रह बिल्कुल नही है। दूसरे, प्राचीन काल मे अरब ही एकमात्र ऐसा देश है जहाँ अनुवाद का काम किसी संस्था को सौंपा गया ताकि वह व्यवस्थित रूप से हो सके। खलीफा अल-मामून ने ८३० ई० मे 'बैतुल हिक्मा' (ज्ञान-गृह) नामक एक संस्था स्थापित की, जिसका कार्य उच्च अध्ययन, शोध तथा अनुवाद आदि था। अन्तिम बात यह है कि गणित, ज्योतिष, नीतिकथा आदि मे यूरोप पर भारतीय प्रभाव मुख्यत. इन अरबी अनुवादो से ही होता पड़ा था।

### स्पेन, जर्मनी, फ्रांस आदि

मध्य युग मे अनुवाद की यूनानियो तथा रोमियो की परम्परा आगे बढती रही। पश्चिमी यूरोप मे ग्रीक मे लिखे गए धार्मिक निबन्धो के पादरियों द्वारा प्रयुक्त शुष्क लैटिन मे अनुवाद हुए। बेदे (Bede) ने ७३५ ई० में जॉन के गास्पल का अनुवाद किया। १२वीं सदी में स्पेन का तोलेदो विद्या का एक बहुत बडा केन्द्र बनने के साथ-साथ यूनानी भाषा के गौरव ग्रन्थों के लैटिन अनुवाद का भी केन्द्र बन गया। ये ग्रन्थ प्रायः सीधे यूनानी से अनूदित न होकर अरबी या सीरियाई आदि भाषाओ के माध्यम से होते थे। कुछ ग्रन्थों के तो यूनानी से सीरियाई मे, सीरियाई मे अरबी मे, और फिर अरबी मे लैटिन मे अनुवाद हुए। अनुवाद-कला की दृष्टि मे इस काल मे विशेष चिंतन तो नहीं हुआ, किन्तु अपवादत. कुछ लोगों ने इस दिशा में भी विचार व्यक्त किए। उदाहरण के लिए १२वीं सदी के अन्त मे मैमोनिदस (Maimonides) ने अनुवाद मे शब्द-के लिए-शब्द-पद्धति का विरोध किया, क्योंकि इससे अनुवाद मे प्रायः अव्यवस्थितता और संदिग्धता दोष आ जाता था।

पुनर्जागरण काल मे यूरोप का ध्यान अपने प्राचीन काल पर गया और प्राचीन काल मे यूनान, साहित्य और संस्कृति का आकर्षक भंडार था ही, अतः यूरोपीय भाषाओ मे यूनान के गौरव ग्रन्थो के अनुवादों की एक बाढ़-

सी आ गई। किन्तु अनुवाद कला की दृष्टि से ये अनुवाद बहुत अच्छे स्तर के न थे। इनकी तुलना में बाइबिल आदि धार्मिक साहित्य के अनुवाद कहीं अच्छे थे, क्योंकि इनके अनुवादक धर्म-भावना के कारण अधिक सतर्कता और निष्ठा के साथ अपना कार्य करते थे।

१६वीं सदी में अनुवाद के क्षेत्र में, पूरे यूरोप में सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति प्रोटेस्टेंट धर्म के समर्थक जर्मनी के मार्टिन लूथर (१४८३-१५४६) थे। उनके पहले फ्रांसीसी, अंग्रेजी, डच, चेक, जर्मन आदि भाषाओं में बाइबिल की नई पोथी के अनुवाद हो चुके थे। लैटिन के समझने वाले कम होते जा रहे थे, और विभिन्न देशों की भाषाओं का महत्व राजनीतिक कारणों से बढ़ता जा रहा था। उस काल में भी अनुवाद के क्षेत्र में शब्द-प्रति-शब्द और भाव-प्रति भाव का विवाद समाप्त नहीं हुआ था। एक ओर निकोलस फ़ॉन वाइल (Nicolas von Wyle) शब्द-प्रति-शब्द का समर्थन कर रहे थे तो दूसरी ओर बुद्धिवादी नेता एरासमस (Erasmus) की मान्यता 'भाव-प्रति-भाव' का प्रभाव अनुवाद-क्षेत्र में बढ़ता जा रहा था। पुराने शब्दानुवादों की तुलना में अनुवाद को अर्थयुक्त (Meaningful) बनाने पर बल दिया जा रहा था। लूथर ने जर्मन भाषा में १५२२ ई० में बाइबिल की नई पोथी का अनुवाद प्रकाशित किया। १५३४ तक उनकी पूरी बाइबिल आ गई। किसी अनुवाद का किसी भाषा पर इतना प्रभाव नहीं पड़ा होगा जितना लूथर की बाइबिल का जर्मन भाषा पर पड़ा। स्त्री-पुरुष, बड़े-छोटे सभी उसे पढ़ने लगे, और जर्मन भाषा का परिनिष्ठित रूप उसी के आधार पर निश्चित हुआ। मार्टिन लूथर पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने अनुवाद में बोधगम्यता पर पूरा बल दिया। यह शायद तत्कालीन ऐसे शब्दानुवादों की प्रतिक्रिया थी जो मूलनिष्ठता के नाम पर अधिकांशतः अबोधगम्य होते थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि बाइबिल के अनुवाद का अर्थ है लक्ष्य भाषा-भाषी तक बाइबिल की बातों को पहुँचा देना। यदि अनुवाद ऐसा नहीं कर सका तो उसका होना-न-होना बराबर है। मार्टिन लूथर ने अनुवाद-सिद्धान्त के रूप में ७-८ बातें हैं : (१) अनुवाद पूर्णतः बोधगम्य होना चाहिए। (२) मूल पाठ के शब्द-क्रम को आवश्यक होने पर परिवर्तित कर देना चाहिए। (३) अपेक्षित अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए ऐसे सहायक शब्द (सहायक क्रिया आदि) अनुवाद में जोड़े जा सकते हैं, जो मूल पाठ में नहीं हैं। (४) मूल पाठ में अप्रयुक्त संयोजक-वियोजक आदि भी अनुवाद में प्रयुक्त किए जा सकते हैं। (५) स्रोत भाषा के ऐसे शब्द जिनके समानार्थी लक्ष्य भाषा में न उपलब्ध हों छोड़ दिए

जा सकते हैं। (६) मूल में यदि कोई ऐसा आवश्यक शब्द है, जिसे छोड़ा नहीं जा सकता, और जिसका निकटतम समतुल्य लक्ष्य भाषा में नहीं है, तो उसे पदबन्ध (फ्रेज) आदि के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। (७) आलंकारिक अभिव्यक्ति का अनुवाद अनालंकारिक अभिव्यक्ति में तथा अनालंकारिक अभिव्यक्ति का अनुवाद आलंकारिक अभिव्यक्ति में किया जा सकता है। (८) यदि मूल के कई पाठ तथा भाष्य उपलब्ध हों तो अत्यन्त सावधानी से अनुवाद में उन सबका उपयोग किया जाना चाहिए। उपर्युक्त आठों में लूथर के अनुवाद-विषयक सिद्धान्तों के रूप में पहली का उल्लेख लोगों ने प्रायः नहीं किया है, किंतु लूथर ने इस पर बहुत बल दिया है, अतः इसे भी ले लेना यहाँ उचित समझा गया है। अंतिम बात बाइबिल जैसी पुरानी कृतियों के प्रसंग में ही सार्थक हैं, जिनके कई पाठ तथा भाष्यादि हों।

लूथर के समकालीन प्रसिद्ध फ्रांसीसी विचारक, लेखक तथा अनुवादक एतीने दोले (Etienne Dolet १५०९-१५४६) अनुवाद-सिद्धान्त के प्रथम व्यवस्थित प्रतिपादक कहे जा सकते हैं। उन्होंने १५४० में अनुवाद के सिद्धांतों पर संक्षिप्त किन्तु बड़ा ही वैज्ञानिक निबन्ध प्रकाशित किया। निर्भीक विचारक तथा स्पष्टवादी दोले तत्कालीन कई बौद्धिक तथा राजनीतिक विवादों में पड़ गए और उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। अन्त में प्लेटो के कुछ अंशों का गलत अनुवाद करके अधर्म प्रचारित करने का दोषी ठहराकर शासन ने बहुत यन्त्रणा देते हुए गला घुंटवाकर उन्हें मरवा डाला तथा उनके शव को उनकी सारी रचनाओं के साथ जलवा दिया। श्रेष्ठ अनुवादक दोले ने अनुवाद के मूलभूत सिद्धान्तों को संक्षेप में पाँच शीर्षकों के अन्तर्गत रखा है: (१) अनुवादक को मूल रचना के भाव तथा मूल लेखक के उद्देश्य को भलीभाँति जान लेना चाहिए। (२) अनुवादक का स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा दोनों पर समान रूप से बहुत ही अच्छा अधिकार होना चाहिए। (३) अनुवाद को यथासाध्य शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद से बचना चाहिए, क्योंकि शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद से एक ओर तो मूल रचना के अभिव्यक्ति-पक्ष का सौंदर्य नष्ट हो जाता है तथा दूसरी ओर मूल कथ्य को भी क्षति पहुँचती है। (४) अनुवादक को बोलचाल की भाषा का प्रयोग करना चाहिए। (५) अनुवादक को 'शब्द-चयन तथा वाक्य में पदक्रम' द्वारा समवेततः ऐसा प्रभाव उत्पन्न करना चाहिए जो मूल के पूर्णतः अनुरूप हो। दोले की इस अन्तिम बात का अर्थ यह है कि अनुवादक की शैली ऐसी होनी चाहिए जो मूल के स्वर के पूर्णतः अनुरूप हो।

लूथर तथा दोले के अनुवाद-सिद्धान्त वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक थे, किन्तु उनका उचित स्वागत नही हुआ। ग्रिगोरी मार्टिन (Gregory Martin) जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियों ने विरोध किया। उनके अनुसार धर्मग्रन्थो के अनुवाद में चर्च के लोगो का निर्णय ही अन्तिम होना चाहिए तथा अनुवाद को उन्ही का अनुसरण करना चाहिए, किन्तु इसके विपरीत विलियम फुल्के (W.Fulke) जैसे कुछ लोगों ने कुछ समर्थन भी किया। फुल्के का कहना था कि चर्च की परम्परा चाहे कुछ भी रही हो, धर्मग्रन्थो के अनुवादक को बोलचाल की भाषा अपनानी चाहिए तथा शब्द-प्रति-शब्द न चलकर, भाव को दृष्टि मे रखते हुए बोधगम्य अनुवाद करना चाहिए।[1]

बाइबिल का एक बहुत ही अच्छा अनुवाद कैसिओदोरो दे रीना (Casio-*doro de Reina*) द्वारा १६वी सदी मे स्पैनिश भाषा मे किया गया। यह १५६८ में प्रकाशित हुआ। रीना के मित्र क्रिप्रिआनो दे वेलरा (*Cipriano* de Valera) ने १६०३ में इसका संशोधन किया। इस उत्कृष्ट अनुवाद का प्रभाव निश्चित रूप से पूरे यूरोप के बाइबिल अनुवादों पर पड़ा होता, किन्तु यूरोप के बौद्धिक जीवन मे स्पेन का महत्व धीरे-धीरे समाप्त हो जाने के कारण ऐसा न हो सका।

फ्रांस मे बैतेक्स (Btteux) ने १७६० ई० के आसपास अनुवाद के सिद्धान्तों के विषय मे अपने विचार व्यक्त किए। उनके अनुसार यथा-साध्य वाक्य को अनुवाद में मूलवत् रखना चाहिए, भावो या विचारो का क्रम भी वही रखना चाहिए, अनुवाद के वाक्य लगभग उतने ही लंबे होने चाहिए, जितने मूल सामग्री के हो, तथा भावानुवाद से बचना चाहिए। बैतेक्स आवश्यक होने पर अनुवाद में थोड़ी स्वच्छन्दता के समर्थक थे, किन्तु उनका विचार यह था कि अनुवाद मे छूट बहुत समझ-बूझ कर अत्यन्त सावधानीपूर्वक लेनी चाहिए।

जर्मनी में भी बैतेक्स की भाँति ही मूलनिष्ठ अनुवादों पर ही बल दिया गया तथा अनुवाद मे बहुत स्वच्छंदता अनपेक्षित मानी गई। हर्डर (Herder) तथा श्लेगेल (Schlegel) के अनुवादों से भी यही बात झलकती है।

### इंग्लैंड

इंग्लैंड मे वैसे तो अनुवाद की परम्परा ६वी सदी मे ही प्रारम्भ हो गई

---

१. To translate precisely out of the Hebrew, is not to observe the number of words, but the perfect sense and meaning as the phrase of our tongue will serve to be understood.

थी। ऐल्फ्रेड (८४६-६०१) राजा, योद्धा तथा विद्वान् होने के साथ-साथ अच्छा अनुवादक भी था। उसने बीड के इतिहास तथा कई अन्य ग्रंथों का अनुवाद किया था। तभी से चलते-चलते १५वीं-१६वीं सदी तक अंग्रेजी में अनुवाद की एक सुदृढ परम्परा स्थापित हो गई थी। जॉन विक्लिफ (१३२०-१३८४) ने अंग्रेजी में बाइबिल की नई पोथी का पहला अनुवाद किया। उस के बाद हिब्रू, यूनानी तथा जेरोम के लैटिन अनुवाद के आधार पर अंग्रेजी में बाइबिल के कई अनुवाद आए। यूनानी, लैटिन तथा स्पैनिश आदि कई भाषाओं से अनेक गौरव ग्रंथों के अनुवाद भी प्रकाशित हुए। टॉमस नार्थ ने १५७६ में प्लूटार्क की प्रसिद्ध यूनानियों और रोमनों की जीवनियों का अनुवाद प्रकाशित किया, जिससे शेक्सपीयर ने जूलियस सीज़र आदि अपने कई नाटकों के लिए कथा-वस्तु ली। जार्ज चॉपमैन ने १५६८-१६१६ के बीच होमर के इलियड का अनुवाद पूरा किया। अनुवाद के क्षेत्र में अंग्रेजी की उल्लेख्य उपलब्धि माना जाता है बाइबिल का अधिकृत संस्करण[1] (Authorised Version १६११)। राजा जेम्स प्रथम ने १६०४ में ४७ अनुवादकों को बाइबिल का अधिकृत रूपांतर प्रस्तुत करने के लिए नियुक्त किया था। अधिकृत संस्करण उसी का परिणाम था। वस्तुतः यह आद्यन्त नया अनुवाद नहीं था। जैसा कि इसकी भूमिका में स्पष्ट कहा गया है, यह तब तक के हुए अच्छे अनुवादों के श्रेष्ठतम अंशों का चयन है। इसीलिए इसमें अनुवाद के सिद्धान्त के सम्बन्ध में कोई नई बात नहीं है। बाइबिल का यह रूपांतर काफी अच्छा है, यद्यपि इसकी भाषा बोलचाल की नहीं है। कुछ अन्य दृष्टियों से भी इसकी आलोचनाएँ हुई हैं। बाइबिल के एक प्रसिद्ध विद्वान् ह्यू ब्राउटन ने इसका बड़ा विरोध किया था। उन्होंने कहा था कि इस अनुवाद को देख कर मुझे जो दुख हुआ है, मृत्युपर्यन्त दूर नहीं हो सकता। यह अनुवाद बहुत ही खराब है। मुझे चाहे टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाय किन्तु ऐसा अनुवाद चर्चों के ऊपर थोपने को मेरी आत्मा बर्दाश्त नहीं कर सकती।[2] बाइबिल के

---

१. जवाहरलाल नेहरू इसके सम्बन्ध में 'डिस्कवरी आफ इंडिया' में लिखते हैं—'The hard discipline, reverent approach and the insight of the English translation of the Authorised Version of the Bible, not only produced a noble book, but gave to the English language strength and dignity.

२. The translation bred in me a sadness that will grieve

इस अधिकृत संस्करण का प्रारम्भ में बहिष्कार हुआ, किन्तु अन्त में यह सम्मानित भी हुआ और अनेक सदियों तक अनेक भाषाओं में बाइबिल के अनुवाद इससे प्रभावित होते रहे हैं। आगे चलकर इसके कई संशोधित संस्करण (The English Revised Version, American Revised Version, Revised Standard Version) प्रकाशित हुए, साथ ही बाइबिल के अंग्रेजी अनुवाद के वैयक्तिक प्रयास (जैसे मोफेट तथा नॉक्स आदि के) भी होते रहे।

१७वीं-१८वीं सदी में धर्मेतर ग्रंथों के अनुवाद काफी हुए। उनके अनुवादकों ने अनुवाद में काफी स्वच्छन्दता बरती और शब्दों पर विशेष ध्यान न देकर स्रोत सामग्री की मूल भावना को अनुवाद में अक्षुण्ण रूप से लाने का यत्न किया। मूलतः इस स्वच्छन्दता को लाने का श्रेय आब्राहम कॉउली (A. Cowley) को है। उन्होंने पिंडार (Pindar) के सबोध गीतों (Odes) के अनुवाद में काफी स्वच्छन्दता बरती। इस स्वच्छन्दता के पक्ष में उन्होंने लिखा है—यदि कोई पिंडार के सबोधगीतों का शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद करे तो ऐसा लगेगा कि एक पागल ने दूसरे पागल की रचना का अनुवाद किया है। इसीलिए मैंने अपनी इच्छानुसार लिया, छोड़ा और जोड़ा है।[1] ड्राइडेन (Drryden) ने काउली के अनुवाद को बहुत अच्छा नहीं माना और उसे अनुकरण (imitation) कहा। ड्राइडेन (१६८०) के अनुसार अनुवाद ३ प्रकार के होते हैं: (क) शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद—इसे उन्होंने metaphrase, a word-for-word and line-for-line type of rendering कहा है। (ख) भाव प्रति-भाव अनुवाद—इसे उन्होंने paraphrase कहा है। इसमें शब्द पर बल न देकर भाव पर बल देते हैं। (ग) अनुकरण—इसे उन्होंने imitation कहा है। इसमें अनुवादक

---

me while I breath. It is so ill done. Tell His Majesty that I had rather be rent in pieces with wild horses than any such translation by my consent should be urged upon poor churches.

१. If a man should undertake to trnslate Pindar word for word, it would be thought one mad man had translated another,……I have in these two odes of Pi. dar taken. left out, and added what I please, nor made it so much my aim to let the reader know precisely what he spoke, as what was his way and manner of speaking.

हर शब्द तथा भाव पर ध्यान न देकर पूरी रचना की मूल आत्मा को अनुवाद मे उतारने का यत्न करता है। इसके लिए उसे छोड़ने-जोड़ने का अधिकार होता है। ड्राइडेन ने शब्द-प्रति-शब्द तथा अनुकरण को दो सीमाएँ माना है तथा अनुवाद का ठीक रूप भाव-प्रति-भाव अनुवाद कहा है। उन्होने स्पष्ट कहा है कि शब्द-प्रति-शब्द और अच्छा अनुवाद ये दोनों एक साथ नही हो सकते।[1] ड्राइडन के समकालीन अर्ल रोस्कोमन (Earl Roscommon) की कविता (Essay on translated verse) मे अनुवाद सबधी कुछ बातें सक्षेप मे मिलती हैं।[2] उनके अनुसार अनुवादक को मूल का कथ्य और कथन-शैली दोनों दृष्टियो से अनुकरण करना चाहिए—यह अनुकरण मूल की अच्छाइयो का भी होना चाहिए और कमजोरियो का भी।

१८वी सदी मे अग्रेज़ी मे काफी अनुवादक हुए जिनमे एलेक्जेंडर पोप (Alexander Pope १६८८-१७४४), विलियम काउपर (william Cowper १७३१-१८००), जॉन वेस्ले (Jone Weslay) तथा जॉर्ज कैम्पबेल (George Campbell) का यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। पोप ने इलियड (१७१५-१७२०) तथा ओडेसी (१७२५-१७२६) के अनुवाद प्रकाशित किए। पोप मूलनिष्ठ अनुवाद को श्रेष्ठ मानते थे। शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद तथा जल्दबाजी मे किया गया अविचारित भावानुवाद दोनो के वे विरोधी थे। पोप ने अपनी कारयित्री प्रतिभा को दबाकर होमर को अपने प्रकृत रूप में अनुवाद मे लाने का यत्न किया था, किन्तु उनका अनुवाद मूल से इतना अलग था कि एक आलोचक ने उसे देखकर कहा था—मिस्टर पोप, यह कविता सुन्दर है, किंतु इसे आप होमर की कविता नही कह सकते। काउपर का इलियड का अनुवाद १७९१ मे छपा। भूमिका में उसने कहा है कि मूल के प्रति निष्ठा ही अनुवाद की आत्मा है।[3]

---

१. It is impossible to translate verbally and well at the same time. It is mucb like dancing on ropes with fettered legs. A man may shun a fall by using caution but the grecefulness of motion is not to be expected,

२. Your Author always will be the best advice,
Fall when he falls, and when he rises, rise.

३. Fidelty indeed is the very essence of translation and the term itself implies it.

१७५५ में जॉन वेस्ले का बाइबिल की नई पोथी का अनुवाद प्रकाशित हुआ। यह अनुवाद बहुत अच्छा था तथा अनुवाद कला मे अपने समय से बहुत आगे था। कैंम्पवेल ने १७८६ में अपना गास्पल का अनुवाद प्रकाशित किया। यह दो खडों मे था। पहला खड सात सौ पृष्ठों की भूमिका थी, जिसमें बाइबिल के अनुवादों का इतिहास था, तथा अनुवाद-सिद्धान्त पर विस्तार तथा बड़ी बारीकी मे प्रकाश डाला गया था। इसके पूर्व इस प्रकार का चिन्तन इस विषय पर कहीं भी नही हुआ था। कैम्पबेल ने अपने पहले के बाइबिल अनुवादों की सोदाहरण तथा बड़ी गहराई से समीक्षा की थी तथा अच्छे अनुवाद के लिए तीन बातें आवश्यक मानी थी—(क) मूल के कथ्य को अपरिवर्तित रूप मे अनुवाद में सप्रेषित करना, (ख) लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुरूप अपनी अभिव्यक्ति रखते हुए, यथासंभव मूल की आत्मा और शैली को अनुवाद मे उतारना, (ग) अनुवाद को यथासाध्य मौलिक लेखन जैसा रखना, ताकि वह स्वाभाविक और सहजप्रवाही हो।

अनुवाद के सम्बन्ध मे जिन सैद्धान्तिक चिंतकों की बात ऊपर की गई है, वे सारे-के-सारे मूलतः अनुवादक थे, और उन्होंने भूमिका आदि के रूप मे ही सिद्धान्त-चर्चा की थी। सच्चे अर्थों मे विश्व के प्रथम अनुवाद-सिद्धान्त-शास्त्री टिटलर (Alexander Fraser Tytler) हैं। वे पहले इतिहास के प्राध्यापक थे, और बाद में न्यायाधीश हुए। १७६० मे टिटलर (१७८१-१८१४) ने रॉयल सोसायटी की बैठक मे अनुवाद सम्बन्धी अपना निबन्ध पढा और छद्म नाम से उसे प्रकाशित कराया। उनके मुख्य तीन सिद्धान्त कैंपबेल से बहुत कुछ मिलते-जुलते थे, अत. कैंपबेल ने यह कहना शुरू किया कि इस अज्ञात लेखक ने मूल विचारों को मेरी पुस्तक से चुराया है। इस आरोप के लगते ही टिटलर सामने आये और उन्होंने भी कहा कि उन्होंने विचारों की चोरी नहीं की है, क्योंकि पुस्तक के लेखन के समय उनका कैंपबेल की रचना से परिचय भी नही था। विचार-साम्य का कारण केवल यह है कि कोई भी व्यक्ति अनुवाद-सिद्धान्त के बारे में गहराई से सोचेगा तो उसके परिणाम न्यूनाधिक रूप से लगभग ये ही होंगे। टिटलर की बात सही थी। उनकी पुस्तक को बड़ा आदर मिला। कैंम्पबेल ने केवल धार्मिक साहित्य के अनुवादों को लेकर ही सिद्धांत-विवेचन किया था, किन्तु टिटलर ने अन्य प्रकार के ग्रन्थों के अनुवादों को भी लिया था, इसीलिए उनका ग्रन्थ, अनुवाद की अपेक्षाकृत अधिक व्यापक समस्याओं को अपने में समाहित कर सका था। टिटलर के ग्रन्थ का-

नाम है An Essay on the Principles of Translation. इसमें टिटलर ने अनुवाद के लिए तीन बातें आवश्यक मानी है—(क) अनुवाद में मूल का पूरा कथ्य या भाव आना चाहिए, (ख) अभिव्यक्ति-शैली वही होनी चाहिए जो मूल की हो, (ग) अनुवाद मे मौलिक लेखन-सा सहज प्रवाह होना चाहिए। टिटलर ने पूर्ववर्ती सिद्धान्त-चिन्तकों की समीक्षा करते हुए तथा ग्रीक, लैटिन, स्पैनिश, फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं मे किए गए अनुवादो से उदाहरण देते हुए विषय को इस प्रकार प्रस्तुत किया है, कि एक तरफ तो इस दिशा मे सारा पूर्ववर्ती चिंतन एक स्थान पर सामने आ गया है, और दूसरे सम्बद्ध सारी समस्याओं पर प्रकाश पडा है। टिटलर द्वारा ली गई कुछ मुख्य समस्याएँ ये हैं : अनुवादक को स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा का कितना ज्ञान हो, अनुवादक के लिए भाषा के अतिरिक्त विषय का कितना ज्ञान आवश्यक है, अनुवाद मे मूल की शैली कहाँ तक आ सकती है, स्रोत तथा मूल भाषा में अन्तर का अनुवाद पर क्या प्रभाव पड सकता है, क्या कविता का अनुवाद गद्य मे हो सकता है, अनुवाद में मूल रचना-सा सहज प्रवाह कैसे लाएँ, मुहावरों का अनुवाद कैसे करें तथा श्रेष्ठ अनुवादक के क्या लक्षण हैं, आदि। प्रायः यह माना जाता है कि अनुवाद मे यथासाध्य न कुछ छोडें न कुछ जोड़ें। टिटलर ने कहा है कि यदि मूल भाव की दृष्टि से स्रोत सामग्री मे कुछ अंश अनावश्यक हो तो अनुवादक उसे छोड सकता है, इसी प्रकार यदि मूल कथ्य को अधिक स्पष्ट करने या उस पर कुछ बल देने के लिए कुछ बातें जोड़नी आवश्यक हों तो अनुवादक कुछ अपनी ओर से जोड़ भी सकता है। नाइडा आदि कई आधुनिक अनुवादशास्त्री भी इसे ठीक मानते हैं। इन पंक्तियों का लेखक इससे बहुत सहमत नही है। अनुवादक का कार्य व्याख्या आदि नही। उसे तो मूल को अनुवाद मे यथासाध्य यथावत् उतारने का प्रयास करना चाहिए। मूल लेखक की न तो कमियों को उसे कम करने का अधिकार है और न उसकी विशेषताओं मे वृद्धि करने का। टिटलर ने कहा है कि यदि कोई अंश अस्पष्ट या संदिग्धार्थी हो तो वहाँ अपेक्षित ठीक अर्थ का अनुवाद ही अनुवादक को करना चाहिए। मैं इससे भी सहमत नही हूँ। मूल के गुण-दोष अनुवाद मे रहने ही चाहिए। टिटलर ने एक बात बहुत अच्छी कही है कि अनुवादक को उस चित्रकार जैसा होना चाहिए जो उसी रंग का प्रयोग नही करता जिसका मूल चित्रकार ने किया है, किंतु वह मूल चित्र को देखकर अपने रंगो से ऐसा चित्र बनाता है जो मूल जैसा ही प्रभाव डालता है। वह मूल के स्पर्शों का अनुकर्ता नही होता,

किंतु अपने स्पर्शों से मूल से पूर्ण समानता ला देता है। अनुवादक उसी की भांति मूल की आत्मा को पकड़ता है।

१६ वीं सदी में भी अनुवाद तो होते ही रहे, किंतु, कुछ लोग यह भी कहने लगे, कि, 'अनुवाद करने योग्य' का 'अनुवाद' नहीं किया जा सकता (Nothing worth translating can be translated)। इस सदी में अनुवाद में कुछ लोगों ने तकनीकी सटीकता (Technical Accuracy) पर बहुत बल दिया। अरेबियन नाइट्स के इस प्रकार के कुछ अनुवाद हुए भी हैं, जो तकनीकी दृष्टि से बहुत अच्छे हैं, किंतु उनमें पूर्वी सस्पर्श (eastern touch) बिल्कुल नहीं हैं, जो वस्तुतः अनिवार्यतः आवश्यक है।

प्रसिद्ध आलोचक और कवि मैथ्यू आर्नल्ड (Mathew Arnold १८२२-१८८८) भी अनुवादक तथा अनुवाद-चिंतक थे। उन्होंने होमर के कुछ अंशों को अंग्रेज़ी षट्पदी में रूपांतरित करने का प्रयास किया, तथा १८६०-६१ में 'आन ट्रांसलेटिंग होमर' नामक चार भाषण दिए, जिसमें १६ वीं सदी से उस समय तक अंग्रेज़ी में हुए अनुवादों का मूल्यांकन भी था। फ्रांसिस न्यूमैन का होमर का अंग्रेज़ी में अनुवाद कुछ ही समय पूर्व प्रकाशित हुआ था। न्यूमैन की मान्यता यह थी कि अनुवाद को मूलनिष्ठ होना चाहिए, उसमें मूल रचना की सभी विशेषताओं को आ जाना चाहिए। इसके लिए उसमें होमर की शब्दावली को भी अपने अनुवाद में प्रयुक्त किया, यद्यपि वह तत्कालीन अंग्रेज़ी के लिए बहुत पुरानी थी। आर्नल्ड यद्यपि स्वयं मूलनिष्ठ अनुवादक था, किंतु उसने इस अत्यधिक मूलनिष्ठता की कटु आलोचना की, जिसका उत्तर देने के लिए न्यूमैन ने 'होमरिक ट्रांसलेशन इन थ्यूरी ऐंड प्रैक्टिस—ए रिपलाई टु मैथ्यू आर्नल्ड' नाम की एक पुस्तिका प्रकाशित की। आर्नल्ड के अनुवाद विषयक मुख्य सिद्धांत ये हैं: (१) अनुवाद का मुख्य गुण मूलनिष्ठता है, किंतु उसे न तो अत्यधिक मूलनिष्ठ होना चाहिए न अत्यधिक मूलमुक्त। (२) अनुवाद ऐसा होना चाहिए कि उसे सुन या पढ़कर वही प्रभाव पड़े जो मूल के श्रोताओं या पाठकों पर पड़ता रहा हो। किंतु वह यह भी मानता था यह प्रभाव सामान्य व्यक्तियों के आधार पर नहीं नापा जा सकता। इसके लिए उपयुक्त व्यक्तियों को कसौटी मानना चाहिए।[१] (३) अनुवादक को मूल रचनाकार से तादात्म्य स्थापित कर उसके भाव तथा शैली विषयक मूल बिंदुओं को आत्मसात करके

---

१. A translation should affect us in the same way as the original may be supposed to have affected its first hearers.

लक्ष्य भाषा में उतारना चाहिए। प्रायः मूल लेखक तथा अनुवादक के बीच चिंतन, भाव तथा भाषा आदि का अंतर आ खड़ा होता है, जो तादात्म्य नहीं स्थापित होने देता, और तभी अनुवादक मूल के साथ न्याय नहीं कर पाता। (४) मूल का कथ्य तथा कथन-शैली दोनों ही अनुवाद में यथासंभव आने चाहिए। (५) अनुवाद मूल से हीन होता है। आर्नल्ड ने यह बात अपनी एक रचना मेरोप (Merope) की भूमिका में स्पष्ट रूप से कही है।

फिट्ज़जेराल्ड (Edward Fitzgerald १८०९-१८८३) यों तो अच्छे कवि भी थे, किंतु उनकी विशेष ख्याति उनके उमर खय्याम की रुबाइयों के अनुवाद के कारण हुई। इनके अतिरिक्त उन्होंने स्पेनी नाटककार काल्देरो (Calderon) के छः नाटकों, कुछ यूनानी कृतियों तथा कुछ अन्य फारसी कृतियों के भी अनुवाद किए। उन्होंने अपनी रुबाइयों को सर्वप्रथम १८५९ में बिना अपने नाम के प्रकाशित किया। लगभग १० वर्षों तक किसी ने इस अनुवाद को नहीं पूछा। पुस्तक की बिक्री तक प्रायः नहीं के बराबर हुई। १८७० में अमेरिका में सर्वप्रथम इसकी धूम मची और तब लोगों ने इसके अनुवादक का पता लगाया। १८७५ तक फिट्ज़जेराल्ड अपने इस अनुवाद के कारण अंग्रेज़ी संसार में पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुके थे। इनके अनुवाद में केवल ४९ रुबाइयाँ मूलनिष्ठ हैं, शेष ५२ में कुछ भावानुवाद, कुछ छायानुवाद तथा कुछ केवल प्रेरणा लेकर स्वतंत्र रूप से फिट्ज़जेराल्ड द्वारा लिखी गई हैं। अपने अन्य अनुवादों में भी फिट्ज़जेराल्ड ने बहुत अधिक स्वतंत्रता बरती है। इनके अनुवाद-विषयक विचारों तथा अनुवादों से अनुवाद-सिद्धांत के संबंध में निम्नांकित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं : (१) अनुवाद शब्द-प्रति-शब्द नहीं होना चाहिए।[1] (२) अनुवादक को अपनी रुचि के अनुसार अनुवाद में मूल रचना की पुनर्रचना करनी चाहिए, क्योंकि मरे शेर से जीवित कुत्ता कहीं अच्छा होता है।[2] आशय यह है कि ज्यों-के-त्यों अनुवाद में मूल जैसी जीवंतता नहीं होगी। (३) *काव्यानुवाद में आवश्यकतानुसार एकाधिक छंदों को एक में*[3]

१. उन्होंने अपनी रुबाइयों के बारे में कॉवेल (Cowell) को लिखा था—very unliteral it is, many quartains are mashed togather.

२. I am persuaded that···translator ··· must recast the original into his own likeness···the live dog is better than the dead lion. उन्होंने अन्यत्र भी यही बात दूसरे ढंग से कही है : Better a live sparrow than a stuffed eagle.

मिलाया जा सकता है।

वस्तुतः फिट्जजेराल्ड अनुवादक से अधिक मूल का आधार लेकर स्वतंत्र रचनाकार हैं। उनमे मूल-जैसे आकर्षण का रहस्य यही है।

## भारत

प्राचीन भारतीय साहित्य में अनूदित ग्रंथ प्राय. नही मिलते। इसका यह अर्थ नही कि प्राचीन भारतीय विद्वानो में गुण-ग्राहकता का अभाव था और वे बाहर में कुछ भी लेना नहीं चाहते थे। मेरे विचार में अनूदित ग्रंथ न मिलने के मुख्यत तीन कारण हैं : (क) एक तो उस प्राचीन काल में साहित्य तथा ज्ञान-विज्ञान के जो मुख्य क्षेत्र थे, उन सभी मे भारत काफी आगे था। यही कारण है कि गणित, दर्शन, विषविद्या, आयुर्वेद संगीत तथा नीतिकथा विषयक अनेक भारतीय ग्रंथ विश्व की विभिन्न भाषाओं में रूपांतरित हुए। इस प्रकार भारत मुख्यतः दाता था, उसे आदाता बनने का अवसर अधिक नही मिला। (ख) जिन कुछ क्षेत्रों में बाहर उसे कुछ नवीनता मिली, उसने उसे लिया। किंतु उसने यह ग्रहण अनुवाद के रूप मे नहीं किया। उसे सीखा और समझा तथा आत्मसात करके अपने शब्दों मे, अपने ढंग से उसे व्यक्त किया। भारतीय ज्योतिष पर असीरियन प्रभाव ऐसा ही है। हमारा रमलशास्त्र तो प्रायः पूरा का पूरा अरबो से लिया गया है। उसके अधिकाश पारिभाषिक शब्द भी मूलत. अरबी के हैं। किंतु सब कुछ गृहीत होते हुए भी वह इस रूप मे लिखा गया है कि उसे विशिष्ट अरबी ग्रंथ का अनुवाद नही कह सकते। ज्यामिति में यूनानी प्रभाव भी इसी प्रकार का है। (ग) संभव है कुछ थोड़े अनुवाद ऐसे भी हुए हो—यद्यपि मुझे आशा नही है—जिन्हें आज के अर्थ मे अनुवाद कहा जा सके, तो वे कदाचित् विलुप्त हो गए। कालचक्र ने उन्हें ढोना अनावश्यक समझा।

## संस्कृत

ऊपर भारतीय साहित्य को लेकर जो बात की जा रही थी वह संस्कृत के बारे मे ही थी। उसके अतिरिक्त प्राचीन काल मे संस्कृत अनुवाद के बारे में निम्नांकित बातें कही जा सकती हैं : (क) कहा जाता है कि ऋग्वेद के कुछ अंशो की रचना आर्यों के भारत मे आने के पूर्व हो चुकी थी। यही बात जेंद-वेस्ता के बारे में भी सत्य है। यह भी हम देखते हैं कि कुछ थोड़े से ध्वन्यात्मक परिवर्तन से अवेस्ता की अनेक पंक्तियाँ वैदिक संस्कृत की बन जाती हैं। इससे तक यह अनुमान लगाना बहुत दूर की कौड़ी नही होगी कि इन दोनो के

ही कुछ ग्रंथ ऐसे थे जो मूलतः उस मूल भाषा में रचे गए थे जो इन दोनों भाषाओं की जननी थी और आज जो ग्रन्थ इन दोनों में उपलब्ध हैं, वे कदाचित् जननी भाषा से उन पुत्री भाषाओं में सहज परिवर्तन के कारण हुए (किए गए नहीं) रूपांतर हैं। (ग) कुछ वैदिक शब्दों या अंशों के लौकिक संस्कृत में भी इस प्रकार के अनुवाद किए गए। ऐसे अनेक अंश मिल जाते हैं, जो दोनों में आयतः तथा कभी-कभी शब्दतः भी समान हैं। (ग) संस्कृत के नाटकों में स्त्रियों, सेवक-सेविकाओं, विदूषकों तथा श्रमिकों आदि के द्वारा विभिन्न प्राकृतों का प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए अश्वघोष के नाटकों (मागधी, शौरसेनी, अर्धमागधी), भास के नाटकों (शौरसेनी, मागधी), मृच्छकटिक (शौरसेनी, अवन्ती, मागधी, चाडाली), कालिदास के नाटकों (शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी), श्रीहर्ष के नाटकों (महाराष्ट्री, शौरसेनी) तथा मुद्राराक्षस (शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी) आदि में ऊपर संकेतित प्राकृतों का प्रयोग हुआ है। इन सभी में प्राकृत अंशों की संस्कृत छाया भी है। ये छायाएँ भी विभिन्न प्राकृतों से संस्कृत में एक प्रकार के अनुवाद ही हैं। (घ) गुणाढ्य की वड्डकहा (बृहत्कथा) मूलतः पैशाची में लिखी गई थी। संस्कृत में कदाचित् इसके छोटे-बड़े कई अनुवाद हुए, जिनमें तीन आज भी उपलब्ध हैं : (१) बुद्ध स्वामी का 'बृहत्कथाश्लोकसंग्रह'; (२) क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथामंजरी', तथा (३) सोमदेव का 'कथासरित्सागर'। (ङ) गुप्त साम्राज्यकाल के पूर्व प्राकृतों का विशेष प्रचार था, किंतु इस काल में संस्कृत का प्रभाव बढ़ा और संस्कृत में उच्चकोटि की रचनाएँ हुईं। उत्तराध्ययन की टीकाओं में उल्लिखित प्राकृत कथाओं का लक्ष्मी वल्लभ ने संस्कृत रूपांतर किया। इस आधार पर इस संभावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि प्राकृत साहित्य के कुछ अन्य श्रेष्ठ ग्रंथों को भी संस्कृत में लाया गया होगा। प्राकृत जैन-धर्म-विषयक अनेक ग्रंथों जैसे पंचसंग्रह, विंसतिविंसिका, कम्मपयडि, पंचास्तिकाय, समराइच्चकहा आदि के भी संस्कृत में अनुवाद या छायानुवाद हुए हैं। (च) शृंगाररस के छंदों का महाराष्ट्री प्राकृत का प्रसिद्ध संग्रह गाहाकोस (गाथाकोष—जिसे प्रायः गाहासत्तसई या गाथासप्तशती कहते हैं) संस्कृत के कवियों के लिए भी एक स्रोतग्रंथ रहा है। इसके संग्रहकर्ता सातवाहन कहे जाते हैं। संस्कृत के आर्यासप्तशती तथा अमरुशतक एवं हिंदी के बिहारी आदि के कई छंद इसके छंदों के पूर्णतः या अंशतः अनुवाद या छायानुवाद हैं।

*आधुनिक काल में संस्कृत में काफी अनुवाद हुए हैं जो हिंदी, अंग्रेजी,* फ़ारसी, जर्मन, कन्नड़, मराठी, गुजराती, तमिल आदि अनेक भाषाओं से

किए गए हैं, जिनमें कुछ मुख्य शेक्सपियर के हैमलेट, टेम्पेस्ट, गेटे का फॉस्ट, रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कालेर यात्रा, उमर खैयाम की रुबाइयाँ, बिहारी सतसई, रसिकप्रिया आदि हैं। बाइबिल के भी लगभग बीस संस्कृत अनुवाद हो चुके हैं।

जहाँ तक सस्कृत से अनुवाद का प्रश्न है, ग्रीक, अरबी, फ़ारसी, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रांसीसी, रूसी, इतालवी, तिब्बती, चीनी, बर्मी, जापानी, प्राकृत, हिंदी, मराठी, बंगला आदि कई सौ भाषाओं में संस्कृत, वाङ्मय के अनेकानेक ग्रंथ-रत्नों के अनुवाद हुए हैं। *सस्कृत का पंचतंत्र बाइबिल के बाद विश्व का वह* प्राचीनतम ग्रंथ है, जिसके बहुत पहले विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं।

### पालि

भारतीय पालि साहित्य में अनुवाद ग्रंथ प्रायः नहीं मिलते। भारतीय पालि में अनुवाद के नाम पर अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि अशोक के शिलालेखों पर प्राप्त सामग्री मूलतः कदाचित् परिनिष्ठित पालि मे लिखी गई होगी और फिर स्थानीय बोलियो मे उनका अनुवाद करके उन्हें शिलांकित किया गया होगा। हाँ बरमा की पालि मे मनुस्मृति आदि कुछ संस्कृत धर्म ग्रंथों के अवश्य अनुवाद हुए। जहाँ तक पालि से अन्य भाषाओं में अनुवाद का प्रश्न है, प्राचीन काल में चीनी में पालि धम्मपद का मुक्तावाद हुआ था। तिब्बती, जापानी आदि में अनुवादों के होने की सभावना तो है, किंतु इस प्रकार का कोई प्रमाण अभी तक मिला नहीं है। पहली सदी से तिब्बत तथा चीन में भारतीय ग्रंथों के अनुवादों की परंपरा चली। प्रायः लोग यह सोचते हैं कि उस परंपरा में पालि ग्रंथों के अनुवाद भी हुए, किंतु अभी तक जो ग्रंथ मिले हैं, वे प्रायः सारे-के सारे बौद्ध संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद हैं न कि पालि ग्रंथों के। हाँ आधुनिक काल मे हिंदी, अंग्रेजी, सिंहली, बरमी, तिब्बती, चीनी, जापानी आदि अनेक भाषाओं मे पालि ग्रंथों के अनुवाद हुए हैं।

### प्राकृत-अपभ्रंश

प्राकृत-अपभ्रंश मे पूरी की पूरी कोई अनूदित रचना तो कदाचित् नहीं मिलती, किंतु संस्कृत के बाल्मीकि रामायण, मेघदूत, अभिज्ञान शाकुंतल आदि अनेक रचनाओं की कुछ पंक्तियों या छंदों के छायानुवाद महावीर चरिउ पउमचरिउ, भविसयत्तकहा, सुदसण चरिउ आदि प्राकृत-अपभ्रंश की कृतियों में मिल जाते हैं। कुछ जैनाचार्यों ने संस्कृत में कुछ प्रबंध काव्य लिखे थे।

अन्य जैनाचार्यों ने प्राकृत में भी उसी प्रकार की रचनाएँ कीं। उनमें भी यत्र-तत्र छायानुवादित पंक्तियाँ मिलती हैं। प्राकृत रचनाओं का भी इस प्रकार कुछ प्रभाव अपभ्रंश रचनाओं पर मिलता है। अपभ्रंश की सिद्ध रचनाओं पर इस प्रकार का कुछ पालि-प्रभाव भी है। प्राकृत-अपभ्रंश की कई रचनाओं के पूर्ण या अपूर्ण अनुवाद जर्मन, अंग्रेजी, इतालवी, गुजराती तथा हिंदी आदि में हुए हैं। अपभ्रंश के सिद्ध-साहित्य का तिब्बती अनुवाद भी हुआ था, जिसे राहुल जी ने खोज निकाला था।

अपभ्रंश की कुछ रचनाओं की कुछ पंक्तियों के अनुवाद या छायानुवाद हिंदी की कुछ पुरानी रचनाओं में भी मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए कबीर आदि में सिद्ध साहित्य की अनेक पंक्तियाँ कुछ भाषिक परिवर्तनों के साथ मिलती हैं। पाहुड दोहा में आता है—मुंडिय मुंडिय मुंडिया सिर मुंडिय चित्त ण मुंडिया। कबीर कहते हैं—

दाढ़ी मूछ मुड़ाय के हुआ घोटम घोट।
मन को काहे न मूड़िया·········।

कबीर का प्रसिद्ध छंद है—

पढ़ते-पढ़ते जग मुआ पंडित भया न कोय।
एकहि आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय॥

पाहुड दोहा में भी आता है—

बहुयइ पढियइ मूढ पर तालू सुक्कइ जेण।
एक्कु जि अक्खरु त पढहु·········।

रामचरित मानस की भी अनेक पंक्तियाँ स्वयंभू के पउम चरिउ की पंक्तियों पर आधृत हैं।

हेमचंद्र में एक दोहा उद्धृत है—

बाह विछोडवि जाहि तुहुं हउं तेवंइ को दोसु।
हिअयट्ठिअ जइ नीसरहि जाणउं मुंज स रोसु।

सूर भी कहते हैं—

बाँह छोड़ाए जात हो निबल जानि के मोहि।
हिरदै ते जब जाहुगे सबल जानुँगो तोहि।

**हिंदी**

हिंदी में, अन्य अनेक भाषाओं की भाँति ही अनुवाद मुख्य रूप से दो रूपों में मिलता है। एक तो व्यवस्थित रूप से किसी कृति के अनुवाद रूप में, और

दूसरे विभिन्न लेखकों (मुख्यतः कवियों) की रचनाओं में यत्र-तत्र दूसरे के कृति अंशों या छंदों के छायानुवाद या प्रभाव रूप में। दूसरा अपेक्षाकृत कम महत्त्व-पूर्ण है, अतः पहले उसे ही लिया जा रहा है।

कवि या लेखक प्रायः बहुपठित या बहुश्रुत होता है, अतः उसके अनेक अंश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से देश-विदेश की भाषाओं की पूर्व प्रकाशित कृतियों उनके अंशों से प्रभावित होते हैं। यह प्रभाव कभी-कभी तो अनुवाद रूप में पड़ा मिलता है, और कभी-कभी मात्र छाया रूप में। छोटे-मोटे साहित्यकारों की कौन कहे, बड़ों-बड़ों में भी यह बात न्यूनाधिक रूप में खोजी जा सकती है। यहाँ केवल बानगी के लिए हिंदी के चार दिग्गजों—विद्यापति, सूर, तुलसी, बिहारी—से कुछ नमूने दिए जा रहे हैं।

विद्यापति—भागवतकार, कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, अमरुक, मम्मट तथा जयदेव आदि अनेक कवियों के विविध भावों के समान भाव विद्यापति में मिलते हैं। अनेक पदांशों में यह भाव-साम्य अनुवाद या छायानुवाद की सीमा तक पहुँच जाता दिखाई पड़ता है। दो उदाहरण पर्याप्त होंगे—

शृंगारतिलक—तव मुखमकलंक वीक्ष्य नूनं स राहु।
ग्रसति तव मुखेन्दुं पूर्णचन्द्रं विहाय।

विद्यापति—लोलुअ बदन-सिरी धनि तोरि,
जनु लागिहि तोहि चाँदक चोरि।
दरसि हलह जेनु हेरह्नु काहु,
चाँद भरम मुख गरसत राहु।

मम्मट—नीवी प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण,
सख्यः शपामि यदि किंचिदपि स्मरामि।

विद्यापति—जब निवि बंध खसाओल कान,
तोहर सपथ हम किछु जदि जान।

सूर—सूर में भी अनूदित पंक्तियाँ यत्र-तत्र मिल जाती हैं। संस्कृत का एक प्रसिद्ध श्लोक है—

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम्।

सूरदास ने इसे अपने पद में ढाला है—

चरन कमल बन्दौं हरिराइ।

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे को सब कुछ दरसाइ।
बहिरो सुनै गूंग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय बार-बार बन्दौं तिहि पाइ।

संस्कृत का ही एक अन्य श्लोक है—

तत्रैव गंगा यमुना च वेणी गोदावरी सिंधु सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र, यत्राच्युतोदारकथाप्रसंगः॥

सूरदास कहते हैं—

हरि की कथा होइ जब जहां, गंगा हू चलि आवै तहां।
जमुना सिंधु सुरसरी आवै, गोदावरी विलम्ब न लावै।
सब तीर्थन को बासा तहां, 'सूर' हरिकथा होवै जहां।

तुलसी—'नाना पुराण निगमागम' का आभार स्वीकार करने वाले तुलसी में वाल्मीकि रामायण, आनन्द रामायण, अगस्त्य रामायण, अध्यात्म रामायण, भागवत, गीता, शिव पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, वामन पुराण, प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, पउम चरिउ आदि अनेक रचनाओं की कुछ पंक्तियों या कभी-कभी पूरे-पूरे छन्दों के अनुवाद (कभी छायानुवाद, कभी भावानुवाद और कभी-कभी शब्दानुवाद) मिलते हैं। कुछ उदाहरण हैं :

(१) सज्जनस्य हृदयं नवनीतं
यद्वदन्ति कवयस्तदलीकम्।—सुभाषित रत्न भाण्डागार
संत हृदय नवनीत समाना।
कहा कविन पै कहइ न जाना।—तुलसी, मानस

(२) मित्रस्य दुःखेन जना दुःखिता नो भवन्ति ये
तेषां दर्शनमात्रेण पातकं बहुलं भवेत्। —गालव संहिता
जे न मित्र दुख होहिं दुखारी।
तिन्हहि बिलोकत पातक भारी। —तुलसी, मानस

(३) यो जनः स्वच्छहृदयः स मां प्राप्नोति नापरः।
मह्यं कपटं दम्भानि न रोचन्ते कपीश्वरः।
निरमल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा। —तुलसी, मानस

(४) ऊपर सूर के प्रसंग में संस्कृत का 'मूकं करोति......' श्लोक उद्धृत है। तुलसी मानस में लिखते हैं—
मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़ै गिरिबर गहन।

जासु कृपा मो दयाल, द्रवौ सकल कलिमल दहन।

बिहारी—बिहारी पर अमरुक, आर्यासप्तशती, गाहा सत्तसई तथा वज्जालग्ग का प्रभाव सर्वविदित है। यह प्रभाव मुख्यतः भाव-संकेत या कभी-कभी छाया रूप में है, किन्तु उनकी कुछ पंक्तियाँ ऐसी भी हैं, जिन्हें किसी-न-किसी प्रकार का अनुवाद मानना ही पड़ेगा। वज्जालग्ग का एक छंद है—

कल्लं किर खरहियओ पवसिहिइ पिओत्ति सुव्वइ जणम्मि।

तह वड्ढ भयवइ निसे जह से कल्लं चिय न होइ।

अर्थात् सुनती हूँ वह क्रूर कल परदेश जाएगा। हे भगवती रात्रि तू बड़ी हो जा जिससे कल कभी हो ही नहीं।

बिहारी कहते हैं—

सजन सकारे जायँगे नैन मरेंगे रोय।

या विधि ऐसी कीजिए फजर कबहूँ ना होय।

दूसरी पंक्ति का उत्तरार्ध ध्यान देने योग्य है।

प्राकृत के प्रसिद्ध संग्रह ग्रन्थ गाहासत्तसई की एक गाहा है—

फुरिए वामच्छि तुए जइ एहिइ सो पिओ ज्ज ता सुइरम्।

संमीलिअ दाहिणअं तुइ अवि एह पलोइस्सम्।

अर्थात् ऐ बाईं आँख, तेरे फरकने पर (परदेश गया हुआ) मेरा प्रिय यदि आज आ जाएगा तो मैं अपनी दाहिनी आँख मूँदकर उसे तुझसे ही देखूँगी। बिहारी कृती कवि के उपर्युक्त परिवर्तन के साथ कहते हैं—

बाम बाहु फरकत मिलै, जो हरि जीवनमूरि।

तौ तोही सों भेंटिहौं राखि दाहिनी दूरि।

अन्य कवियों में भी इस प्रकार के अंश खोजे जा सकते हैं।

हिन्दी काव्यशास्त्रियों ने कुछ अपवादों को छोड़कर संस्कृत के काव्यशास्त्रियों का ही प्रायः अनुवाद (भावानुवाद या छायानुवाद, कभी-कभी शब्दानुवाद भी) अपने ग्रन्थों में किया है। इसलिए उनमें मौलिकता प्रायः नहीं के बराबर है। संस्कृत के जिन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का हिन्दी में सर्वाधिक अनुवाद हुआ है वे हैं : भानुमिश्र की रसमंजरी, मम्मट का काव्यप्रकाश, विश्वनाथ का साहित्यदर्पण और अप्पय्य दीक्षित का कुवलयानंद। उदाहरण के लिए भिखारीदास के काव्यनिर्णय, तथा सोमनाथ के रसपीयूषनिधि के नायकनायिका भेद-निरूपण वाले अंश भानुमिश्र के रसमंजरी के सम्बद्ध अंशों के भावानुवाद हैं। दूलह आदि के अलंकार वाले अंश चंद्रालोक (जयदेव) तथा कुवलयानंद (अप्पय्य दीक्षित) पर आधृत हैं। इसी प्रकार कृष्णमिश्र के

जनी, १६६८ ई० । शिवसागर (ब्रह्मवैवर्त पुराण का मुक्तानुवाद)—रतन सिंह, १७०० ई० । विष्णु पुराण—भिखारी, १७४० ई० । लिंग पुराण भाषा —दुर्गा प्रसाद, १८७४ ई० ।

सत्यनारायण कथा—इसके हिंदी में अनेक गद्यानुवाद तथा पद्यानुवाद हो चुके हैं। इनमें से कई प्रकाशित भी हैं। कुछ अनुवाद हैं : सत्यनारायण कथा—गंगाधर शास्त्री, १७६७ ई० । सत्यनारायण कथा (दोहों में)—ईश्वर नाथ, १८०० के लगभग । सत्यनारायण व्रत कथा टीका—वासुदेव सनाढ्य, १८४२ ई० । सत्यनारायण कथा (पद्यानुवाद)—राम प्रसाद गूजर, पांडुलिपि-काल १८५१ ई० । सत्यनारायण व्रत कथा—गणेशदत्त, पांडुलिपि-काल १८८३ ई० ।

पंचतंत्र—इसके हिंदी में अनेक अनुवाद हुए हैं। कुछ हैं : पंचतंत्र—देवी लाल, १६६० ई० । पंचतंत्र भाषा टीका—अमर सिंह, १७०३ ई० । पंचतंत्र उल्था—कृष्ण भट्ट १७२५ ई० । पंचतंत्र भाषा—पोल्हावन, १८०० ई० ।

हितोपदेश—यह हिंदी प्रदेश का बहुत लोकप्रिय ग्रंथ रहा है। इसके भी कई पद्य तथा गद्य अनुवाद हुए हैं। कुछ पुराने अनुवाद हैं : हितोपदेश—पदुमन दास, १६८१ ई० । मित्रमनोहर (पद्यानुवाद)—वंशीधर, १७१७ ई० । हितोपदेश कथा (पद्यानुवाद)—जय सिंह दास, १७२५ ई० । राजनीति (पद्यानुवाद)—छविनाथ, १७६७ ई० । राजनीति (मित्रलाभ)—लल्लूलाल कवि, १८१२ ई० (यह गद्यानुवाद है) ।

अन्य नीति-ग्रन्थ—भर्तृहरि, चाणक्य, नारद, विदुर आदि के नीति ग्रन्थों के अनेक अनुवाद हिन्दी में हुए हैं। कुछ हैं : नारद नीति (सभापर्व के एक अध्याय का हिंदी रूपांतर, गद्य में)—देवीदास व्यास, १६४३ ई० । चाणक्य नीति (पद्यानुवाद)—भवानी दास, १६८० ई० । विदुर नीति (उद्योग पर्व का पद्यानुवाद)—गोपाल, १६६० ई० । राजनीति भाषा (चाणक्य नीति का पद्यानुवाद)—कीर्ति सेन, १७८० ई० । भर्तृहरि शतक—नैन चन्द, १८७१ ई० । चाणक्य नीति दर्पण (दोहा)—श्री लाल, १८७३ ई० ।

वैद्यक—वैद्यक के ग्रन्थों के भी अनेक हिन्दी अनुवाद (गद्य में, पद्य में, अविकल, संक्षिप्त, मुक्त) हुए हैं। इनमें सर्वाधिक मुक्तानुवाद हैं, जिनमें कुछ में परिवर्तन-परिवर्धन भी यत्र-तत्र हैं। ये अनुवाद प्रायः संस्कृत से हैं, किन्तु कुछ अरबी और फारसी से भी हैं। इनमें कुछ गजशास्त्र और शालिहोत्र के भी हैं। कुछ पुराने अनुवाद हैं : द्रव्य संग्रह भाषा—पुरुषोत्तम, १६२७ ई० ।

गज शास्त्र—चेत सिंह, १६८० ई०। माधव निदान भाषा—भगवान, १६६० ई०। अंजन निदान (गद्य-पद्य, इसी नाम के संस्कृत ग्रन्थ का अनुवाद)—आनन्द मिश्र १७०० ई०। औषधि संग्रह (वंग सेन, सारंगधर, उड्डीस के आधार पर मुक्तानुवाद)—बाबू राम पांडे १७४५ ई०। शालिहोत्र (ब्रजभाषा गद्य में अनुवाद)—रिपिसुर, १८०६ ई०। वैद्यक विनोद (फारसी से अनुवाद)—दरियाव सिंह १८३३ ई०। मामूल तिब्बा (मूल ग्रन्थ फारसी में है। साथ में हिंदी अनुवाद भी)—मूल लेखक : टीपू सुलतान; अनुवादक : अज्ञात; लिपिकार पूर्ण वल्लभ मिश्र, पाडुलिपिकाल १८५० ई०। यूनानी सार—शेख मुहम्मद, १८७५ ई०। तिब्ब रत्नाकर—ठाकुर प्रसाद, १८८० ई०। निघण्टु भाषा (पद्य में)—मदनपाल १८८० ई०।

ज्योतिष—संस्कृत के ज्योतिष के ग्रन्थों के भी हिंदी मे काफी अनुवाद हुए हैं। ये अनुवाद प्राय: मुक्तानुवाद कहे जा सकते हैं। कुछ के नाम हैं—स्वरोदय भाषा टीका—लालचन्द, १६६६ ई०। ताजिक सार भाषा—छाजूराम द्विवेदी, १७३५ ई०। शीघ्रबोध टीका—गुलाबदास, १७४५ ई०। लघु जातक—अखैराम, १७५५ ई०। मुहर्त दर्पण (पद्यानुवाद)—चन्द्रमणि, १७-५५ ई०। रमल शकुन विचार—फते, १८वी सदी। मुहूर्त संचय—वासुदेव सनाढ्य, १८४२ ई०। रमल नवरत्न दर्पण भाषा टीका—दत्तराम, १८५५ ई०। लघु जातक—टीका राम, १८६० ई०। रमल विचार—कोविद, पाडुलिपि काल १८७६ ई०।

कुछ अन्य—उल्या करीमा की नीति प्रकाश—बल्देव कवि, समय अज्ञात। अमरु शतक भाषा—पुरुषोत्तम, १६७३ ई०। अमृत भाषा गीत गोविन्द (गद्य मे)—भगवान, १७३० ई०। अध्यात्म रामायण—माधोदास, १७३१ ई०। अमर तिलक (अमर कोश)—भिखारीदास, १७४० ई०। योग वाशिष्ठ भाषा—छज्जू, १७८० ई०। रत्नपरीक्षा—राम चन्द्र १७६० ई०। याज्ञवल्क्य स्मृति भाषा—गुरुप्रसाद, १८०० ई०। मनुधर्म सार (मनुस्मृति)—शिव प्रसाद, १८५० ई०। दुर्गापाठ भाषा—अनन्य, १८६० ई०। व्रतार्क (व्रतों पर)—महेश दत्त, समय अज्ञात। एकादशी महात्म्य टीका—वासुदेव, १८४२ ई०। वैराग्य शतक (राजस्थानी मे)—गुणचंद, १८७० ई०।

१९वी सदी उत्तरार्ध से हिंदी मे अनुवाद की और भी समृद्ध परम्परा का शुभारम्भ हो गया, जिसकी समृद्धि दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। यहाँ विषयानुसार कुछ परिचयात्मक विवरण दिया जा रहा है।

बहुत अच्छा अनुवाद किया है), महेन्द्र चतुर्वेदी (काव्यशास्त्र, राजनीति, इतिहास, गणित, विज्ञान आदि के लगभग २० ग्रन्थों का अनुवाद किया है), डॉ० मुकुंद स्वरूप वर्मा (आयुर्विज्ञान, वनस्पतिविज्ञान), डॉ० हरसरन सिंह बिश्नोई (जीवविज्ञान), डॉ० जगदीशचन्द्र मूना (जीवविज्ञान), डॉ० कृष्णकुमार गुप्ता (जीवविज्ञान), लज्जाराम सिंहल (गणित), विश्वप्रकाश गुप्त (राजनीति), ओम्प्रकाश गाबा (राजनीति) आदि हैं। विषयानुसार कुछ अच्छे हिंदी अनुवादकों के नाम हैं: गणित—हरिश्चंद्र गुप्ता, झम्मन लाल शर्मा, लज्जाराम सिंहल, ब्रज मोहन। अर्थशास्त्र—लक्ष्मी नारायण नाथूरामका, श्री गोपाल तिवारी, दयाशंकर नाग। कृषि—गिरिधारी लाल। राजनीति—महेन्द्र चतुर्वेदी, विश्वप्रकाश गुप्त, ओम्प्रकाश गाबा। रसायनशास्त्र—शिव गोपाल मिश्र, विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री। भौतिकशास्त्र—निहालकरण सेठी, पुरुषोत्तमलाल जैन, नंदलाल सिंह। इंजिनियरिंग—ओ० पी० कुलश्रेष्ठ, रूपचंद भंडारी, ओ० पी० जैन। जीवविज्ञान—हरसरनसिंह बिश्नोई, उमाशंकर श्रीवास्तव, जगदीशचंद्र मूना, कृष्णकुमार गुप्ता। भाषाविज्ञान—उदय नारायण तिवारी, भोलानाथ तिवारी, हेमचंद्र जोशी। वनस्पतिविज्ञान—मुकुन्द स्वरूप वर्मा। इतिहास—महेन्द्र चतुर्वेदी, भारत भूषण विद्यालंकार। काव्यशास्त्र—महेन्द्र चतुर्वेदी, निर्मला जैन। समाजशास्त्र—रघुनाथ सिंह, हरिश्चंद्र उप्रेती।

हिंदी में अनुवाद कुछ तो राज्य सरकारों की ग्रंथ अकादमियों द्वारा हो रहे हैं, कुछ केन्द्रीय सरकार के केन्द्रीय हिंदी संस्थान तथा अन्य संस्थाओं द्वारा, तथा कुछ अनुवाद के विशिष्ट एककों द्वारा, जैसे दिल्ली विश्वविद्यालय का एकक (यहाँ प्राणिशास्त्र, गणित, राजनीति, काव्यशास्त्र के अनुवाद हो रहे हैं) तथा बनारस हिंदू विश्व विद्यालय का एकक (यहाँ भौतिकशास्त्र के अनुवाद हो रहे हैं)। किंतु इनके अतिरिक्त बहुत सारे अनुवाद व्यक्तिगत रूप से अनुवादकों और प्रकाशकों के सहयोग से भी प्रकाशित हो रहे हैं।

**हिन्दी में अनुवाद-चिन्तन**

यूरोप तथा अमेरिका में अनुवाद के क्षेत्र में चिंतन काफी हुआ है। एशिया अन्य क्षेत्रों की भाँति इस क्षेत्र में भी काफी पीछे है। भारतीय भाषाओं में हिंदी, मराठी तथा बँगला में ही अनुवाद की दिशा में कुछ थोड़ा चिन्तन हुआ है।

हिन्दी में यह चिन्तन चार रूपों में मिलता है। (१) अनुवादों की भूमिका के रूप में—पुराने तथा नए अनेक अनुवादकों ने विभिन्न अनूदित ग्रन्थों की भूमिकाओं में अनुवाद के विषय में अपने मत व्यक्त किए हैं। जैसे जगमोहन

सिंह, महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, राम चन्द्र शुक्ल तथा बच्चन आदि। (२) स्वतन्त्र लेखों के रूप में—अनुवाद से सम्बद्ध स्वतन्त्र लेख सरस्वती, नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर निकलते रहे हैं। 'संस्कृति' के 'जून-जुलाई १९६१' अंक में 'अनुवाद कला और समस्याएँ' शीर्षक संगोष्ठी में अनुवाद के सम्बन्ध में राजागोपालाचार्य, दिनकर, अज्ञेय, बाल कृष्ण राव, जगदीश चन्द्र माथुर, आदि १५ विद्वानों के संक्षिप्त वक्तव्य प्रकाशित हुए थे। 'अनुवाद कला : कुछ विचार' शीर्षक से प्रभाकर माचवे, जैनेन्द्र कुमार, गार्गी गुप्त, राजेन्द्र द्विवेदी, नगीन चन्द्र सहगल आदि १६ व्यक्तियों के १६ लेखों का संग्रह १९६४ में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ था। अनुवाद से सम्बद्ध लगभग १५ लेख 'भाषा' पत्रिका में भी प्रकाशित हो चुके हैं। इस विषय के सर्वाधिक लेख भारतीय अनुवाद परिषद् की पत्रिका 'अनुवाद' में छपते रहे हैं। अनुवाद-विषयक लेखों में अपने विचार व्यक्त करनेवालों में महेन्द्र चतुर्वेदी, नगीन चन्द्र सहगल, गार्गी गुप्त, विश्व प्रकाश गुप्त, ओमप्रकाश गाबा, उग्रसेन गोस्वामी, कृष्ण गोपाल अग्रवाल, ओमप्रकाश सिंहल, प्रेमचन्द गोस्वामी, राजेन्द्र बोहरा, सुरेन्द्र नाथ त्रिपाठी, सुरेन्द्र कुमार दीक्षित, श्रीकांत वर्मा, इन्द्रनाथ चौधुरी, गंगाप्रसाद श्रीवास्तव, हरसरन सिंह बिश्नोई आदि के नाम लिए जा सकते हैं। मैंने भी इस विषय पर एक दर्जन से ऊपर लेख लिखे हैं जो भाषा, अनुवाद, सप्तसिंधु आदि में छप चुके हैं। (३) थीसिस के रूप में—हिन्दी में अनुवाद से सम्बद्ध कुछ ही थीसिस मेरे देखने में आए हैं : 'संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद'—डॉ. देवेन्द्र कुमार (दिल्ली); 'अंग्रेजी काव्य कृतियों के हिंदी अनुवाद' (१८८६-१९६५)—डॉ० नगीन चंद्र सहगल (दिल्ली); 'तकनीकी, वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दों के हिंदी अनुवाद की समस्या'—डॉ० ना० रामकृष्ण राजुरकर (जबलपुर); 'बीसवीं शताब्दी में हुए अंग्रेजी नाटकों और काव्यों के अनुवादों का आलोचनात्मक अध्ययन'—डॉ० रत्न कुमार वार्ष्णेय (आगरा)। पी-एच० डी० के लिए अनुवाद से संबद्ध कई थीसिस यों लिखे जा रहे हैं। उदाहरणार्थ प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक के निर्देशन में विश्व प्रकाश गुप्त अनुवाद की दृष्टि से अंग्रेजी-हिन्दी विशेषणों का तुलनात्मक अध्ययन कर रहे हैं। बंगला-हिंदी अनुवादों पर भी एक काम हो रहा है। (४) स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में—किसी एक व्यक्ति द्वारा लिखित स्वतंत्र पुस्तक रूप में १९६६ में डॉ० वासुदेव नंदन प्रसाद की 'हिंदी अनुवाद : सिद्धांत और प्रयोग' शीर्षक एक छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित हुई थी, जिसमें लगभग २० पृष्ठों में सिद्धांत-विवेचन था, तथा शेष

कुछ अंश छोड़ सकता है। श्री गोपिका गीत (पृष्ठ ८) में वे कहते हैं 'इसमें मूल बहुत छूट गया है, पर शायद कुछ बड़ा बिगाड़ नहीं हुआ, उसकी छाया बहुत कुछ आ गई है।' इस तरह वे स्वच्छन्द अनुवाद के समर्थक थे। (३) काव्यानुवाद मूल छन्द में हो सके तो अधिक अच्छा होता है। श्रीगोपिका गीत के मुख पृष्ठ पर लिखा है 'समश्लोकी स्वच्छन्द छायानुवाद खड़ी हिन्दी में'। (४) पंक्ति-प्रति-पंक्ति अनुवाद में त्रुटियाँ हो जाने की सम्भावना रहती है।[1] उजड़ ग्राम में वे कहते हैं, 'अधिक भाग अनुवाद का पंक्ति-प्रति-पंक्ति है, इस कारण त्रुटि इसमें विशेषकर होगी। (५) अनुवाद को रोचक तथा सुबोध बनाने के लिए मूल कृति की भावनाओं में अनुवादक अपेक्षित परिवर्तन-परिवर्धन कर सकता है। पाठक जी ने एकांतवासी योगी की अंग्रेज़ी भूमिका[2] में इसका संकेत किया है।

× × × ×

मिश्रबंधुओं ने सरस्वती (नवंबर १९०० पृ० ३६४) में श्रीधर पाठक की अनूदित काव्य-पुस्तकों पर विचार करते हुए कहा था, 'अनुवादों का निर्माण ऐसा होना चाहिए कि वह मूलग्रंथ की भाषा न जानने वाले पाठक को अवश्य रुचे और यह तभी हो सकता है जब कुछ-न-कुछ स्वच्छन्दता से उल्था किया जाय।'

× × × ×

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (१८८६-१९३२) ने यों तो पोप की प्रसिद्ध कविता 'एस्से ऑन क्रिटिसिज्म' का हिंदी अनुवाद किया था, किंतु ऐसा लगता है कि वे अनुवाद का महत्व मौलिक लेखन के प्रेरक रूप में ही स्वीकार करते थे।

१. 'श्रांत पथिक' की भूमिका में भी वे कहते हैं, 'Being through out a line for line rendering of a terse and philosophical peom, it can not claim to be a very faithful reproduction of the original

२. *However all that lay in my small power has been excerted* to make the Hindi rendering as satisfactory as possible, the numerous additions to, and the few slight deviations from the poet's original ideas, which will be found in the body of the translastion, being introduced only to render more interesting and indeed more intelligible to the purely Hindi knowing reader a foreign tale, which, without them, would have but little or no charm for him. .'

हिंदी साहित्य सम्मेलन के बीसवें अधिवेशन में अपने सभापति भाषण (पृ० १८-१९) में उन्होंने कहा है 'यह लोगों की भ्रांत धारणा है कि अनुवादों से साहित्य की पर्याप्त वृद्धि होती है। वस्तुतः बात यह है कि चाहे इस प्रकार से अपने साहित्य मे क्षणिक प्रकाश आ जाय और अन्यान्य साहित्यों की सामग्री से परिपूर्ण होकर अपना साहित्य भी परिपुष्ट दिखाई पड़ने लगे, परंतु इस प्रकार की परकीय संपत्ति से सम्पन्न होना लज्जास्पद ही है। प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के आचार-व्यवहार परंपरा-प्राप्त संस्कार, इतिहास, मर्यादा आदि से ही अनुप्राणित रहता है। अतः दूसरे शरीर में प्रवेश करते ही साहित्य के ये प्राण पूर्व शरीर के साथ छूट जाते हैं। इसका यह तात्पर्य नही है कि साहित्य की वृद्धि में अनुवादो का कोई स्थान ही नहीं। आरंभ में प्रायः अनुवादो की ही बाढ आती है। पर वह बाढ ऐसी संयत और अनुकूल होनी चाहिए जो आगे चलकर मौलिकता की प्रसविनी हो।'

× × × × ×

मैथिलीशरण गुप्त (१८८६- ) के अनूदित ग्रंथ मेघनाथ-वध तथा उमर खय्याम की रुबाइयाँ हैं। गुप्त जी ने अनुवाद के सबंध मे कुछ विशेष नही लिखा है। वे अनुवाद मे मूल के भाव की यथासाध्य रक्षा करने के पक्षपाती थे। मेघनाथ-वध के निवेदन (पृ० २५-२६) मे वे लिखते हैं, 'जहां तक हो सका है, मूल के भावो की रक्षा करने की कोशिश की गई है, परतु अज्ञता के कारण अनेक त्रुटियाँ रह गई होगी, सभव है कही-कही भाव भी भग हो गए हो। परतु ज्ञानतः ऐसा नही होने दिया गया।'

× × × ×

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (१८८४-१९४०) को प्रायः हम उच्चकोटि के आलोचक, इतिहासकार तथा निबंधकार के रूप मे ही जानते हैं, किंतु इन सबके साथ-साथ वे उच्चकोटि के अनुवादक तथा अनुवाद-चितक भी थे। उनके अनूदित ग्रंथ हैं: (१) मेगस्थनीज का भारतवर्षीय वर्णन (१९०५; 'ता-इंडिका' का), (२) आदर्श जीवन (१९१४, ऐडम्स के 'प्लेन लिविंग हाई थिंकिंग' का; डॉ० शिवनाथ तथा शुक्ल जी पर लिखने वाले कई अन्यों ने इसे स्माइल्स की पुस्तक का अनुवाद कहा है, किंतु वस्तुतः स्माइल्स ने इन नाम की कोई पुस्तक ही नही लिखी थी), (३) विश्व-प्रपच (१९१९-२०, हैकल के 'रिड्ल आफ दि यूनिवर्स' का); (४) बुद्धचरित (१९२२, अर्नाल्ड के 'लाइट आफ एशिया' का); (५) शशांक (१९२२, राखालदास के बँगला उपन्यास का)। इनके अतिरिक्त उन्होंने ८-९ लेखो (ऐतिहासिक तथा साहित्यिक) के भी अनु-

वाद किए। उनका अनुवाद-विषयक चिंतन उनकी कुछ भूमिकाओं तथा लेखों में मिलता है। उनके अनुवादों तथा अनुवाद-विषयक बातों के आधार पर उनकी अनुवाद-विषयक मुख्य मान्यताएँ ये हो सकती हैं : (१) शुक्ल जी भाव के लिए भाव वाले अनुवाद के पक्षपाती थे। उनके सारे अनुवादों में यह बात मिलती है। सरस्वती (भाग ७ संख्या ११) में शुक्ल जी ने काशीनाथ खत्री का जीवन-चरित लिखा। उसमें उन्होंने खत्री जी की अनुवाद-भूलों को भी दिखाया था। उदाहरण के लिए खत्री जी ने चार्ल्स और मेरी के एक वाक्य what suspicious people these Christians are ! का अनुवाद किया था : 'ये ईसाई लोग कैसे अविश्वासी हैं'। शुक्ल जी ने शुद्ध रूप दिया था 'ये ईसाई लोग कैसे अविश्वासी होते हैं।' स्पष्ट है कि are का शब्दानुवाद 'हैं' है किन्तु शुक्ल जी ने उसे 'होते हैं' कर दिया है। (२) अनुवाद में स्रोत भाषा के प्रभावों से लक्ष्य भाषा को यथासाध्य बचाकर रखना चाहिए। आज बँगला से हिन्दी के अनुवादकों में इस दृष्टि से बड़ी कमी मिलती है। इसके विपरीत शुक्ल जी ने शशांक में बँगला का तनिक भी प्रभाव अनुवाद की हिंदी पर नहीं आने दिया है। (३) शुक्ल जी चाहते थे कि अनुवाद की भाषा में मौलिक लेखन सा सहज प्रभाव हो। विश्व-प्रपंच में अनुवादक के वक्तव्य में वे कहते हैं 'कौन सा वाक्य किस अंग्रेज़ी वाक्य का अक्षरशः अनुवाद है इसका पता लगाने की जरूरत किसी को न होगी।' बुद्ध चरित में कहते हैं—'यद्यपि ढंग ऐसा रखा गया है कि एक स्वतन्त्र हिंदी काव्य के रूप में इसका ग्रहण हो''''''। (४) अनुवाद में विषय से संबद्ध शब्दों के प्रयोग में काफी सतर्कता बरतनी चाहिए। शुक्ल जी ने 'लाइट आफ एशिया' का 'बुद्ध चरित' रूप में अनुवाद करते समय ऐसा नहीं किया कि तत्कालीन हिंदी शब्दावली में चुपचाप अनुवाद कर दें। उपयुक्त शब्द की प्राप्ति के लिए उन्होंने बौद्ध ग्रंथों का मंथन किया। वे स्वयं लिखते हैं 'शब्द बौद्ध शास्त्रों में व्यवहृत रखे गए हैं।' (५) अनुवाद आवश्यकतानुसार मूलनिष्ठ तथा मूलमुक्त दोनों प्रकार का किया जा सकता है। शुक्ल जी के अनुवादों में ये दोनों ही प्रकार मिलते हैं। 'ता-दंदिका' के अनुवाद में वे पूर्णतः मूलनिष्ठ हैं। अपनी ओर से कुछ भी जोड़ा-घटाया नहीं है। दूसरी तरफ आदर्श जीवन, विश्व प्रपंच, बुद्ध चरित तथा शशांक में उन्होंने काफी छोड़ा-जोड़ा है। आदर्श जीवन में वे स्वयं कहते हैं 'इस देश की रीति-नीति के अनुकूल करने के लिए और भी बहुत सी बातें घटाई-बढ़ाई गई हैं।' वाक्य-तो-वाक्य, पूरे के पूरे अध्याय भी छोड़ दिए गए हैं। शशांक ऐतिहासिक उपन्यास है। शुक्ल जी ने

अनुवाद की भूमिका में नए ऐतिहासिक तथ्यों पर विचार करते हुए कुछ नए निष्कर्ष दिए हैं, तथा अपने अनुवाद मे उसके अनुकूल परिवर्तन करके उसे दुखांत से सुखांत कर दिया है। दो नए पात्र (सैन्यभीति तथा मालती) जोड़े हैं। इस तरह अनुवादक के साथ-साथ इसमे उनका इतिहासवेत्ता तथा उपन्यास-कार का रूप भी सामने आया है। इसमें कोई संदेह नही कि अनुवादक को यह अधिकार नही है, किन्तु शुक्ल जी इस पुस्तक का मात्र अनुवाद करने नही चले थे। अतः उनसे शिकायत नही की जा सकती। (६) जो अलंकार स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा मे उसी रूप मे नही लाए जा सकते, कुछ परिवर्तित किए जा सकते हैं। शुक्ल जी ने बुद्ध चरित की भूमिका में लिखा है—अंग्रेज़ी अलंकार जो हिंदी में आनेवाले नही थे, खोल दिए गए हैं। (७) अनुवाद की भाषा शैली विषया-नुसार बदलती रहनी चाहिए। शुक्ल जी के अनुवादो में विश्व-प्रपंच की भाषा विज्ञानोचित है तो आदर्श जीवन की बोलचाल की तथा मुहावरेदार और बुद्धचरित की काव्योचित।

× × × ×

लल्लीप्रसाद पांडेय (१८८६—) ने १९२० में सरस्वती (दिसम्बर) में एक लेख लिखा 'मौलिक ग्रन्थ और अनुवाद।' उसमे वे एक स्थान (पृष्ठ ३१४) पर कहते हैं, 'अनुवाद मे भाव प्रधान है। अनुवाद ऐसा होना चाहिए जिससे पढने वाले की समझ में मूल लेखक का भाव आसानी से आ जाय। यह आवश्यक नहीं कि मूल के हर शब्द का अनुवाद अवश्य रहे। इसके लिए अनुवादक मनमाने शब्दो का प्रयोग कर सकता है। उसे और सब अधिकार है। वह सिर्फ भाव बदल डालने का अधिकारी नही। जो अनुवादक इस काम मे अभ्यस्त हैं, वही यथार्थ अनुवादक हैं।' पांडेय जी ने बँगला से काफी अनु-वादक किए हैं।

× × ×

देवी प्रसाद 'पूर्ण' ने कालिदास के मेघदूत का 'धाराधर धावन' नाम से अनुवाद किया। इसके प्रथम भाग की भूमिका में अनुवाद के बारे मे उन्होने विस्तार से विचार किया है। कुछ मुख्य बातें हैं: (१) अनुवादक को शब्दा-नुवाद न करके भावानुवाद करना चाहिए। (२) स्पष्टता के लिए अनुवादक भाव-विस्तार कर सकता है। वे कहते हैं। (धराधर धावन, प्रथम भाग, भूमिका, पृ० ९-१०) 'कहीं-कहीं (जहाँ ऐसा करने से कविता की सुन्दरता में अंतर नही पड़ता) अनुवाद मे भी गूढता को खोल दिया है'''—(३) कविता का अनुवाद छन्द-प्रति-छन्द होना चाहिए 'अनुवाद का नियम छन्द प्रति

छन्द ही होना चाहिए······(पृ. ५)' (४) काव्यानुवाद में पद-लालित्य का ध्यान रखना चाहिए। वे कहते हैं 'जहाँ तक हमारी अल्प शक्ति ने सहायता की, हमने अनुवाद की कविता की शब्द-रचना को सोहावनी की है, जिससे अर्थ-सौन्दर्य के साथ पद-लालित्य की संधि से पाठक को प्रसन्नता हो······।'

× × ×

दिनकर (१६०८—) ने 'सीपी और शंख' तथा 'धूपछाँह' आदि अनुवाद किए हैं। वे मूल के अधिकाधिक निकट अनुवाद के समर्थक हैं। 'सीपी और शख' की भूमिका (पृष्ठ ग) मे वे कहते हैं: 'कविता के अनुवाद की दो पद्धतियाँ अब तक देखने मे आई हैं······(एक) पद्धति अनुवाद को मूल के अधिक से अधिक निकट रखने का आग्रह रखती है और सच पूछिए तो अनुवाद की सही प्रणाली यही मानी जानी चाहिए।' किन्तु अपने अनुवादो मे दिनकर ने काफी छूट ली है। 'धूपछाँह' (दो शब्द, पृष्ठ क) मे वे अपने अनुवादो के विषय में कहते हैं 'अनुवाद प्राय सर्वत्र ही स्वच्छन्द हुआ है, और अधिकाश मे उन्हे *अनुकरण कहना ही ज्यादा उपयुक्त होगा।'*

× × ×

बच्चन (१६०७—) ने खैयाम की मधुशाला, जनगीता, मैकबेथ, हैमलेट तथा 'भापा अपनी भाव पराए' आदि काफी अनुवाद किए हैं तथा कुछ स्वतन्त्र लेखो और अपने अनूदित ग्रन्थो की भूमिकाओं में अनुवाद सम्बन्धी अपने विचार भी व्यक्त किए हैं। उनकी कुछ मुख्य मान्यताएँ निम्नांकित हैं: (१) अनुवाद मे भाव का अनुसरण करना चाहिए। 'खैयाम की मधुशाला' की भूमिका (पृष्ठ ६६) मे वे कहते हैं, 'अपने अनुवाद के विषय मे मुझे केवल यह कहना है कि मैं शब्दानुवाद करने के फेर मे नही पड़ा। भावो को ही प्रधानता दी है।' (२) वे राजेन्द्र द्विवेदी के 'शेक्सपीयर के सॉनेट' के प्राक्कथन (पृ०ख) मे कहते हैं 'सफल अनुवाद वह है जिसमे अनुवादक का व्यक्तित्व भी अपनी झलक दिखाता रहे। यह जहाँ दिखेगा, वहाँ रचना अनुवाद न होकर मौलिक सी प्रतीत होगी' (३) 'मैकबेथ' के पद्यानुवाद की प्रवेशिका (पृष्ठ क) मे बच्चन जी कहते हैं, 'इसका अनुवाद करने मे मैंने चार विशेष लक्ष्य अपने सामने रखे थे—अनुवाद छायानुवाद न होकर अविकल हो, शेक्सपीयर के कवित्व की रक्षा की जाय, नाटक सामान्य शिक्षित-दीक्षित जनता के सामने खेला जा सके, और चरम लक्ष्य यह कि अनुवाद अनुवाद न मालूम हो।' (४) कु [illegible] दिक विदेशी कृति के अनुवाद मे सास्कृतिक आदि दृष्टियों से परिवर्त [illegible] रहे हैं। बच्चन जी इसके विरोधी हैं। कमला चौधरी के

'खैयाम का जाम' की भूमिका (पृष्ठ ३) में वे कहते हैं 'किसी देश की कविता के साथ ही वहाँ का वातावरण इस रीति से जुड़ा रहता है कि उसे अलग करना उसके साथ अन्याय करना ही कहा जाएगा। (५) छन्दबद्ध कृति का अनुवाद बच्चन जी के अनुसार उसी छंद में होना चाहिए। वे उपर्युक्त भूमिका (पृष्ठ ३) में कहते हैं 'छन्द और भाव में घनिष्ठ सम्बन्ध है।' रूबाइयात का अनुवाद कुछ लोगों ने रूबाई छन्द में ही रखा है—मेरा अनुवाद रुबाई छन्द में नहीं हो सका। मुझे यह स्वीकार करने में संकोच नहीं है कि रूबाई छन्द छोड़ देने से कविता की भावाभिव्यंजना अवश्य कुछ कम हो गई है।'

× × ×

एक बार जवाहर लाल नेहरू ने मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के एक भाषण का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया था। उन अनुवाद की तारीफ़ मौलाना ने उन्हें एक पत्र लिखकर इस प्रकार की थी: 'तरजुमा करना नई चीज़ लिखने से कहीं ज्यादा मुश्किल है। असली मज़मून की अदबी शक्ल बनाए रखना और साथ ही तर्जुमे के ज़रिए लेखक की अदबी तर्ज़ को ज़ाहिर करना कोई आसान काम नहीं है। जिस आदमी का दोनों ज़बानों पर एक-सा काबू हो, वही यह काम करने की हिम्मत कर सकता है। आपके तर्जुमे में असली मज़मून की कोई भी ख़ासियत बिगड़ी नहीं है, और आपने अंग्रेज़ी के तर्जुमे में मेरे उर्दू के अदबी ढंग को इतनी कामयाबी के साथ निबाहा है कि अगर पढ़ने वालों को ऐसा लगे कि असली तकरीर उर्दू में नहीं, अंग्रेज़ी में लिखी गई थी, तो मुझे अचरज नहीं होगा। आपके तर्जुमे की एक दूसरी ख़ासियत है तामीरी ख्यालात की गज़ब की बुलंदी'''आपने पूरी तरह मेरे ख्याल को देख लिया, जिस ने मेरी तकरीर और जुमलों को यह शक्ल दी है। दरअसल आपने जब तर्जुमा शुरू किया तो जो कुछ मैंने कहा, उसकी पूरी तस्वीर आपके सामने थी, यकीनन यह बड़ा मुश्किल काम था'''तर्जुमे में कहीं भी मेरी तकरीर की स्पिरिट और शक्ल में कोई ख़ामी नहीं आने पाई।'

हिंदी की एक शैली उर्दू के लेखक के रूप में मौलाना आज़ाद के ये विचार यहाँ दिए गए हैं।

× × ×

महेन्द्र चतुर्वेदी हिंदी के उन थोड़े से लोगों में हैं, जो कृती अनुवादक के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने काव्यशास्त्र, साहित्य, राजनय, राजनीति, इतिहास, संस्कृति, गणित तथा विज्ञान के अत्यन्त प्रामाणिक लगभग बीस ग्रंथों का

लक्ष्य-भाषा से ऐसी लोकोक्तियों और मुहावरों को चुनना चाहिए, जो अर्थ तथा शब्द दोनों दृष्टियों से मूल के समान हों, न मिलने पर केवल अर्थ की दृष्टि से समान की खोज होनी चाहिए, उसके भी अभाव में मूल का शब्दानुवाद किया जा सकता है, यदि लक्ष्य भाषा में वह शब्दानुवाद चल सके तथा अपेक्षित अर्थ दे सके; और नहीं तो, या तो उसके द्वारा व्यक्त भाव को अनुवादक सीधे शब्दों में कह दे या फिर अपनी सृजन-प्रतिभा का उपयोग करके ऐसी नई लोकोक्ति या मुहावरा गढ़ ले जो लक्ष्य भाषा में चल सके तथा अपेक्षित अर्थ का द्योतन कर सके। (१०) सांस्कृतिक शब्द के लिए यदि ठीक प्रतिशब्द लक्ष्य भाषा में न मिले तो आवश्यक होने पर लक्ष्य भाषा की ध्वनि-व्यवस्था के अनुसार अनुकूलन करके मूल शब्द का ही अनुवाद में प्रयोग करना चाहिए तथा उस शब्द को पादटिप्पणी में या अन्यत्र समझा देना चाहिए। अन्य प्रकार की पारिभाषिक शब्दावली के लिए भी अनुवादक को पहले तो तत्कालीन लक्ष्य भाषा में तथा न मिलने पर उसके प्राचीन साहित्य या उसकी बोलियों में खोज करनी चाहिए, उसमें भी सफलता न मिले तो लक्ष्य भाषा की धातुओं-उपसर्गों-प्रत्ययों के सहारे नया शब्द गढ़ा जा सकता है, यदि अपेक्षित सभी दृष्टियों से ऐसा करना उचित जान पड़े; और नहीं तो मूल शब्द का ऐसे ही, या अनुकूलित करके लक्ष्य भाषा में प्रयोग किया जा सकता है।

## २७

# पारिभाषिक शब्द

पीछे एकाधिक स्थलों पर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि विभिन्न विज्ञान, विधि, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, भूगोल आदि विषयों (जो अभिव्यक्ति-प्रधान सर्जनात्मक साहित्य मे नही आते, तथा जिनमें सूचना या विचारों आदि की प्रधानता होती है) के अनुवाद मे अनुवादक के सामने मुख्य समस्या पारिभाषिक शब्दों की होती है।

परिभाषा—शब्द मोटे ढग से दो प्रकार के होते हैं : (क) सामान्य शब्द —ऐसे शब्द जिनका प्रयोग समाज में सामान्य व्यवहार-विषयक बातों की अभिव्यक्ति के लिए सामान्य रूप से होता है। हर भाषा की सामान्य अभिव्यक्ति के मूल आधार ये ही शब्द होते हैं। इनमें भाषा के सारे सर्वनाम तथा सामान्य जीवन से संबद्ध बहुप्रयुक्त संज्ञा, क्रिया, विशेषण, क्रियाविशेषण आदि आते हैं। सामान्यतः कोई व्यक्ति जब कोई भाषा सीखता है तो पहले इन्ही शब्दो को सीखता है। ऐसे शब्दो का प्रयोग हम अपने सामान्य जीवन को चलाने के लिए करते हैं। (ख) पारिभाषिक शब्द—परिभाषिक शब्द ऐसे शब्दों को कहते हैं जो सामान्य व्यवहार की भाषा के शब्द न होकर ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों (जैसे रसायन, भौतिकी, वनस्पतिविज्ञान, प्राणिविज्ञान समाजशास्त्र, दर्शन, अलंकारशास्त्र, गणित, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि-इत्यादि) के होते हैं तथा विशिष्ट ज्ञान, विज्ञान या शास्त्र मे जिनकी अर्थसीमा परिभाषित या निश्चित रहती है। शास्त्र विशेष में इनका एक विशिष्ट और निश्चित अर्थ होता है, इसीलिए विषय विशेष में इनकी सहायता से निश्चित स्पष्ट और अपेक्षित अभिव्यक्ति संभव होती है। अर्थ के स्तर पर पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में एक यह बात भी उल्लेख्य है कि प्रायः अधिकाश पारिभाषिक शब्द अर्थ-संकोच से बनते हैं। इसका कारण यह है कि अधिकाश पारिभाषिक शब्दो का मूलतः विस्तृत अर्थ होता है। उनकी अर्थ-परिधि सकुचित या छोटी करके ही उन्हें पारिभाषिक शब्द

बनाते हैं। उदाहरण के लिए 'धातु' का मूल अर्थ है 'वह आधार सामग्री जिससे अनेक चीजें बनती हैं।' धातुविज्ञान में यही 'धातु' शब्द अर्थसंकोच के कारण केवल कुछ थोड़ी आधार सामग्रियों (सोना, लोहा, जस्ता, चाँदी आदि) अर्थात् Metal का ही बोध कराता है, तो व्याकरण में केवल क्रियाबोधक आधार शब्दों (चल्, खा, ले, रो आदि) अर्थात् root का। इस तरह 'धातु' शब्द में व्याकरण में भी अर्थ-संकोच हो गया है, तथा धातुविज्ञान में भी। अंग्रेजी root के संबंध में भी यही बात है। व्याकरण में अर्थ-संकोच के कारण वह एक सीमित अर्थ (धातु) देता है तो वनस्पतिविज्ञान में एक दूसरा सीमित अर्थ (जड़)।

इन दो के अतिरिक्त कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं जो सामान्य तथा पारिभाषिक दोनों ही रूपों में प्रयुक्त होते हैं। ये शब्द जब सामान्य रूप में प्रयुक्त होते हैं (मुझे आपकी बात पर आपत्ति है) तो सामान्य शब्द वर्ग में आते हैं, और जब पारिभाषिक रूप में प्रयुक्त होते हैं (प्रतिवादी की आपत्ति) तो पारिभाषिक शब्द वर्ग में। इसीलिए इन्हें उभयवर्गीय, माध्यमिक, मध्यस्थ या अर्धपारिभाषिक आदि नामों से पुकारा जा सकता है।

महत्त्व—विभिन्न शास्त्रीय विषयों की अभिव्यक्ति के लिए पारिभाषिक शब्द बड़े ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। शास्त्रीय विषयों में यह बहुत आवश्यक होता है कि वक्ता या लेखक जो कहना या लिखना चाहे, श्रोता या पाठक तक वह बात ठीक उसी रूप में बिना अर्थ-विस्तार या अर्थ-संकोच के स्पष्ट एवं असंदिग्ध रूप में पहुँच जाय। ऐसा तभी हो सकता है जब उस विषय के संकल्पनासूचक या वस्तुसूचक पारिभाषिक शब्द सुनिश्चित हों। यह सुनिश्चयन दो दिशाओं में होता है : एक तो यह कि उस शब्द का अर्थ पूर्णतः निश्चित हो, दूसरे उस भाषा के उस विषय के सभी विद्वान् उस अर्थ में उसी शब्द का प्रयोग करते हों। यदि अर्थ निश्चित नहीं होगा तो उसका प्रयोक्ता उसे एक अर्थ में प्रयुक्त करेगा और श्रोता या पाठक उसे दूसरे अर्थ में लेगा। इसी तरह यदि उस भाषा के उस विषय के सभी विद्वान् उस शब्द का उसी अर्थ में प्रयोग न करेंगे तो उन विद्वानों में उस विषय में आपसी यथातथ विचार-विनिमय संभव न होगा। यदि एक उसका एक अर्थ ले और दूसरा दूसरा अर्थ ले, तो एक एक बात कहेगा और दूसरा दूसरी बात समझेगा। इस प्रकार एककालिक विचार-विनिमय में स्पष्ट और अपेक्षित अभिव्यक्ति के लिए पारिभाषिक शब्दों का महत्त्व असंदिग्ध है। बहुकालिक विचार-विनिमय की दृष्टि से भी इनका महत्त्व कम नहीं है। सुनिश्चित पारिभाषिक

शब्दों के प्रयोग से ही यह संभव होगा कि आज किसी विषय पर कोई लेखक कोई बात लिखे तो १०, २०, २५, ५०, १०० वर्ष बाद लेखनकाल के पारिभाषिक अर्थ के आधार पर लोग मूल लेखक की बात को ठीक रूप में समझ लें।

**पारिभाषिक शब्दों के भेद**—किसी भाषा के पारिभाषिक शब्दों को विभिन्न आधारों पर कई वर्गों में बाँटा जा सकता है: **(१) इतिहास के आधार पर** : (क) तत्सम (जैसे अणु= molicule), (ख) तद्भव (जैसे acknowledgement के लिए 'पावती'), (ग) विदेशी (जैसे मीटर, विटैमिन), देशज (जैसे silt के लिए 'भल')। **(२) प्रयोग के आधार पर** : (क) पूर्ण पारिभाषिक —इस वर्ग मे वे शब्द आते हैं जो केवल पारिभाषिक शब्द के रूप मे ही विभिन्न शास्त्रों मे प्रयुक्त होते हैं। जैसे भाषाविज्ञान में ध्वनिग्राम, नाट्यशास्त्र में प्रकरी या गणित में दशमलव; (ख) अर्धपारिभाषिक या मध्यस्थ—इस वर्ग मे वे शब्द आते हैं जो पारिभाषिक अर्थों में भी प्रयुक्त होते हैं तथा सामान्य अर्थ में भी। उदाहरण के लिए 'अक्षर'। यह शब्द सामान्य भाषा मे लिखित वर्ण या letter के लिए आता है, किंतु भाषाविज्ञान मे syllable के लिए। इसी तरह 'असगति' अलंकार शास्त्र में एक विशिष्ट अलकार का नाम है अतः पारिभाषिक है, किंतु सामान्य बातचीत मे भी 'सगति न होने' के अर्थ मे इसका प्रयोग होता है। 'आपत्ति' शब्द सामान्य शब्द के रूप में बातचीत में आता है और पारिभाषिक शब्द के रूप मे कानून या विधि में। (ग) सामान्य—उन शब्दों को कहते हैं जो मूलतः सामान्य भाषा के सामान्य शब्द हैं, किंतु प्रसंगतः विशिष्ट शास्त्रों या विज्ञानों मे पारिभाषिक शब्द का भी अर्थ देते हैं। उदाहरण के लिए पलंग, कुर्सी, सोफा सामान्य शब्द हैं किंतु काष्ठकला में ये पारिभाषिक शब्द हैं। इसी तरह 'दाँत' चिकित्सा मे पारिभाषिक है तो सामान्य भाषा मे सामान्य शब्द है। 'ध्वनि' व्याकरण और भाषाशास्त्र में पारिभाषिक है, किंतु मूलतः वह सामान्य भाषिक व्यवहार का सामान्य शब्द है। **(३) सूक्ष्मता-स्थूलता के आधार पर** : इस आधार पर पारिभाषिक शब्दों के दो वर्ग बनाए जा सकते हैं : (क) सकल्पनाबोधक (Conceptual) पारिभाषिक शब्द—जो विभिन्न प्रकार की सकल्पनाओं को व्यक्त करते हैं। जैसे गणित (दशमलव, बिंदु, समीकरण), भौतिकशास्त्र (गति, अनुनाद, ऊर्जा), दर्शनशास्त्र (मुक्ति, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, सुखवाद), मनोविज्ञान (व्यक्तित्व, हीनग्रन्थि) आदि मे प्रयुक्त होने वाले बहुत से पारिभाषिक शब्द। (ख) वस्तुबोधक (objective) पारिभाषिक शब्द—जो ठोस चीजों को व्यक्त करते

हैं। जैसे रसायनशास्त्र (कैलसियम, सोडियम, कार्बन, मूलतत्वों के नाम, मिश्रतत्वों के नाम), प्राणिशास्त्र (कोशिका, धमनी, जीवद्रव्य) या वनस्पति-शास्त्र (ज़ाइलम, फ्लोयम) मे प्रयुक्त होने वाले बहुत से शब्द। इस प्रसग मे यह उल्लेख्य है कि सामान्यतः यह माना जाता है कि सकल्पनाबोधक शब्द यथासाध्य अपनी भाषा के होने चाहिए, क्योंकि उनमे अनेक अन्य शब्द भी बनाने पड सकते है। वस्तुबोधक पारिभाषिक शब्द आवश्यक होने पर दूसरी भाषाओं से भी लेने में विशेष हानि नही है, क्योंकि इनसे बहुत अधिक अन्य शब्दो के बनाए जाने की संभावना बहुत अधिक नही होती। (४) स्रोत के आधार पर : इस आधार पर शब्द मुख्यतः तीन प्रकार के हो सकते हैं. (क) भाषा में पहले से प्रयुक्त शब्द—इस वर्ग में वे शब्द आते हैं जो लक्ष्य भाषा मे पहले मे हो। जैसे हिंदी मे जीव, चूना, नस, बिजली आदि। ऐसे शब्द शुद्ध पारिभाषिक (जैसे विशेषण) भी हो सकते हैं और ऐसे भी हो सकते हैं जो मूलत सामान्य हों, किंतु शास्त्रविशेष मे पारिभाषिक शब्द के रूप मे भी प्रयुक्त होते हों (जैसे मुक्ति)। (ख) दूसरी भाषा से गृहीत शब्द—ये शब्द भी मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो प्रायः अपने मूल रूप मे ही गृहीत कर लिए गए हो (जैसे कार्बन, राडार, मीटर, लीटर, कैलसियम) और दूसरे वे जो लक्ष्य भाषा की ध्वनि-व्यवस्था या ध्वनि-प्रकृति के अनुरूप अनुकूलित कर लिए गए हों (जैसे Acadamy का अकादमी या Interim का अतरिम)। हिंदी में गृहीत पारिभाषिक शब्द तथाकथित अतर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्द, अग्रेजी पारिभाषिक शब्द, सस्कृत पारिभाषिक शब्द, या भारतीय भाषाओ एवं बोलियों के पारिभाषिक शब्द हो सकते हैं। हिन्दी की उर्दू शैली अरबी-फारसी से भी ऐसे शब्दो को लेती है। (ग) नवनिर्मित शब्द—कभी-कभी पहले वर्ग के अभाव मे तथा दूसरे वर्ग के शब्द का किसी कारणवश ग्रहण न कर पाने की स्थिति मे, लक्ष्य भाषा के अनुवादक को दो या अधिक शब्द, धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि की सहायता से नए शब्द गढने पडते है। हिंदी में विभिन्न विज्ञानो के लिए ऐसे काफी शब्द गढ़े गए हैं। जैसे रूपग्राम (morpheme), मत्रिमडल (Cabinet), मत्रालय (ministry), निदेशक (Director), कुलसचिव (registrar), सपादकीय (editorial) आदि। (५) विषय के आधार पर—विषय के आधार पर किसी भाषा के पारिभाषिक शब्दो के उतने भेद किए जा सकते हैं जितने विशिष्ट विषय हैं। जैसे रसायनशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दावली, भाषावैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली, या दर्शनशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दावली आदि।

वस्तुतः इस अंतिम आधार पर पारिभाषिक शब्दों के कई सौ भेद हो सकते हैं। यों इस प्रसग मे यह भी उल्लेख्य है कि बहुत से शब्द ऐसे भी होते हैं जो एक से अधिक ज्ञानो, विज्ञानों या शास्त्रों मे प्रयुक्त होते हैं। जैसे 'धातु' धातु-विज्ञान में भी आता है, भाषाविज्ञान में भी।'

पारिभाषिक शब्द के लिए अपेक्षित गुण—किसी भाषा के पारिभाषिक शब्दों में निम्नांकित गुण होने चाहिए : (१) उच्चारण की दृष्टि प्रयोक्ता भाषा-भाषियो के लिए पारिभाषिक शब्द को सरल होना चाहिए। इसीलिए यदि शब्द किसी अन्य भाषा से लिया गया हो और उसका उच्चारण, ग्रहण करने वाली भाषा के भाषियों के लिए कठिन हो तो उसको सरल कर लेना चाहिए। पारिभाषिक शब्दों का ध्वनि की दृष्टि से अनुकूलन (ग्रहण करने वाली भाषा की ध्वनि-व्यवस्था के अनुसार) इसी लिए आवश्यक है। अंतर्राष्ट्रीय शब्दों मे भी विभिन्न भाषाएँ उच्चारण सुविधा तथा अपनी ध्वनि-व्यवस्था के अनुसार इसीलिए परिवर्तन कर लेती हैं। उदाहरणार्थ : अंग्रेज़ी isotope स्पेनी isotopo, रूसी izatop, जापानी aisotoopu। नए शब्दो के निर्माण मे भी इसका ध्यान रखना चाहिए। डॉ० रघुवीर ने इसीलिए सचिवालय (सचिव+आलय) शब्द तो बनाया किंतु मन्त्र्यालय (मंत्रि+आलय) न बनाकर मंत्रालय बनाया। (२) पारिभाषिक शब्द का अर्थ सुनिश्चित और स्पष्ट होना चाहिए। उसमें न तो अव्याप्ति दोष होना चाहिए और न अति-व्याप्ति दोष। अर्थात् पारिभाषिक शब्द को न तो अपनी अर्थ-परिधि से अधिक अर्थ व्यक्त करना चाहिए और न कम। एक पारिभाषिक शब्द का एक ज्ञान या शास्त्र में एक ही अर्थ होना चाहिए ताकि प्रयोक्ता या पाठक को दूसरे अर्थ का भ्रम न हो। इसी तरह एक ज्ञान या शास्त्र में एक संकल्पना या वस्तु के लिए एक ही शब्द होना चाहिए। (३) शब्द यथासाध्य छोटा हो, 'सागर में गागर', ताकि बार-बार प्रयोग में असुविधा न हो। अंग्रेज़ी में एक रोग का नाम है Pneumonoultra-microscopic-silico-volcano-koniosis। निश्चित ही ऐसा पारिभाषिक शब्द लेखक या वक्ता के लिए बड़ा ही कष्टप्रद होगा। (४) पारिभाषिक शब्द यथासाध्य एक शब्द का या मूल शब्द होना चाहिए। एक से अधिक शब्दों का नहीं। इस दृष्टि से equator ठीक है, 'विषुवत रेखा' उतना अच्छा नहीं है। एक से अधिक शब्दो के नाम नाम न होकर प्रायः व्याख्या हो जाते हैं। उदाहरण के लिए भाषाशास्त्र के पारिभाषिक शब्द spoonerism के लिए हिंदी में 'आदि शब्दांश विपर्यय' व्याख्यात्मक शब्द है। (५) पारिभाषिक शब्द ऐसा होना चाहिए कि आवश्यकता पड़ने पर उपसर्ग प्रत्यय या शब्द आदि

शब्दों को संस्कृत से लेना तथा उससे नए शब्द गढ़ लेना तो ठीक है, किंतु ये लोग तो इस मत के हैं कि जो अरबी, तुर्की, फ़ारसी, अंग्रेज़ी से [illegible] शब्द हिंदी में आए हैं, तथा जो सामान्य भाषा के भी अभिन्न अंग बन चुके हैं, उन को भी भाषा से निकाल कर नए शब्द संस्कृत से लिए या बनाए जाएँ। कुछ लोग तो तद्भव तथा देशज के स्थान पर भी संस्कृत शब्द लाना चाहते हैं। 'बनारस' का 'वाराणसी' कर देना इसी प्रवृत्ति का परिणाम था। डॉ० रघुवीर ने 'शहर' के लिए 'पुरा', 'सड़क' के लिए 'सरणि', (रेलवे) 'स्टेशन' के लिए स्थाण (यह ऋग्वेद में प्रयुक्त शब्द है) तथा 'पेन' के लिए 'मसीधर' दिया है। उनके द्वारा दिए गए कुछ और शब्द हैं: रेल=[illegible], टिकट=[illegible]-पत्र, [illegible]=[illegible], [illegible]=विद्युत्[illegible], [illegible]=[illegible], [illegible]=[illegible], [illegible]=[illegible] आदि। हिंदी के कई हज़ार इस प्रकार के बहुप्रचलित शब्दों को निकाल कर नए शब्दों को लेना हिंदी के आधुनिक समन्वयवादी (तत्सम+तद्भव+विदेशी+देशज) स्वरूप को झुठलाना है तथा इस वास्तविकता से मुँह मोड़ना है कि ये शब्द हमारी भाषा के अंग हैं। (कुछ लोगों ने मज़ाक उड़ाने के लिए यह भी कहना शुरू किया था कि डॉ० रघुवीर ने 'टाई' के लिए 'कंठ-लंगोट' तथा '[illegible]' के लिए '[illegible] निकास' शब्द या ऐसे ही अनेक शब्द बनाए हैं, किंतु वस्तुतः यह गलत है। 'टाई' को उन्होंने कदाचित् 'कंठ-भूषण' कहा है।) यदि इस सम्प्रदाय की बातें मान लें तो हिंदी स्वयं में इतनी कठिन हो जाएगी कि सबके लिए समझना असंभव हो जाएगा। (ख) इस सम्प्रदाय ने उस अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली [तत्त्वों और यौगिकों के नाम, माप-तौल की इकाइयों के नाम (डॉ० रघुवीर ने 'मीटर' के लिए 'मान', 'किलोमीटर' के लिए 'सहस्रमान' दिया है) तथा रेडियो (डॉ० रघुवीर–'नभोवाणी'), रडार (डॉ० रघुवीर–'तेजोवेध') पेट्रोल (डॉ० रघुवीर–'मार्तैल') आदि विश्व-प्रचलित शब्द, आदि] की पूर्णतया अवहेलना की है जो विश्व भर में वैज्ञानिक विचार-विनिमय के लिए एक सीमा तक आधार है। (ग) इस सम्प्रदाय की पद्धति है अंग्रेज़ी से शब्दानुवाद या उसके आधार पर यथावत् शब्द-निर्माण, किंतु अनूदित शब्द सर्वदा बहुत जीवित और व्यंजक नहीं होते। जैसे 'पी-एच० डी०' के लिए 'दर्शन महाविद' (डॉ० रघुवीर) या 'रीडर' के लिए 'प्रवाचक' (डॉ० रघुवीर) आदि।

दूसरा संप्रदाय है शब्दग्रहणवादी या स्वीकरणवादी। अधिकांश विज्ञान-वेत्ता तथा अंग्रेज़ी-परंपरा के लोग इसी पक्ष में हैं। वे चाहते हैं कि अंग्रेज़ी तथा अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली को ले लिया जाय। इसके पक्ष में निम्नांकित

बातें कही जा सकती हैं : (क) चूंकि अंग्रेजी और अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली का प्रचार विश्व मे सर्वाधिक है, अतः उससे परिचित होने पर हमारे विज्ञान या शास्त्रवेत्ताओं को विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित साहित्य को समझने में आसानी होगी, साथ ही, वह शब्दावली जिन-जिन भाषाओं में प्रयुक्त हो रही है, उसे बोलने वाले, केवल सामान्य भाषा सीख कर हमारे वैज्ञानिक और शास्त्रीय साहित्य को समझ सकेंगे। (ख) यह रास्ता अपनाने से अनुवादक या या लेखक के लिए शब्दावली की समस्या सदा-सर्वदा के लिए सुलझ जाएगी। जब भी आवश्यकता हो वह आँख मूंद कर अंग्रेजी मे पारिभाषिक शब्द ले सकता है। (ग) इसके पक्ष मे सबसे बड़ा तर्क यह है कि नए शब्द विभिन्न विज्ञानों में हमेशा ही आते रहेंगे। तो फिर हम कब तक अपने देशीय स्रोतों से शब्द खोजते या बनाते रहेंगे। अच्छा हो कि अंग्रेजी से शब्दग्रहण की बात स्वीकार कर लें तो सदा-सर्वदा के लिए इस समस्या से हमारा पिंड छूट जाय। (घ) नेपाल, ईरान आदि कई देशों ने एक सीमा तक यही किया है। इस संप्रदाय के विपक्ष मे ये बातें हैं : (क) किसी भी समुन्नत देश में ऐसा नहीं है कि सारे-के-सारे शब्द किसी दूसरी भाषा से लिए जाएं। मूलतः यह प्रश्न देश के व्यक्तित्व से जुड़ा है। सारे शब्द हम अंग्रेजी से नहीं ले सकते। (ख) अंग्रेजी के सारे पारिभाषिक शब्द हिंदी पचा भी नहीं सकती। वस्तुतः कोई भी भाषा किसी दूसरी भाषा के सारे शब्द, मुख्यतः अंग्रेजी-हिंदी अंतरवाली, पचा नहीं सकती। (ग) गृहीत शब्द (loan words) अर्धमृत होते हैं, क्योंकि उनमे जनन-शक्ति (नए शब्द बनाने की क्षमता) या तो बहुत कम होती है, या बिलकुल नहीं होती। इस सप्रदाय मे भी शब्द-ग्रहण के संबध मे दो मत हैं। कुछ लोग तो अंग्रेजी आदि से शब्दों को ज्यों-का त्यों लेना चाहते हैं। जैसे एकेडमी, इंटरिम, पैराबोला, टैकनीक, कमेडी, नाइट्रोजन आदि। दूसरे वे लोग हैं जो इन शब्दों को हिंदी आदि की ध्वनि-व्यवस्था के अनुरूप अनुकूलित करके लेने के पक्ष मे हैं। जैसे अकादमी, अतरिम, परवलय, तकनीक, कामदी, नेत्रजन आदि। कहना न होगा कि जिन भाषाओं ने भी दूसरी भाषाओं से शब्द लिए हैं, प्रायः शब्दों को अनुकूलित किया है। शब्द चाहे पारिभाषिक हों या सामान्य।

तीसरा संप्रदाय हिंदुस्तानीवादी या प्रयोगवादी है। इसमे हिंदुस्तानी भाषा के समर्थक पंडित सुन्दरलाल, उस्मानिया विश्वविद्यालय तथा हिंदुस्तानी कल्चर सोसायटी आदि का नाम लिया जा सकता है। इस सम्प्रदाय ने हिंदी-उर्दू के समन्वय तथा सरल शब्दावली के नाम पर बोलचाल के शब्दों, संस्कृत शब्दों

तथा अरबी-फारसी शब्दो की खिचडी से ऐसे शब्द बनाए हैं जो बड़े ही हास्यास्पद हैं। उदाहरणार्थ उस्मानिया यूनिवर्सिटी के तीन शब्द हैं : Acceleration—चालबढाव, Absolutism—अरोकवाद, Reaction—पलटकारी। प० सुन्दरलाल ने इसी प्रकार की शब्दावली मे भारतीय सविधान का अनुवाद किया है। उनके कुछ शब्द हैं : Incorporate—एकतन करना, Emergency अचानकी, President—राजपति, Governmental—शासनिया। हिंदुस्तानी कल्चर सोसायटी के कुछ शब्द है : psychology—मनविद्या, halfheartedness अधदिलापन, Simplify—आसानियाना, Pedagogy—तालीमविद्या। कहना न होगा कि इस सप्रदाय के शब्द इतने अटपटे और हास्यास्पद हैं कि किसी ने इन शब्दो की ओर गभीरता से देखा तक नही है।

अतिम मत मध्यममार्गी या समन्वयवादी है। जो भी इस विषय पर गभीरता से विचार करेगा, प्राय इसी मत का समर्थन करेगा। इस मत के अनुसार सुविधा और हिंदी आदि भारतीय भाषाओं की प्रकृति की दृष्टि से शब्द-ग्रहण (अतर्राष्ट्रीय, अग्रेज़ी, सस्कृत, प्राकृत, आधुनिक भाषाओ के प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य, सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं तथा बोलियो से) तथा नव शब्द-निर्माण दोनो का समन्वय किया जा सकता हैं। भारत सरकार की ओर से स्थापित वैज्ञानिक शब्दावली आयोग ने भी लगभग इसी प्रकार का मत व्यक्त किया था। इस मत की बातो को लेते हुए अपनी ओर से मैं भारतीय भाषाओ की पारिभाषिक शब्दावली की कमी दूर करने के लिए निम्नाकित सुझाव देना चाहूँगा : (१) यथासभव अतर्राष्ट्रीय शब्दावली को ले लिया जाए। इनमे जो शब्द अपने मूल रूप मे चल सकें, उन्हे वैसे ही लें, तथा जिनमे ध्वनि-परिवर्तन या अनुकूलन आवश्यक हो वैसा कर लिया जाय। (२) अग्रेज़ी, लबे समय तक सपर्क के कारण हमारे काफी निकट रही है तथा सभी भारतीय भाषाओ मे तीन-तीन चार-चार हज़ार अग्रेज़ी शब्दो का प्रयोग हो रहा है। अत. जो अग्रेज़ी शब्द हमारी भाषाओं मे चल रहे हैं, उन्हें चलने दिया जाय। कुछ नए शब्द भी आवश्यक होने पर अनुकूलित करके लिए जा सकते हैं किंतु इन्हे सभी दृष्टियो के उपयुक्त होना चाहिए। (३) प्राचीन तथा मध्यकालीन साहित्य से भी चलनेवाले तथा सभी दृष्टियो से सटीक शब्दों को लिया जा सकता है। (४) शब्दावली मे अखिल भारतीयता का गुण लाने के लिए यह उचित होगा कि विभिन्न भारतीय भाषाओ तथा बोलियो में पाए जाने वाले उपयुक्त शब्दो को भी यथासभव ग्रहण कर लिया जाए। (५) शेष आवश्यक शब्दावली के लिए हमारे पास नये शब्द बनाने के अतिरिक्त कोई

चारा नहीं रह जाता। नये शब्द बनाते समय साधारणतः हमें इस बात का ध्यान नहीं रखना चाहिए कि शब्द की व्युत्पत्ति मूलतः क्या है, बल्कि हमें उसके वर्तमान प्रयोग और अर्थ को देखना चाहिए, क्योंकि कभी-कभी शब्दों का अर्थ मूल अर्थ की सीमाओं से बहुत अलग हट जाता है, और उस स्थिति में हमारे लिए मूल शब्दार्थ की अपेक्षा, वर्तमान शब्दार्थ ही अधिक महत्व-पूर्ण होता है।

भारत में अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली न्यूनाधिक मात्रा में गत दो दशकों से प्रचलित है। केन्द्रीय-शिक्षा-सलाहकार-समिति ने अपने १६४० के पाँचवें अधिवेशन में इस शब्दावली पर विचार-विमर्श करने के पश्चात् यह सिफारिश की थी कि जहाँ तक सम्भव हो अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली को भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली में सम्मिलित कर लेना चाहिए। इस समिति की सन्दर्भ समिति ने भी अपनी १६४७ की बैठक में इस सुझाव को स्वीकार किया था। सन् १६४८ में उपकुलपतियों के सम्मेलन की विषय-समिति ने भी इसका समर्थन किया था और १६४८-४६ में विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग ने भी इस पर अपनी स्वीकृति दे दी थी। डा० शान्तिस्वरूप भटनागर और डा० बीरबल साहनी जैसे कई विशिष्ट वैज्ञानिकों ने भी इस निश्चय का समर्थन किया था।

वास्तव में यह निर्णय सुविचारित और बड़ा ही उपयुक्त था। अंतर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली के पक्ष में पहली बात तो यह है कि यह ऐसे देशों की देन है जो वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति की दौड़ में सबसे आगे हैं। यदि हम भी अपनी तकनीकी शब्दावली में इस अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली को सम्मिलित कर लें तो विज्ञान का साहित्य शीघ्र ही हमारी भाषाओं में रूपांतरित हो सकेगा। इसके विपरीत यदि हम भाषा की शुद्धता के पीछे पड़े रहेंगे तो हमारे वैज्ञानिकों को दुगुना परिश्रम करना पड़ेगा। उनको भारतीय शब्दावली के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली को भी याद रखना पड़ेगा, जिससे इन देशों के वैज्ञानिक साहित्य तक हमारी पहुँच बनी रहे।

एक बात और। शब्द केवल ध्वनियों के समवाय ही नहीं होते, बल्कि वे सप्राण और सजीव होते हैं। इस सजीवता के पीछे प्रयोग की पुरानी परम्परा होती है। नए शब्दों में सजीवता लाना, उनमें चेतना और भाव फूँकना कोई सरल काम नहीं है। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन और रूसी आदि भाषाओं में थोड़ी बहुत ध्वनि-भिन्नता को छोड़कर एक ही शब्द 'कैलरी' प्रयुक्त होता है। डॉ० रघुवीर ने इसके लिए एक नया शब्द 'उष' बनाया है। स्पष्ट है कि कैलरी शब्द की अर्थ-सम्पन्नता इस नए शब्द में कभी नहीं आ

जा सकती, क्योंकि यह काम एक क्षण में नहीं किया जा सकता। अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली को स्वीकार कर हम अपनी भाषा को आसानी से इस प्रकार की विपन्नता से बचा सकते हैं।

इसी से सम्बद्ध प्रश्न यह भी है कि अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली है कौन-सी ? कुछ लोगों की राय है कि अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली जैसी कोई चीज है ही नहीं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि सर्वस्वीकृत अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली जैसी कोई चीज नहीं है, किन्तु यह भी सत्य है कि अंग्रेजी, फ्रेंच जर्मन और रूसी आदि कई भाषाओं में कपड़ा उद्योग, चिकित्सा, संगीत, रेडियो, टेलीविज़न, रसायन-शास्त्र, ऋतु विज्ञान, रबड़-उद्योग, वनस्पति-विज्ञान, विद्युत, अणु-विज्ञान, चलचित्रकी, सिंचाई, नक्षत्र-शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, इन्जीनियरी और शिल्प-विज्ञान आदि में जो शब्द प्रयुक्त होते हैं उनमें पचास प्रतिशत और कभी-कभी तो इससे भी अधिक शब्द ऐसे हैं जो विश्व की तीन या चार महत्वपूर्ण भाषाओं में एक जैसे ही हैं। वास्तव में भारतीय भाषाओं के लिए ऐसे प्रच-लित शब्दों को स्वीकार करना बड़ा ही लाभदायक होगा। हम ऐसे शब्दों को जो विश्व की कम-से-कम तीन प्रमुख भाषाओं में प्रयुक्त होते हों अन्तर्राष्ट्रीय शब्द मानकर ग्रहण कर सकते हैं। इसके लिए हमें अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं होगी, क्योंकि ऐसे शब्दों को हम विभिन्न सूचियों के आधार पर आसानी छाँट सकते हैं। ये सूचियाँ अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—ग्राम, मीटर, एम्पियर, वोल्ट, वाट, कैलरी, लिटर आदि माप-तौल की इकाइयाँ, अर्जेन्टम, ऑरम, सल्फर आदि तत्त्व; ऐसे शब्द जो विज्ञान के क्षेत्र में आविष्कारकों आदि के नाम पर बनाए गए हैं, जैसे फारनहाइट, स्यूनि-रियम, ग्रिम-नियम, रमन-प्रभाव; वे नाम जो आविष्कारकों या अन्वेषकों ने रखे हैं जैसे विटामिन, ग्लूकोज, पेंसिलिन, प्रोटीन आदि; रासायनिक यौगिकों के नाम जैसे ब्रोमाइड, क्लोराइड, फेनल आदि। ऐसे शब्द लाखों की संख्या में होंगे। इन्टरनैशनल सिविल ऐविएशन ऑर्गेनाइज़ेशन, मान्ट्रीयल; परमानेंट इण्टरनैशनल एसोसियेसन ऑफ रोड कांग्रेस, पैरिस; इण्टरनैशनल टैली-कम्यूनिकेशन ब्यूरो, बर्न इत्यादि सैंकड़ों संस्थाएँ ऐसे शब्दों की सूचियाँ प्रका-शित करती रहती हैं। संयुक्त-राष्ट्र संघ ने भी इस कार्य के लिए एक समिति बनाई है। अन्तर्राष्ट्रीय-मान्यता प्राप्त शब्दों की संख्या भविष्य में बढ़ती ही जाएगी।

कुछ लोगों की धारणा है कि अंग्रेजी भाषा की शब्दावली ही अन्तर्राष्ट्रीय

शब्दावली है । अतः सारे अंग्रेज़ी शब्दों को यथावत् स्वीकार कर लेना चाहिए । वस्तुतः यह धारणा बहुत ग़लत और भ्रामक है । यह ठीक है कि अंग्रेज़ी शब्दावली का बहुत बड़ा भाग अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली का अंग है किन्तु वह केवल आंशिक रूप से ही अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली है ।

अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली का यह भी अर्थ नहीं है कि इसके शब्द भिन्न-भिन्न भाषाओं में एक ही वर्तनी एवं उच्चारण के साथ प्रयुक्त होते हैं । उदाहरणार्थ :—अंग्रेज़ी Analyzer, जर्मन Analysator, रूसी Analyzator । अंग्रेज़ी Amperemeter, फ्रेंच Ammetre, रूसी Ampermeter । अंग्रेज़ी Bromide, जर्मन Bromid, रूसी Bromed, जापानी Buromaids, अरबी Bromeed आदि । इन शब्दों की वर्तनी तथा उच्चारण में निश्चित ही अन्तर है । ऐसे शब्दों को ग्रहण करते समय हमें आम तौर पर उनके अंग्रेज़ी स्वरूप को स्वीकार करना अधिक उचित होगा क्योंकि वे अपेक्षाकृत हमारे नज़दीक हैं । परन्तु जहाँ कहीं भी ध्वनि आदि सम्बन्धी परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़े ऐसे परिवर्तन अवश्य कर देने चाहिए । हमने कुछ विदेशी शब्दों में ऐसे परिवर्तन किए भी हैं । इस प्रकार के सरलीकरण के उदाहरण विश्व की दूसरी भाषाओं में भी पाए जाते हैं । फारसी में टेलीविज़न के लिए 'तेलीवीज्यों', रेडियो के लिए 'रादियो' और टेलीफ़ोन के लिए 'तेलीफून' है, रूसी भाषा में मोटर-साइकल के लिए 'मत्सीक्ल', कैनाल के लिए 'कनाल', जापानी में कन्डेंसर के लिए 'कंदेसा', ग्लास के लिए 'गरासु' और ब्रिज शब्द के लिए बरज्जो आदि ऐसे ही शब्द हैं । अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली को अपनाते समय हमें इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि अंग्रेज़ी या दूसरी यूरोपीय भाषाओं के व्याकरण के नियमों के स्थान पर हम अपने व्याकरण के ही नियमों का पालन करें । उदाहरणार्थ—हमें 'वोल्टेज' शब्द के लिए 'वोल्टता' शब्द का प्रयोग करना चाहिए, 'वोल्टेज' का नहीं, क्योंकि हिन्दी भाववाचक संज्ञा से विशेषण बनाने के लिए 'ता' प्रत्यय का प्रयोग होता है । इसी तरह अंग्रेज़ी शब्द इंजीनीयरिंग के स्थान पर 'इंजीनीयरी' और टैकनीकल के स्थान पर 'तकनीकी' शब्द का प्रयोग ही हमारे अनुकूल है । साथ ही उनमें हमारे अपने व्याकरण के नियम लागू होंगे । जैसे 'टेलीविज़न्स' के स्थान पर 'टेलिविज़नों' आदि ।

जैसा कि ऊपर संकेतित है हमारे देश में जो शास्त्र पर्याप्त विकसित थे जैसे गणित, चिकित्सा, रसायन, युद्ध-विज्ञान, नक्षत्र-शास्त्र आदि, उनके लिए यदि हम स्वदेशी शब्दावली ढूँढने के लिए ईमानदारी से कोशिश करें तो हमें

अपनी प्राचीन परम्परा के आधार पर भारतीय सरलता मिल जाती है। उदाहरण के लिए—Calculus के लिए कलन, Maximum के लिए भूयिष्ठ, Minimum के लिए अल्पिष्ठ, alliance के लिए समय, battallion के लिए वाहिनी, आदि। इसी तरह हमें अपनी भाषाओं और बोलियों को भी ऐसे पारिभाषिक शब्दों के लिए टटोलना पड़ेगा जो कृषि, कारीगरी और दूसरी आम दस्तकारियों में प्रयुक्त होते हैं। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा प्रकाशित शब्द-सूचियों में ऐसे बहुत-से शब्द हैं जो अन्य भारतीय भाषाओं से लिये गए हैं। हमें आशा है कि ऐसे और भी शब्द लिए जाते रहेंगे। कुछ स्वीकृत शब्द इस प्रकार हैं। गिल्ट के लिए पंजाबी से लिया गया शब्द 'मुलम्मा', टेडपोल के लिए बंगाली से लिया गया शब्द बेंगची, एकनॉलिजमेंट के लिए मराठी से लिया गया शब्द पावती। यदि उन स्रोतों से भी हम किसी विशेष शब्द का प्रतिशब्द ढूंढने में असमर्थ हों तब कहीं जाकर हम नया शब्द बना सकते हैं। परन्तु नया शब्द बनाते समय जैसा कि ऊपर कहा गया है इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मूल धातु से बनाया गया शब्द हमेशा सही और आदर्श पर्यायवाची नहीं होता। जैसे अंग्रेजी शब्द 'पॉप्युलर' एटिमॉलोजी' के लिए मूल अर्थ के आधार पर बनाया गया शब्द 'लौकिक व्युत्पत्ति' है, परन्तु इसके लिए 'भ्रामक व्युत्पत्ति' शब्द यहीं अच्छा है। प्रयोग में आने पर शब्द प्रायः अपनी मूल धातु के अर्थ से बहुत दूर चला जाता है और नए अर्थ ग्रहण करता रहता है। फलस्वरूप कुछ समय में प्रायः वह बिलकुल ही नया अर्थ धारण कर लेता है। ऐसे शब्दों के पर्याय ढूंढने अथवा नए शब्द बनाने के लिए कल्पना-शक्ति का थोड़ा-सा उपयोग भी बड़ा सहायक सिद्ध हो सकता है। ऐसी हालत में हमें सम्बन्धित-शब्द की मूल-धातु की ओर ध्यान न देकर उस शब्द के वर्तमान प्रयोग और अर्थ को समझना चाहिए। उदाहरणार्थ 'ज़ीरो-आवर' के लिए 'शून्य-घण्टा' के स्थान पर 'अपस वेला' अपेक्षाकृत अच्छा शब्द है। इसी प्रकार 'कर्ज़न लाइन' के लिए 'कर्ज़न रेखा' की अपेक्षा 'कर्ज़न-सीमा' अधिक उपयुक्त है।